मानव अधिकार :

नई दिशाएँ

वार्षिक अंक-8 2011

सर्वे भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

ISSN 0973-7388

मानव अधिकार : नई दिशाएँ

सर्वे भवन्तु सुखिनः

वार्षिक अंक : 8

2011

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
भारत

प्रकाशक : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
फरीदकोट हाऊस, कॉपरनिकस मार्ग,
नई दिल्ली, भारत

© 2011 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सलाहकार मण्डल या संपादक मण्डल का इनसे सहमत होना आवश्यक नही है।

प्राप्ति स्थान : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
फरीदकोट हाऊस, कॉपरनिकस मार्ग,
नई दिल्ली - 110001, भारत
वेबसाईट : www.nhrc.nic.in
ई-मेल : covdnhrc@nic.in

मुद्रण एवं डिजाईनिंग : डॉल्फिन प्रिंटो ग्राफिक्स
4ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान एक्सटेंशन,
नई दिल्ली-110055
मो. 9810130832
ई-मेल : dolphin_printo@rediffmail.com

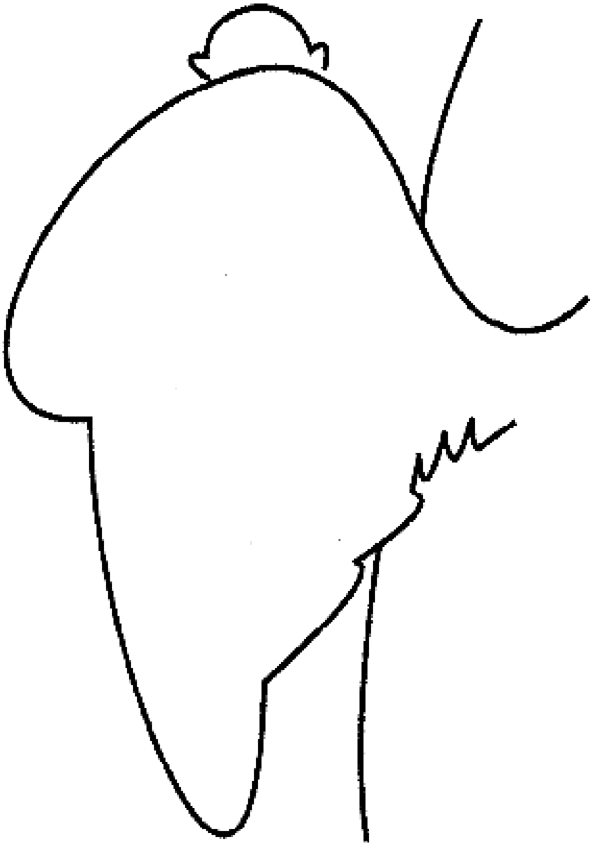

न्याय में जितनी उदारता की जरूरत है, इतनी ही न्याय की उदारता में है।

(महात्मा गाँधी)

23.10.1945

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

अध्यक्ष
न्यायमूर्ति श्री के. जी. बालाकृष्णनन

सदस्य

न्यायमूर्ति श्री जी. पी. माथुर

न्यायमूर्ति श्री बी. सी. पटेल

श्री सत्यब्रत पाल

श्री पी. सी. शर्मा

महासचिव
डॉ. राजीव शर्मा

महानिदेशक
श्री सुनील कृष्ण

रजिस्ट्रार
श्री अनिल कुमार गर्ग

संयुक्त सचिव
श्री जगदीश प्रसाद मीणा

संयुक्त सचिव (प्रशिक्षण)
श्री जयदीप सिंह कोचर

सलाहकार मंडल

पी. सी. शर्मा

डॉ. राजीव शर्मा

सुनील कृष्ण

जगदीश प्रसाद मीणा

प्रो० नामवर सिंह

अच्युतानंद मिश्र

डॉ० संजय दुबे

संपादक मंडल

संपादक

जगदीश प्रसाद मीणा

सह संपादक

डॉ. सरोज कुमार शुक्ल

संपादन सहयोग

रचना मिश्रा

सहयोग

अंजली सकलानी

कम्प्यूटरीकरण

सीमा शर्मा

सरिता विजय बहादुर

अनुक्रम

अनुक्रम

- **दो शब्द** : xi
- **आमुख** : xiii
- **पुरोवाक्** : xv
- **संपादकीय** : xvii

लेख

	विषय	लेखक का नाम	पृष्ठ सं0
1.	मानव अधिकार तथा लोकतंत्र	लक्ष्मी सिंह	1–10
2.	मानव–मूल्य और भ्रष्टाचार की समस्या	प्रो0 गिरीश्वर मिश्र	11–17
3.	एक अनूठी संघर्ष गाथा	चमन लाल	19–27
4.	भ्रष्टाचार तथा मानव अधिकार	प्रो0 योगेश अटल	29–39
5.	मानव अधिकार तथा लोकतंत्र (सुलभ की दृष्टि से)	डॉ0 विन्देश्वर पाठक	41–48
6.	निवारक निरोध कानून एवं मानवाधिकार	डॉ0 आनन्द कुमार विश्वकर्मा	49–52
7.	मानव अधिकार का ईसाई दृष्टिकोण	डॉ0 एम. डी. थॉमस	53–62
8.	मानवाधिकार एवं जनजातियों में मौताणा प्रथा	डॉ0 एस. पी. मीणा	63–72
9.	मानव अधिकार व भूमंडलीकरण : और जटिलताएं अंतर्संबंध की प्रासंगिक पड़ताल	डॉ0 सरोज कुमार वर्मा	73–79
10.	अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं का स्वास्थ्य तथा मानव अधिकारों की रणनीति	प्रो0 (डॉ0) शिवदत्त शर्मा	81–90
11.	मानव अधिकार के परिप्रेक्ष्य में मानसिक स्वास्थ्य	प्रोफेसर यादे लाल टेखरे	91–97
12.	सुशासन, भ्रष्टाचार एवम् मानव अधिकार	प्रो. (डॉ.) सरोज व्यास	99–105
13.	साहित्य, समाज तथा मानव अधिकार	अंजू वर्मा	107–109
14.	स्त्री सशक्तिकरण तथा मानव अधिकार	डॉ0 अनीता सिंह	111–118
15.	भ्रष्टाचार, मीडिया और मानव अधिकार	अंजली सिन्हा	119–122
16.	अपराधी महिलाओं के मानव अधिकार	डॉ0 अजय भूपेन्द्र जयसवाल	123–128
17.	बुजर्गों के मानव अधिकार	डॉ0 सोना दीक्षित अरूण कुमार दीक्षित	129–135
18.	पंचायतीराज, सुशासन एवं मानवाधिकार	डॉ0 कन्हैया त्रिपाठी	137–142

साक्षात्कार
भारत के पूर्व मुख्य न्यायधीश श्री आर. सी. लाहोटी 145–152
प्रस्तुति : **श्री राकेश रेणु**

आयोग के महत्वपूर्ण निर्णयों पर आधारित कुछ कहानियाँ
प्रस्तुति : **डॉ. दीप्ति भारद्वाज** 155–158

पुस्तक समीक्षा
"सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति : मीडिया और जनसंवाद" 171–174
समीक्षक : **डॉ0 अमरनाथ 'अमर'**

भ्रष्टाचार से लड़ने का कारगर हथियार – सूचना का अधिकार 175–178
समीक्षक : **विजय नारायण मणि त्रिपाठी**

दो शब्द

वर्ष 2011 का 'मानव अधिकार : नई दिशाएं' जर्नल का यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। अपनी परंपरा के अनुसार यह अंक भी विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों की रचनाओं से बहुआयामी है। मैं इस अवसर पर सभी लेखकों का अभिनन्दन करता हूँ।

इस अंक का मुख्य विषय भारत में 'भ्रष्टाचार' की समस्या है। लेखकों ने इस समस्या के विभिन्न पक्षों पर अपना विचार रखा है। सम्मानित लेखकों ने न केवल समस्या के स्वभाव उसके कारणों पर विचार किया है अपितु उसके निवारण व उपायों पर भी अपनी बेबाक राय दी है। लेखों में प्रस्तुत विश्लेषण निश्चित रूप से समस्या को उसके सही और व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने में सहायक होंगे।

मुझे खुशी है कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग इस **'जर्नल'** के माध्यम से समाज के साथ संवाद स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण पहल कर रहा है। साथ ही मुझे विश्वास है कि इसके अच्छे परिणाम होंगे और समाज में जागरूकता आएगी। इस अवसर पर मैं इस जर्नल से जुड़े आयोग के अधिकारियों, कर्मियों तथा लेखकों को बधाई देता हूँ और आशा व्यक्त करता हूँ कि मानव अधिकारों के प्रचार-प्रसार का दायरा और विस्तृत फलक पर आधारित होगा।

(न्यायमूर्ति के. जी. बालाकृष्णनन)

आमुख

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत में मानव अधिकारों की स्थापना के लिए अनेक संभावनाओं में लगा हुआ है। इसी क्रम में वह अपनी संगोष्ठियों, प्रकाशनों और अन्य आयोजनों के माध्यम से मानव अधिकारों संबंधी सोच-विचार करने के लिए मंच भी प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत वार्षिक हिंदी जर्नल इसी श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण आयोजन है।

इस बार यह अंक देश की एक गंभीर समस्या पर केन्द्रित है जिसका सीधा संबंध जीवन की गुणवत्ता से है। 'भ्रष्टाचार' के आगोश में जन-जीवन प्रभावित हो रहा है और उसका परिणाम तात्कालिक और दीर्घकालिक दोनों ही ढंग से समाज में भुगतना पड़ रहा है। इसके प्रभाव देश की छवि पर भी पड़ रहे हैं और चारों ओर असंतोष भी है। यह स्थिति भारत हित में नहीं है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के उद्देश्य पर नज़र डालें तो यह बात बहुत स्पष्ट रूप से उभरती है कि मानव अधिकारों की बात भ्रष्टाचार के आगे बेमानी हो जाती है। आयोग के अनुभव यह बताते हैं कि मानव अधिकारों की अवहेलना और उसकी स्थापना के मार्ग में आने वाली बाधाओं का एक प्रमुख स्रोत भ्रष्टाचार ही है। यही सोचकर यह निश्चय किया गया कि विचारकों, बुद्धि जीवियों तथा अकादमिक क्षेत्र से जुड़े मनीषियों से इस समस्या पर मंथन करने के लिए कहा जाए। इस मंथन का परिणाम यह अंक आपके सामने है। इसे प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। आप देखेंगे कि इस अंक में समाज के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की स्थिति का आकलन, विश्लेषण करते हुए ये आलेख बड़ी बेबाकी से गंभीर प्रश्न छेड़ने के साथ-साथ हमें सोचने को मजबूर भी कर रहे हैं। भ्रष्टाचार के विभिन्न आयाम समाज की जड़ों

को खोखला कर रहे हैं। यह विचारणीय है कि व्यक्ति और संस्था के रूप में हमारी क्या भूमिका होनी चाहिए?

हमारा विश्वास है कि विचार की जो प्रक्रिया इस अंक से शुरू हो रही है वह व्यापक होगी और भ्रष्टाचार के विरुद्ध चलने वाली मुहिम और मजबूत होगी। इस अंक के लेखकों को सहयोग के लिए हार्दिक आभार।

पी. सी. शर्मा

(पी. सी. शर्मा)

पुरोवाक्

भारतीय संस्कृति और सभ्यता संपूर्ण संसार में न केवल सबसे पुरानी है अपितु इसमें विभिन्न विचारधाराओं, पंथों और मतो का अद्भुत मेल भी है। विविधता में एकता हमारे देश का अद्वितीय लक्षण है जिसका आधार अहिंसा, अस्तेय तथा परस्पर साझेदारी व हिस्सेदारी है। हमारी संस्कृति की विरासत में केवल मानव मात्र से ही नहीं अपितु संपूर्ण जीव-जगत के साथ-साथ प्रकृति से भी निकटता स्थापित करने की बात बार-बार दोहरायी गई है। हमारी हर सुबह समष्टि के कल्याण के साथ शुरू होती है। सदियों से हमारी सांस्कृतिक विरासत में संजोयी आदर्श समाज की यह संकल्पना निरंतर एक नए संदेश के साथ हमारे समक्ष विराजमान रहती है।

आज 21वीं सदी में भी नस्ल भेद, सामाजिक असमानता, छूआछूत, धार्मिक अंध-विश्वास तथा इज्जत के लिए हत्या, खाप पंचायत तथा महिला सशक्तिकरण आदि ऐसे कुछ ज्वलंत प्रश्न हैं जो आज भी मानव अधिकार के लिए चुनौती बने हुए हैं। जब तक हम इन समसामयिक मुद्दों पर विजय की पताका नहीं लहरायेंगे तब तक सही अर्थों में हमारे राष्ट्र का संपूर्ण रूप से विकास असंभव है।

किसी भी देश व राष्ट्र की आजादी एवं उसकी नैतिक व्यवस्था को आंकने के कुछ मुख्य आधार होते हैं जैसे सम्मान सहित गरिमापूर्ण जीवन तथा आजादी एवं समानता। इनके अभाव में मानव अधिकारों की संपूर्ण प्राप्ति एकदम असंभव है। आजादी के लगभग 6 दशकों के बाद भी हमारे समाज में भेदभाव, अंध-विश्वासों, अज्ञानताओं का बोलबाला है। इन्हीं अज्ञानताओं के चलते हम अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था में समुचित रूप से सबकी भागेदारी सुनिश्चित नहीं कर पा रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि देश के हर कोने में मानव अधिकारों के हनन से

संबंधित घटनाएं निरंतर जारी हैं जो मनुष्यता को कलंकित करने के साथ–साथ हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली को भी बदनाम करती हैं।

आयोग अपनी स्थापना से ही मानव अधिकारों के संरक्षण व संवर्द्धन के लिए न केवल प्रयासरत् है अपितु अनेक नीतिगत एवं संवेदनशील मुद्दों में सार्थक एवं सतर्क हस्तक्षेप कर सरकार का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। आयोग की निष्ठा का एक प्रमाण यह जर्नल है जिसमें जहां एक ओर भारतीय परंपरागत विचारों को एक साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है वहीं दूसरी ओर मानव अधिकारों से संबंधित समसामयिक, संवेदनशील एवं आज के लिए प्रासंगिक विषयों पर वैचारिक परिधि को आगे बढ़ाने की चेष्टा भी की गई है। ऐसे महत्वपूर्ण, उपयोगी एवं सूचनाप्रद ग्रंथ से हमें विशाल भारतीय समाज में मानव अधिकारों की पताका फहराने में निचित रूप से सहायता मिलेगी।

पिछले अंकों में प्रस्तुत की गई सामग्री से अलग हटकर इस बार के अंक में देश के लिए सबसे ज्वलंत समस्या भ्रष्टाचार को केंद्र में रखकर लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं जो न केवल वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक हैं अपितु वे भविष्य के लिए 'मील का पत्थर' भी साबित हो सकते हैं। मुझे विश्वास है कि इससे न केवल स्वस्थ एवं वैचारिक परंपरा का उदय होगा अपितु मानव अधिकारों पर केंद्रित एक नई सुबह के आगाज़ की संकल्पना की आधारशीला भी रखी जा सकेगी। इस अवसर पर मैं इस अंक में योगदान करने वाले सभी विद्वान लेखकों को अपनी ओर से बधाई देता हूँ।

(राजीव शर्मा)

सम्पादकीय

किसी भी व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिए यह आवश्यक है कि उसके लिए निर्धारित नियमों का पालन सभी द्वारा ईमानदारी से किया जाए एवं परस्पर निर्भर व्यवस्थाओं के निर्धारित नियमों का भी सम्मान किया जाए क्योंकि प्रत्येक व्यवस्था दूसरी व्यवस्था से जुड़ी रहती है और प्रभावित होती है। व्यवस्थाओं की परस्पर निर्भरता पर्यावरण, समाज, अर्थजगत हर कहीं देखी जा सकती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि व्यवस्थाएँ परस्पर सापेक्ष होती हैं। यह बात हमें अपनी समस्याओं को समझने और उनका निराकरण करने के लिए एक महत्वपूर्ण सूत्र देती है।

आज हमारे देश की आर्थिक प्रगति तीव्र गति से बढ़ रही है। यह माना जा रहा है कि तीव्र गति से बढ़ती आर्थिक व्यवस्था देश में गरीबी उन्मूलन के प्रयासों में महत्वपूर्ण योगदान देगी जिसके परिणामस्वरूप हर नागरिक को गौरवपूर्ण जीवन यापन के साधन उपलब्ध हो सकेंगे। किन्तु वर्तमान व्यस्था में तीव्र गति से फैलता भ्रष्टाचार से देश की आर्थिक प्रगति एवं सामान्यजन के जीवनयापन को सबसे बड़ा खतरा पैदा हो गया है। देश में प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था की कोई भी ईकाई इससे बच नहीं पायी है। साथ ही यह शीर्क से निम्न, हर स्तर पर दीपक की तरह फैल गया है।

मानव अधिकारों की दृष्टि से देखें तो भ्रष्टाचार इन अधिकारों की स्थापना के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा साबित हो रहा है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में आने वाली ज्यादातर शिकायतों के मूल में भ्रष्टाचार ही प्रमुख कारण मिलता है। जीवन का अवसर मिले पर जीवन जीने का उपाय न मिले या उसमें बाधा आये तो उस अवसर का कोई अर्थ नहीं होता। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा रोजगार के अवसर जो जीवन के अधिकार के वास्तविक अर्थ को परिभाषित करते हैं, भ्रष्टाचार के चंगुल में फँसते जा रहे हैं। आम आदमी का जीना दूभर हो रहा है।

वस्तुतः भ्रष्टाचार कर्त्तव्य से पराङ्मुख होने या दूर भागने की ओर संकेत करता है। अर्थात् वह कर्त्तव्य और आचरण में गिरावट को बताता है। मानव अधिकार की स्थापना तब तक संभव नहीं होगी जब तक हम इस गिरावट पर काबू नहीं पा लेते। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर

आयोग की इस वार्षिक पत्रिका के वर्तमान अंक का केन्द्रीय विषय **'भ्रष्टाचार'** रखा गया है। समाज के विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले लेखकों ने भ्रष्टाचार की समस्या के विभिन्न पहलुओं पर अपना मत प्रस्तुत किया है और उससे निजात पाने के लिए उपायों का भी संकेत किया है। इस ज्वलन्त समस्या को मुखर करने में उनके सहयोग के लिए आयोग की ओर से हम आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही इस अंक में वैश्वीकरण, परंपरा, साहित्य तथा समाज, महिला सशक्तिकरण, पंचायती राज तथा बुजुर्गों के मानव अधिकारों से संबंधित महत्वपूर्ण, सूचनाप्रद लेख प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

जर्नल के पूर्व अंक की भांति आयोग इस बार भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री आर. सी. लाहोटी का **'साक्षात्कार'** प्रकाशित कर रहा है। साथ ही आयोग के महत्त्वपूर्ण निर्णयों को कहानी का रूप देते हुए उसे रोचक बनाकर प्रकाशित करने का क्रम जारी है। यह जर्नल जनजागरण का माध्यम बने और सतर्क, सजग, जिम्मेदार नागरिक की भूमिका को प्रशस्त करने में सफल हो, यही हमारी कामना है।

हमें आशा है कि यह अंक विचारों की श्रृंखला को आगे बढ़ायेगा और हम भ्रष्टाचार मुक्त समाज की कल्पना को साकार करने की दिशा में कुछ कदम आगे बढ़ सकेंगे।

(जगदीश प्रसाद मीणा)

लेख

लेख

मानव अधिकार तथा लोकतंत्र

• लक्ष्मी सिंह

मानव अधिकार तथा लोकतंत्र आधुनिक मानव सभ्यता के दोअभिन्न अंग बन चुके हैं। एक में, मनुष्यों के अधिकारों की बात कही गई है तो दूसरे में उन अधिकारों को दिलाने हेतु तंत्र यानी व्यवस्था की चर्चा होती है। एक अच्छे समाज तथा सुदृढ़ राज्य को बनाए रखने के लिए दोनों की भूमिका अहम होती है। जहां मानव अधिकार सुरक्षित रहते हैं वहां मजबूत लोकतंत्र की उपस्थिति रहती है तथा जहां सुव्यवस्थित लोकतंत्र है, वहां मानव अधिकारों का संरक्षण होता है।

मानव अधिकार की परिभाषा दो महत्त्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी ऐतिहासिक घोषणाओं से प्रेरित है — अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा (1776) तथा फ्रांस की मनुष्य एवं नागरिक अधिकारों की घोषणा (1789)। फ्रांस की इस घोषणा का स्वरूप अत्यंत सार्वजनिक था। दोनों घोषणाएं निरंकुश शासन को समाप्त करने एवं सभी व्यक्तियों की स्वतंत्रताओं की रक्षा करने हेतु तैयार की गई थी। ये वर्ग आधारित शासन को खत्म करके सामाजिक एवं आर्थिक समानताओं को स्थापित करने के पुरजोर कोशिश थे, तथा समाजवादी आंदोलन के साथ मानवाधिकारों की विकासशील अवधारणाओं को जोड़ने के नए प्रयास थे।

दो विनाशकारी विश्व युद्ध के पश्चात् अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों पर विचार उनके वर्तमान अर्थ पर आधारित किया गया। इसके फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ ने इन अधिकारों की सार्वजनीनता को महत्त्व देते हुए मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र सन् 1948 में पारित किया। सर्वप्रथम इनका संबंध व्यक्ति के नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों से था। दूसरे चरण में सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सुरक्षा की व्यवस्था की गई। तीसरे चरण में विकास के अधिकार की घोषणा है, जिनमें पर्यावरण संबंधी, सांस्कृतिक एवं विकासात्मक अधिकारों का समावेश है। ज्ञात हो कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने प्रथम एवं द्वितीय चरण के प्रायः सभी अधिकारों तथा तृतीय चरण के कई अधिकारों की अभिव्यक्ति भारत के स्वतंत्र होने के कुछ वर्ष पहले की थी। संयुक्त

• अध्यक्ष, झारखण्ड अधिविद्य परिषद, रांची

राष्ट्र संघ द्वारा 1948 में मानव अधिकारों की घोषणा जारी होने के बाद साठ से भी ज्यादा साल बीत चुके हैं किन्तु इस अवधी में घोषणा में अंगीकृत मानव अधिकारों का संरक्षण निराशाजनक रहा है। इन अधिकारों के पूर्ण कार्यान्वयन के लिए उनका ज्ञान तथा ईमानदारी से कोशिश करने की अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि इन्हीं से हमारा अस्तित्त्व जुड़ा हुआ है।

मानव अधिकार की व्याख्या भारतीय संसद द्वारा पारित मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम–1993 में की गई है। इस अधिनियम की धारा 2 के अनुसार मानव अधिकारों का मतलब संविधान द्वारा प्रत्याभूत या अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में निहित और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्त्तनीय जीवन, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा संबंधी अधिकार है। अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं का अर्थ 16 दिसम्बर, 1966 को संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा द्वारा अंगीकृत नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों से संबंधित प्रसंविदा और आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित प्रसंविदा है। भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों एवं उनके संरक्षण के प्रावधान अंकित है।

भारत में लोकतंत्र विधिवत् स्थापित किया गया है। भारत का संविधान 26 जनवरी, 1950 से लागू है जिसके तहत इस देश को एक गणतंत्र घोषित किया गया है। सौ करोड़ से ज्यादा आबादी वाला भारतीय गणराज्य दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। यह लोकतंत्र ब्रिटिश संसदीय पद्धति पर आधारित है किन्तु इसमें अमेरिका तथा यूरोप के भी प्रभाव निहित है। भारत का संसद दो सभाओं में विभक्त है – लोकसभा (जिसके सभी सदस्य निर्वाचित होकर आते हैं) तथा राज्य सभा (जिसके सदस्य मनोनीत अथवा सीमित चयन प्रक्रिया से आते हैं)। लोक सभा जनता की सभा है तथा राज्य सभा राज्यों का परिषद है। दोनों मिलकर देश के कानून बनाते हैं तथा दोनों देश की राजधानी दिल्ली में अवस्थित हैं। भारत में लोकसभा के सदस्य विभिन्न राजनीतिक पार्टियों से चयनित होकर आते हैं। कई पार्टियाँ मिलकर भी सरकार बना सकती हैं। सबसे बड़े गठबंधन अथवा बहुमत प्राप्त पार्टी से प्रधानमंत्री का चयन होता है। प्रधानमंत्री उन सभी कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं, जो भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त है तथा उनका सहयोग मंत्रिमंडल करता है।

यद्यपि ब्रिटेन में राष्ट्रपति का पद नहीं है, भारत में राष्ट्रपति का पद सृजित है। राष्ट्रपति की आज्ञा से मंत्रियों की नियुक्ति होती है। यह आज्ञा मात्र औपचारिकता है। राष्ट्रपति का पद सामान्यतः नामधारी शासक जैसा है, किन्तु आपातकाल में राष्ट्रपति शीघ्रता के साथ प्रशासनिक कार्रवाई कर सकते हैं जो कि संसद जैसे बड़ी संस्था के लिए अल्प समय में करना संभव नहीं होता है। अगर देश को सैन्य खतरा हो तो राष्ट्रपति देश में आपातकाल की घोषणा करके एक मात्र शासनिक प्राधिकार बन सकते हैं। उसी प्रकार अगर देश के किसी राज्य में निर्वाचित सरकार तथा शासन विफल हो जाय तो

राष्ट्रपति शासन लागू करने के साथ राज्य के राज्यपाल के माध्यम से शासन चलाने की शक्ति राष्ट्रपति को है। किन्तु ज्यादातर समय प्रधानमंत्री को ही राजनैतिक शक्ति प्रदत्त है। भारत के लोकतंत्र की मजबूती इसी बात से स्पष्ट होती है कि जब से यह देश स्वतंत्र हुआ है, तब से आज तक न तो केन्द्रीय सरकार/प्रशासन ध्वस्त हुआ है और न ही सैन्य शासन लागू हुआ है।

भारत में लोकतंत्र को सशक्त बनाने के लिए प्रत्येक राज्य में पंचायती राज लागू करने का प्रावधान है। धरातल पर ग्राम पंचायत होता है जिसका मुखिया एवं सरपंच गांवों के लोगों द्वारा चयन/निर्वाचन प्रक्रिया के तहत नियुक्त होता है। ग्राम पंचायत से ऊपर पंचायत समिति एवं उससे ऊपर जिला परिषद होती है। पंचायती राज ग्रामीण क्षेत्रों का स्थानीय स्वशासन है जिसके माध्यम से ग्रामीण नागरिक अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए विकास एवं सुशासन को कायम करते हैं। शहरी क्षेत्रों में कहीं नगर निगम, कहीं नगर पालिका तथा कहीं सतही स्तर पर अधिसूचित क्षेत्रीय समिति कायम है जिनके जरिए शहरी नागरिक स्वायत्त शासन का कार्यान्वयन करते हैं। इन सभी की स्थापना के पीछे नागरिकों के मानव अधिकारों का संरक्षण ही मुख्य उद्देश्य है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1948 में मानव अधिकारों पर सार्वभौम घोषणा पत्र के अनुच्छेद 21 में प्रावधानित है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकार/शासन में भाग लेने का अधिकार है, सीधे तौर पर अथवा स्वतंत्र रूप से चयनित प्रतिनिधियों के माध्यम से। प्रत्येक को अपने देश में आम सेवा प्राप्ति हेतु समान अधिकार हैं। सरकार के प्रभुत्त्व का आधार जनता का अभिमत होगा जिसकी अभिव्यक्ति सार्वजनीन एवं समान मताधिकार होगा तथा जिसकी प्रक्रिया गोपनीय मतदान अथवा समकक्ष स्वतंत्र मतदान पद्धति होगी।

असैनिक तथा राजनीतिक अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक को अधिकार एवं मौका प्राप्त होगा कि वह सार्वजनिक विषयों के संचालन में सीधे तौर पर भाग ले सके अथवा स्वतंत्र रूप से चयनित प्रतिनिधियों के माध्यम से, कि वह समय-समय पर आहुत चुनावों में मतदान कर सके एवं चयनित हो सके, कि समानता के सामान्य शर्तों पर अपने देश की सार्वजनिक सेवाओं को प्राप्त कर सके।

लोकतंत्र एवं मानव अधिकार अलग-अलग लेकिन आपस में जुड़ी हुई धारणाएं हैं। लोकतंत्र आम जनता द्वारा संचालित शासन की बात कहती हैं तो मानव अधिकार उन तमाम सार्वजनिक अधिकारों की बात कहती है जो प्रत्येक समाज के हर व्यक्ति के लिए है। मानव अधिकार एवं लोकतंत्र की व्याख्या आधुनिक युग में व्यापक हो चुकी है। यूनान के प्राचीन एथेन्स का प्रत्यक्ष लोकतंत्र अब बदलकर प्रतिनिधिक लोकतंत्र का

स्वरूप ले चुका है। पूर्व में महिलाओं एवं उपेक्षित वर्गों की भागीदारी वर्जित थी किन्तु अब सभी नागरिक लोकतंत्र में सम्मिलित हैं। सन् 1993 विएना उद्घोषणा में कहा गया है कि जन साधारण द्वारा अभिव्यक्त अभिमत पर लोकतंत्र आधारित है। लोग इसी के जरिए अपनी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था को तय करते हैं तथा उनके जीवन के सभी पहलुओं में पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। ये सभी पहलू मानव अधिकार के चेहरे हैं जिन्हें लोकतंत्र के माध्यम से हासिल किया जाता है।

लोकतंत्र का प्राथमिक सूचक सामान्य चुनाव है। इन चुनावों को विधिवत ढंग से संपन्न कराने के लिए यह जरूरी है कि नागरिकों को अपना संघ बनाने, अपनी राय व्यक्त करने तथा एक जुट होने का अधिकार प्राप्त हो। जब ये अधिकार प्राप्त होंगे तो स्वच्छ एवं स्वतंत्र निर्वाचन संभव हो सकेगा। एक सफल लोकतंत्र का दूसरा सूचक है आम जनता के प्रति निरंतर उत्तरदायी शासन जिसके चलते विकेन्द्रित सरकार तथा कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका की शक्तियों का पृथक्करण का होना जिसका नियंत्रण एवं संतुलन पद्धति के माध्यम से अनुश्रवण करना आवश्यक होता है। इनकी भूमिकाएं लिखित संविधान में दर्ज होनी चाहिए। उसमें विधायिका का वित्तीय उत्तरदायित्व तथा क्षेत्रीय एवं स्थानीय शासन का भी जिक्र होना चाहिए। लोकतंत्र का तीसरा अहम सूचक है एक गुंजायमान, सक्रिय तथा सभ्य समाज जिसके अंतर्गत स्वतंत्र मीडिया, स्वतंत्र समाज सेवी, विकास/शिक्षा/मानव अधिकार/महिला सशक्तिकरण इत्यादि के लिए समर्पित संस्थाएं विद्यमान होते हैं। ऐसे समाज में सभी नागरिकों के मानव अधिकारों का संरक्षण आसान हो जाता है।

मानव अधिकार वे सभी अधिकार हैं जो किसी को मानव होने के नाते मिलना चाहिए। ये अधिकार समान हैं क्योंकि सभी मानव समान हैं। सभी मानव के अधिकार अहस्तान्तरणीय हैं और किसी भी परिस्थिति में वे जीवित रहते हैं। मानव अधिकारों का उल्लंघन एवं उनका इंकार दोनों परिस्थितियां मानव अधिकारों के विरुद्ध हैं। मानव अधिकार की परिभाषा वृहताकार होती जा रही है। सभी मनुष्य को भूख, बीमारी तथा दमन से सुरक्षा चाहिए। सभी को अपने घर, नौकरी तथा समाज में शान्तिपूर्ण ढंग से रहने/काम करने हेतु संरक्षण चाहिए। इस सोच में मनुष्य के आर्थिक एवं सामाजिक अधिकार सम्मिलित हैं। अतः वर्तमान दृष्टिकोण से, लोकतंत्र तथा मानव अधिकार एक दूसरे से अलग नहीं माने जा सकते।

भारत में मानव अधिकार की स्थिति जटिल कही जाएगी क्योंकि देश का आकार बड़ा है तथा उनमें आश्चर्यजनक विविधता है। भारत एक विकासशील देश है। पूर्व में यह ब्रिटिश साम्राज्य का एक उपनिवेश था पर अब यह स्वतंत्र, प्रभुसत्ता संपन्न, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य है। भारत का संविधान मौलिक अधिकारों को प्रावधानित करता है। इन अधिकारों में धार्मिक स्वतंत्रता तथा बोली एवं देश–विदेश में जाने–आने की स्वतंत्रता

भी शामिल है। संविधान में कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका की शक्तियों के पृथक्करण की चर्चा है। यद्यपि समय–समय पर भारत में हो रहे मानव अधिकारों के उल्लंघन की चर्चा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होती रहती है, किन्तु न्याय संगत होगा यह देखना, कि अब तक भारत ने मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए कौन से कदम उठाए हैं।

संविधान में न्यायालयों द्वारा प्रवर्त्तणीय मौलिक अधिकारों को अंगीकृत किया गया। समाज के उपेक्षित लोगों, जैसे अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों इत्यादि के लिए शिक्षा, नियोजन एवं राजनीतिक प्रतिनिधित्व के क्षेत्रों में आरक्षण का प्रावधान किया गया। सन् 1952 में क्रिमिनल ट्राईब्स एक्ट को समाप्त कर दिया गया। इस एक्ट के मुताबिक जो जनजाति "अपराधी जनजाति" माने जाते थे उन्हें उक्त सूची से हटा दिया गया। वर्ष 1955 में हिन्दू पारिवारिक कानून में सुधार किया गया एवं हिन्दु महिलाओं को अधिक अधिकार दिए गए। 1973 में भारत के उच्चतम न्यायालय ने केशवानन्दा भारती मामले में यह नियमन दिया कि भारत के संविधान के मौलिक ढांचा को, मौलिक अधिकार समेत, संवैधानिक संशोधन से बदला नहीं जा सकता। 1978 में मेनका गांधी बनाम युनियन ऑफ इण्डिया मामले में उच्चतम न्यायालय ने नियमन दिया कि संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रावधानित 'जीने का अधिकार' को आपातकालीन समय में भी निलम्बित नहीं रखा जा सकता। वर्ष 1989 में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम पारित हुआ। सन् 1992 में संवैधानिक संशोधन द्वारा स्थानीय स्वायत्त शासन (पंचायती राज) की स्थापना की गई। इसके जरिए तीन स्तरीय स्थानीय शासन ग्रामीण स्तर से लागू हुआ जिसमें एक तिहाई सीट महिलाओं के लिए आरक्षित रखा गया। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण को सम्मिलित करते हुए कुछ राज्यों में महिलाओं के लिए आरक्षण बढ़कर पचास प्रतिशत हो गया है। वर्ष 1993 में मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम लागू हुआ तथा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई। वर्ष 2001 में भारत के उच्चतम न्यायालय ने भोजन के अधिकार को लागू करने के लिए व्यापक आदेश दिए। सन् 2005 में शक्तिशाली सूचना अधिकार अधिनियम पारित किया गया ताकि जन प्राधिकारों व देश के नागरिक को सूचना प्राप्त हो सके। दी ऑफिशियल सीक्रेट्स एक्ट (1923) को समाप्त किया गया। इसी वर्ष राष्ट्रीय ग्रामीण नियोजन कार्यक्रम पारित किया गया जिसके आधार पर नियोजन प्राप्त करने का सर्वव्यापक अधिकार सुनिश्चित किया गया है। वर्ष 2006 में उच्चतम न्यायालय ने भारतीय पुलिस में सुधार का आदेश दिया। भारतीय पुलिस की मानव अधिकार से संबंधित खराब छवि को देखते हुए ऐसा आदेश पारित किया गया।

भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य होने बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि सभी भारतीय नागरिक के मानव अधिकरों का संरक्षण होता है। देश में व्यापक गरीबी, शिक्षा की दयनीय हालत तथा बढ़ता हुआ आपराधिक ग्राफ इस बात के द्योतक हैं कि

यहां का लोकतंत्र मजबूती से काम नहीं कर रहा। पुलिस के वारदातों का शिकार हुए बहुतेरे लोग हैं जिनकी गिनती करना कठिन है। पुलिस हिरासत में हुई ज्यादातर मौत का कारण पुलिस प्रताड़ना है। इसीलिए राष्ट्रीय मानव अधिकारआयोग ने सभी राज्य सरकारों को निर्देश दिया है कि पुलिस अथवा जेल हिरासत में हुए मौत के प्रत्येक मामले का विडियोग्राफी एवं प्रतिवेदन आयोग को घटना के 48 घंटों के अन्दर प्राप्त हो जाना चाहिए। कश्मीर एवं पूर्वोत्तर राज्यों में सेना के विरुद्ध मानव अधिकारों के उल्लंघन के आरोप लगते रहते हैं। 1958 में आर्म्ड फोर्सेस (स्पेशल पावर्स) एक्ट लागू रहने से सेना एवं केन्द्र सरकार की आलोचना होती रहती है। इस एक्ट के तहत सेना को विशेष शक्तियाँ दी गई हैं जिसका कभी–कभी दुरुपयोग होने की खबर मिलती है। वर्ष 1975–77 में भारत में आपातकाल लागू रहा। इस अवधि में मानव अधिकारों के उल्लंघन के कई आरोप लगे क्योंकि इस समय में मौलिक अधिकार निलम्बित रहे। सन् 1984 में ऑपरेशन ब्लू स्टार हुआ जिसके तहत अमृतसर के पवित्र स्वर्ण मंदिर जो सिख समुदाय का महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थान है, में भारत सरकार द्वारा सैन्य कार्रवाई की गई। इसमें कई सिख धर्मावलम्बी एवं सेना के लोग मारे गए। वर्ष 1992 में बाबरी मस्जिद के ढांचा को जबरन गिराने के कारण कई हिन्दू–मुस्लिम वारदातें हुई जिसमें मानव अधिकारों का खूब उल्लंघन हुआ।

भारत में मानव व्यापार एक बहुत बड़ी समस्या है। इस व्यापार में बच्चे एवं लड़कियां धड़ल्ले से बेची तथा खरीदी जाती है। नेपाल तथा बंगला देश से भी लड़कियों को भारत में लाकर देह व्यापार कराया जाता है। बंधुआ मजदूरी तथा खतरनाक उद्योगों में लगाए गए बच्चों की समस्या भी मानव अधिकार का घोर उल्लंघन है। भारत ने इन समस्याओं के निदान के लिए कई कानून बनाए हैं तथा सजा भी प्रावधानित किया है। महिलाओं पर हो रहे घरेलू हिंसा भी एक जबरदस्त मानव अधिकार संबंधी विषय है। घरेलू हिंसा को दंडनीय अपराध घोषित किया गया है तथा इस हेतु द प्रोटेक्शन ऑफ विमेन फ्रॉम डोमेस्टिक वायलेन्स एक्ट को अक्टूबर 2006 से लागू किया गया। यह अलग बात है कि इसके सख्त कार्यान्वयन के लिए अभी तक पर्याप्त कदम नहीं उठाए जा सके हैं। महिलाओं के मानव अधिकार के सरंक्षण हेतु प्रायः प्रत्येक राज्य में अलग से महिला आयोग स्थापित किया गया है ताकि उन पर हो रहे अत्याचार की सुनवाई तथा कार्रवाई हो सके। अलग से महिला थाना की व्यवस्था भी की गई है। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई है। अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, डायन प्रथा निवारण अधिनियम, इत्यादि, कानून बनाए गए हैं ताकि महिलाएं ऐसी कुप्रथाओं एवं प्रताड़नाओं से बच सके? ये सभी व्यवस्थाएं हैं महिलाओं के मानव अधिकारों की रक्षा हेतु।

भारत में श्रमिकों के कल्याण के लिए कई कानून बनाए गए हैं ताकि उन्हें फैक्टरियों एवं उद्योगों में काम करने के क्रम में मानवीय व्यवहार मिले। महिला श्रमिकों एवं उनके बच्चों की देखभाल के लिए भी कई प्रकार के कानूनी प्रावधान किए गए हैं। मादा भ्रूण हत्या को रोकने के लिए पी. सी. पी. एन. डी. टी. एक्ट लागू किया गया है ताकि डायगनॉस्टिक क्लीनिकों के जरिए लिंग भेद नहीं किया जाए। भारत ने महिलाओं के विरुद्ध हो रहे भेदभाव को मिटाने के लिए अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा सी.ई.डी.ए.डब्लू. पर अपनी सहमति दे दी है। उसी प्रकार बच्चों के लिए बने अंतरराष्ट्रीय बाल अधिकार प्रसंविदा पर अपनी सहमति जतायी है।

एक मजबूत लोकतंत्र में आम चुनाव महत्त्वपूर्ण होता है। भारत में अभी तक आम चुनाव नियमित ढंग से होते आ रहे हैं। लेकिन आम जनता के प्रति निरन्तर उत्तरदायी शासन अभी भी नहीं हो सका है। भारत में अभी भी नागरिकों को मूलभूत सुविधाएं आसानी से नहीं मिल पाती। अभी भी लोग भुखमरी के शिकार होते हैं। सभी को घर नहीं मिल पाया है। बड़ी संख्या में बच्चे बीमारी, कुपोषण तथा असमय मृत्यु के शिकार हो रहे हैं। महिलाओं की भी वही हालत है। अशिक्षा एवं अंधविश्वास बड़ी चुनौतियां हैं। ये सारी परिस्थितियाँ एक कुव्यवस्थित लोकतंत्र के चलते है जिसमें भ्रष्टाचार कूट–कूट कर भरा हुआ है। भ्रष्ट राजनेता, भ्रष्ट प्रशासनिक तंत्र, भ्रष्ट जनता और कुछ हद तक भ्रष्ट न्यायपालिका–ये सभी भारत के लोकतंत्र को विकृत कर चुके हैं जिसके कारण देश में मानव अधिकारों का संरक्षण नहीं हो पा रहा है। भारत में न्यायपालिका, विधायिका एवं कार्यपालिका की भूमिकाओं एवं शक्तियों को संवैधानिक पृथक्करण किया जा चुका है किन्तु मानव अधिकारों के हनन तथा प्रशासनिक कुव्यवस्था को देखते हुए कभी–कभी न्यायपालिका अपने हद से आगे बढ़कर बाकी दो क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने लगती है। फलतः टकराव की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

भारत में मीडिया तो स्वतंत्र है, किन्तु उसका रवैया पक्षपातपूर्ण है। बहुत कम समाचार पत्र अथवा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया मिलते हैं जो निष्पक्ष हों। इसकी वजह से लोगों को किसी भी महत्त्वपूर्ण समाचार की सही जानकारी नहीं मिल पाती। परिणामस्वरूप समाज सक्रिय एवं जागृत नहीं हो रहा है। समाज सेवा के नाम से सैकड़ों संस्थाएं ठगी का काम कर रहे हैं जिसके चलते धन का दुरुपयोग होता है एवं जरूरतमंदों को लाभ नहीं मिलता है। एक जागृत लोकतंत्र के होने पर ऐसी विषम परिस्थिति नहीं होती।

सम्प्रति, भारत काले धन की समस्या से जूझ रहा है। विकास कार्यों के लिए दिए गए सरकारी धनराशि ठेकेदारों एवं बिचौलियों के पास चली जा रही है। भ्रष्टाचार के चलते लोकतंत्र पुरी तरह से कमजोर हो गया है। फलतः मानव अधिकारों का संरक्षण नहीं हो पा रहा है। एक सशक्त लोकपाल बनाने की चर्चा चल रही है। आदर्श लोकतंत्र

के लिए निगरानी सख्त होना जरूरी है। सख्त निगरानी सिर्फ लोकपाल अकेले नहीं कर सकेंगे। उनका हाथ मजबूत करने के लिए प्रशासनिक तंत्र को ठीक करना होगा व समाज को चेतना होगा।

आज भारत में जन वितरण प्रणाली मजाक बनकर रह गई है क्योंकि आवश्यक सस्ते खाद्यान्न तथा अन्य रोजमर्रे के सामान उचित मूल्य पर दुकानों के जरिए आम जनता तक नहीं पहुंच रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रणाली की भयावह स्थिति है जहां गरीब लोग अभी भी भुखमरी के शिकार हो रहे हैं। सरकार द्वारा उपलब्ध कराया गया अनाज बिचौलिए ले जा रहे हैं। मिट्टी का तेल काला बाजारी का शिकार बन चुका है। सम्मान के साथ जीने का मानव अधिकार लोगों को प्राप्त नहीं हो रहा है। झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश की गरीबी अफ्रीका के बदतर देशों से ज्यादा है।

इस गरीबी के चलते उग्रवाद तेजी से इन क्षेत्रों में फैल चुका है जिसके परिणामस्वरूप करीब रोज वारदातें होती है एवं पुलिस के जवान तथा ग्रामीण मौत के शिकार हो रहे हैं। उग्रवादी अपने को माओवादी कहते हैं तथा जहां–जहां उनका वर्चस्व है वहां–वहां विकास का कार्य बन्द है। ये उग्रवादी सरकारी एवं निजी कार्यकर्त्ताओं से लेवी वसूलते हैं जिसके चलते इन इलाकों में अब कोई न तो पदस्थापित होना चाहता है और न ही काम करना चाहता है। बिना डर–भय के, मुक्त जीवन जीने का मानव अधिकार गौण हो चुका है – इन क्षेत्रों में लोग डर कर किसी तरह जी रहे हैं। उग्रवादी इलाकों में प्रशासन की ज्यादा चलती नहीं है। उग्रवादी गतिविधियों के चलते एक समानान्तर शासन चल रहा है जो खौफ पर आधारित है। बेरोजगारी इतना ज्यादा है कि उग्रवादियों को आसानी से युवकों का साथ मिल जाता है। रोजगार पाने का मानव अधिकार भारत के लोकतंत्र में अभी तक एक सपना बनकर रह गया है। जब तक यह अधिकार गंभीरता से लागू नहीं किया जाएगा, तब तक लोकतंत्र विफल ही माना जाएगा।

बेरोजगारी की स्थिति खराब रहने के बावजूद बड़ी–बड़ी परियोजनाओं के लिए कृषि योग्य जमीन को अधिग्रहित करने से सरकार नहीं चूकती। यद्यपि कि यहां की आर्थिक व्यवस्था कृषि आधारित है जिसके जरिए अधिकतर लोगों को रोजगार मिलता है, फिर भी कृषकों को विस्थापित करने में सरकार नहीं हिचकती है। फलस्वरूप विस्थापन से राज्यों में अशान्ति फैलती है तथा पश्चिम बंगाल में सिंगुर जैसी स्थिति उत्पन्न होती है। उजड़े हुए किसान अपनी रोजी रोटी से वंचित होने के साथ–साथ मानव अधिकारों के हनन के शिकार हो जा रहे हैं। बेरोजगारी भयानक रूप धारण कर चुकी है विशेषकर युवाओं में। वर्ष 1991 से जो नई आर्थिक नीतियां अपनाई गई हैं, विशेषकर

निजीकरण की नीति बाजारवाद पर जोर तथा कई महत्त्वपूर्ण सामाजिक उत्तरदायित्वों से सरकार द्वारा हाथ खींच लेना को बेरोजगारी का एक बड़ा कारण माना जा रहा है। इसके चलते देश में गरीबी अप्रत्याशित रूप से बढ़ रही है एवं अमीरों और गरीबों के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। आज भारत में शिक्षित बेरोजगार की कतार बढ़ती जा रही है जबकि अशिक्षा अभी भी भारी समस्या बनी हुई है। देश में पर्याप्त विद्यालयों एवं शिक्षकों की अत्यंत कमी है। जो भी शिक्षक हैं, सभी उचित योगयता रखते हैं यह कहा नहीं जा सकता। सभी सरकारी विद्यालयों में समुचित उपस्कर एवं शौचालय होंगे ऐसी बात नहीं होगी। देश में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार अधिनियम लागू हो चुका है किन्तु हमारा शासन इसे कारगर ढंग से कार्यान्वित करने में सक्षम नहीं हुआ है।

भारत की नवीनतम पीढ़ी कुपोषण से ग्रसित है। माताओं को पौष्टिक आहार नहीं मिलता जिसके चलते उनके बच्चे जन्मने से पहले ही अस्वस्थ हो जाते हैं। यह एक ऐसी राष्ट्रीय आपदा है जिसका घटनोपरान्त कोई इलाज नहीं हो सकता। आम लोगों को स्वास्थ्य सेवाएं सही मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। दवाओं का दाम दिनों दिन बढ़ता जा रहा है तथा निजी अस्पतालों में इलाज कराना बहुत महंगा है। सरकारी अस्पतालों की हालत ठीक नहीं है – इनमें उपयुक्त दवाइयां नहीं मिलती और न ही पर्याप्त मात्रा में चिकित्सक एवं नर्स उपलब्ध होते हैं। इन सरकारी अस्पतालों को चुस्त–दुरुस्त करने की आवश्यकता है ताकि समय पर उचित चिकित्सा पाने का अधिकार लोगों को मिल सके। भारत के प्रजातंत्र में इन अस्पतालों को ठीक से चलाने का दायित्व उचित एवं योग्य लोगों के हाथ होना चाहिए जो आम जनता के प्रति उत्तरदायी हो।

इन सभी बिन्दुओं से प्रश्न यह उठता है कि क्या जनतंत्र में मानव अधिकारों को मुहैय्या कराया जा सकता है? क्या मानव अधिकारों का संरक्षण संभव है? भारत के आम चुनावों में यही देखने को मिलता है कि दबंग एवं अमीर लोग ही चुनाव में खड़ा होते हैं तथा जीतते हैं। कोई भी राजनीतिक पार्टी गरीब अथवा सच्चे समाज सेवियों को चुनाव लड़ने के लिए टिकट तक नहीं देता। दिनों दिन चुनाव प्रक्रिया खर्चीला होता जा रहा है। आम आदमी के बस की बात नहीं कि करोड़ों रुपये खर्च करके विधायक अथवा सांसद बने। इसी कारण से महिलाएं भी आम चुनाव में उम्मीदवार के रूप में ज्यादा भाग नहीं ले सकती। जब लोकतंत्र को कायम रखने में इतनी कठिनाई तथा खर्च है, तो यह उम्मीद करना कि वह लोगों के मानव अधिकारों की रक्षा करेगा विश्वास करना कठिन है। भारत में जो लोकतंत्र है वह दबंगों का है। कॉरपोरेट घराने देश की नीतियों पर हावी हैं। यह लोकतंत्र तो महज मुखौटा ही लगता है। इन कॉरपोरेट घरानों के वर्चस्व के चलते कई वर्षों से भारत में भारी वित्तीय घोटालों को देखने को मिल रहा है।

उदाहरणस्वरूप, वर्ष 1992 में सिक्युरिटी स्कैम यानि हर्षद् मेहता घोटाला–1995 का हवाला रैकेट–1995 से अब तक चली आ रही खनन की जमीन को निजी कंपनियों को बांटने का घोटाला, 1998 में आर्थिक घोटालों में कई कंपनियों का फंसना, हाल में उजागर हुए कॉमनवेल्थ गेम्स घोटाला, 2 जी स्पेक्ट्रम घोटाला, इत्यादि। भारत सरकार के कई मंत्रालय इन घोटालों में शरीक हुए हैं जैसे टेलीकॉम, पेट्रोलियम, फूड, फर्टिलाइज़र, कोयला और वित्त मंत्रालय इत्यादि। यहां भ्रष्टाचार विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा मीडिया में व्यापक रूप से फैला हुआ है – कौन किसको संभाले? यह अलग बात है कि भारत में लोकतंत्र की पद्धति के चलते सैन्य शासन काबिज नहीं हो पाया किन्तु मानव अधिकार सभी नागरिकों को दिलाने एवं उसकी संरक्षण करने के लिए संप्रति काफी मशक्कत करनी पड़ेगी।

ऐसे प्रजातंत्र से मानव अधिकारों की क्या रक्षा हो सकती है जब अपनी बात को समाज के सामने रखने न दिया जाए? उदाहरण के तौर पर संप्रति उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं आंध्र प्रदेश में फिल्म "आरक्षण" को प्रदर्शित होने से रोक दिया गया है क्योंकि इसमें कुछ ऐसी बातें है जो लोगों को आरक्षण के बारे में सोचने को मजबूर करेगा। भारत में आरक्षण संविधान लागू होने के साथ–साथ लागू है किन्तु इसका मतलब यह नहीं होता कि उस पर बहस नहीं हो सकती। अगर बहस नहीं हो सकती भारत का लोकतंत्र निश्चित रूप से फासीवादी कहलाएगा। अपनी बात रखने की स्वतंत्रता का अधिकार एक महत्त्वपूर्ण मानव अधिकर है। एक स्वस्थ प्रजातंत्र में मीडिया का स्वतंत्र होना जरूरी है क्योंकि तब वह सरकार का ध्यान मानव अधिकारों की हो रही अनदेखी अथवा हनन की ओर निर्भीक ढंग से प्रस्तुत कर सकती है।

मानव अधिकारों का सच्ची संरक्षक एक संवेदनशील लोकतंत्र होता है तभी तो हम कह सकेंगे कि भारत का गणतंत्र आम जनता का है, आम जनता के द्वारा है एवं आम जनता के लिए है। भारत के प्रत्येक नागरिक को समझना होगा कि देश के लोकतंत्र को सफलतापूर्वक चलाने हेतु सिर्फ सरकार का उत्तरदायित्व नहीं है बल्कि देश के लोगों का है। एक स्वच्छ लोकतंत्र के जरिए मानव अधिकारों की संरक्षण हेतु निरंतर निगरानी रखनी पड़ेगी। यह जिम्मेवारी पूरे भारत की है।

लेख

मानव–मूल्य और भ्रष्टाचार की समस्या

• प्रो0 गिरीश्वर मिश्र

धरती पर मनुष्य ही अकेला जीव है जिसके लिए उसका शारीरिक और भौतिक जीवन नाकाफी या अपर्याप्त होता है क्योंकि वह अपनी बुद्धि के बल पर अपनी भौतिक सीमा के पार भी झांक पाता है। वह प्रकृति की सीमाओं से न बंध कर खुद संस्कृति रचता है। उसकी रची संस्कृति उसकी उपस्थिति को निरंतरता और नया प्रयोजन देती है। इस अर्थ में मनुष्य स्वयं अपने को रचता है– अपना निर्माता है उसकी भौतिक कृतियों को देख इसमें तनिक भी सन्देह नहीं होता कि उसकी सर्जना बाह्य जगत में एक बड़ा हस्तक्षेप है। पर इससे भी अधिक महत्व की बात है लक्ष्यों या मूल्यों की सर्जना, जो एक अत्यंत व्यापक और भविष्योन्मुखी हस्तक्षेप सिद्ध होती है। मूल्य का जगत संभावना का जगत होता है और इनका प्रयोजन मनुष्य को राह दिखाना है। मनुष्य केवल आहार (भोजन), निद्रा, भय और मैथुन (सेक्स) की पशु–वृत्तियों तक अपने को सीमित न रख ऐसे व्यापक मूल्यों को खोजता है जिन पर जीवन को भी न्योछावर किया जा सके। मूल्यैषणा या मूल्यों की तलाश ही मनुष्यता का लक्षण है और उत्कर्ष भी। ये मूल्य ही थे जिनके लिए भगत सिंह, आजाद बिस्मिल जैसे वीरों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। कहना न होगा कि भारत की स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़े गये संग्राम में और अपने निजी जीवन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा के मूल्यों पर विशेष बल दिया था। तात्पर्य यह कि मूल्यों का व्यक्ति और समाज के विकास में विशेष योगदान होता है।

मानव अधिकारों की आधारशिला मानव मूल्यों पर ही टिकी है। इन मूल्यों की अनदेखी कर के समाज में मानव अधिकारों की स्थापना किसी भी तरह संभव नहीं है। भ्रष्टाचार की स्थितियाँ वस्तुतः मानव मूल्यों की अवहेलना की ही स्थितियाँ होती हैं। भ्रष्टाचार जहाँ एक ओर व्यक्ति को उसके प्राप्य से वंचित करता है वहीं दूसरी ओर कुछ चुने हुए लोगों को उनकी पात्रता के अभाव में भी अवैधानिक या गलत तरीकों से

• मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

लाभान्वित करता है। जब कोई व्यक्ति य समूह अपने परिश्रम और उपलब्धि के बीच तारतम्य नहीं ढूंढ पाता है तो उसे कुंठा होती है जिनका तात्कालिक परिणाम होता है आक्रामकता की ओर प्रवृत्ति। यह विषम परिस्थिति समाज में भेदभाव, असंतोष, हिंसा और अस्थिरता का वातावरण पैदा करती है जिनमें मानव अधिकारों के हनन की संभावना और बढ़ जाती है।

वस्तुतः मानव जीवन कुछ स्पृहणीय लक्ष्यों या चाहतों के तहत संचालित होता है। इन चाहतों पर कोई बन्दिश नहीं होती, सिवाय खुद अपने द्वारा लगाये गये आचरण प्रतिबंधों के। यदि ये प्रतिबंध न हों तो ये चाहतें आदमी को कहीं भी ले जा सकती हैं। 'धर्म' इसी अर्थ में मनुष्य की चरम विशेषता है जो उसे उचित और अनुचित के बीच तथा ग्राह्य और अग्राह्य के बीच भेद करने का विवेक प्रदान करता है। इस विवेक के न रहने पर हम पशुवत आचरण करने लगते हैं और तात्कालिक भौतिक सुख पाने तक ही अपने जीवन और कर्म को सीमित कर लेते हैं। भारतीय परम्परा में अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), अपरिग्रह (आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना), शुचिता, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य और क्षमा जैसे गुणों को 'धर्म' व्यक्ति को अपने बारे में कम और दूसरों के साथ कैसे व्यवहार करें या सामाजिक जीवन कैसे जिए इसके बारे में अधिक बताता है। योग शास्त्र में इसी को 'यम' और 'नियम' का नाम दे दिया गया। इस तरह धर्म ऐसे मूल्यों का समुच्चय बन जाता है जो जीवन के आधार हैं और समाज की जीवन रेखा (लाइफ लाइन)। यह मनुष्य की सबसे बड़ी खोज है।

अपनी सांस्कृतिक जय–यात्रा के क्रम में जंगल से कृषि और फिर सामुदायिक जीवन की ओर आगे बढ़ने पर मनुष्य अकेले प्रयास के बदले परस्पर निर्भरता की ओर अग्रसर हुआ। मानवीय कल्पना का यह सामाजिक आयाम व्यक्ति केन्द्रिकता से आगे जा कर भरोसा, उत्तरदायित्व की भावना और सहयोग के लिए आमंत्रित करने वाला सिद्ध हुआ। इसी क्रम में मूल्यों की संकल्पना समाज के लिए वांछनीय या आदर्श व्यवहार के रूप में प्रकट हुई। परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप से मूल्य हमें कुछ कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और कुछ के लिए बरजते हैं। मूल्य जीवन को संचालित भी करते हैं और संयमित भी।

देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद हमने एक नई दुनिया में प्रवेश किया। धीरे–धीरे हमारी प्राथमिकताएं बदलती गयीं। बाज़ार, उद्योग, नगर और पश्चिमी शिक्षा हमारे देश और समाज के विकास के पैमाने बनते गये। इन्हीं के साथ बढ़ी लिप्सा और प्रलोभन का बोलबाला। सीमित स्रोत होने पर भी महत्त्वाकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं रही। 'प्रगति' और 'विकास' को खर्च करने की क्षमता, साधनों का अपव्यय करने और जीवन की गुणवत्ता

को वस्तुओं के लिए दौड़ में शामिल होने के साथ जोड़ दिया गया। शांति, सह–अस्तित्व, सामंजस्य और सद्भाव निरर्थक और एक हद तक पिछड़ेपन के तरीके से होते गये। परिणाम यह हुआ कि गरीबी भी बढ़ी और अमीरी भी। दोनों के बीच की खाई बढ़ती ही गयी। आज भारत में पूर्वापेक्षता करोड़पति और अरबपति कौन कहे खरब पति लोगों की संख्या भी काफ़ी बढ़ गयी है। लोगों की क्रय–शक्ति बढ़ी है और फैशन, मनोरंजन तथा सैर–सपाटे जैसे अनुत्पादक मदों पर लोग काफ़ी खर्च करने लगे हैं। इन अर्थों में जीवन की गुणवत्ता में खासा इजाफ़ा हुआ है। पर इसके साथ ही महत्त्वपूर्ण मानवीय मूल्यों में गिरावट आई है और संबंधों की ऊष्मा घटी है। सबसे चिन्ताजनक बात है कि लोलुपता बढ़ी है और इसके चलते जीवन में व्यतिक्रम बढ़ा है। लोग अपने कार्य की दक्षता में कम और उल्टे सीधे तरीकों से अधिकाधिक धनार्जन करने पर ज्यादा जोर देने लगे हैं। शार्टकट, तिकड़म, जुगाड़ जैसे फौरी उपाय अपनाना सहज होता गया। इस परिवर्तन का दुष्परिणाम घोटालों के रूप में हमारे सामने है।

साधन से अधिक सम्पत्ति एकत्र करने वालों की जमात को देखें तो एक बहुत बड़ा वर्ग सामने आता है जो थोड़े ही समय में चमत्कारिक ढंग से अकूत सम्पत्ति का स्वामी बन बैठा। इसके साथ ही विदेशों में भी काला धन लोगों ने जमा कर रखा है। कहना न होगा कि इस वर्ग में राजनेता, नौकरशाह और अपराधी किस्म के लोगों का बाहुल्य है। इनके बीच की आपसी मिलीभगत (नेक्सस) को ले कर कई बार चिन्ता भी व्यक्त की गयी है, पर उसे कम करने की दिशा में कुछ खास प्रगति नहीं हो सकी है। साथ ही राजनीति धन साध्य होती गयी और अपराध से उसका बड़ा गहरा रिश्ता बन गया है। आज संसद और विधान सभाओं में आपराधिक पृष्ठभूमि के लोगों की बड़ी संख्या मौजूद है। ये लोग मंत्री पद आसीन होते हैं क्योंकि जब तक अपराध सिद्ध न हो जाय वे कानूनी तौर पर हर तरह की सुविधा और लाभ के हकदार होते हैं। दूसरी ओर न्याय की पेचीदी और समय साध्य व्यवस्था उन्हें मनचाहा करने की पूरी छूट दे देती है। मुकदमे का फ़ैसला होते–होते सारे गवाह मर–खप जाते हैं और अपराध को सिद्ध करना एक टेढ़ी खीर बन जाता है। परिणाम यह होता है कि भ्रष्टाचार पर अंकुश नहीं लग पाता है।

यह एक बेहद चिन्तनीय स्थिति है कि आज भारत में सार्वजनिक तौर पर समाज के ऊपरी तबके के लोगों के आचरण स्वीकृत मानव मूल्यों के विपरीत या भ्रष्ट हो रहे हैं। यह दुःख की बात है कि इस प्रकार के मामलों में सामान्य व्यक्ति के स्थान पर न्यायमूर्ति, मंत्री, सांसद, राज्यपाल, शासन के शीर्ष अधिकारी तक शामिल होते दिखाते हैं। दूसरी ओर न्यायालय हो या कोई सरकारी आफिस हर कहीं 'सुविधा शुल्क' के बिना कोई काम कराना संभव नहीं हो पाता। न्याय की प्रक्रिया इतनी मंहगी और दुरूह हो गयी

है कि वह सबके बस की नहीं रही। कुल मिलाकर हर तरह आम आदमी ही सताया जाता है। उसका तन, मन और धन से शोषण किया जाता है। इनमें ऐसे भी होते हैं जो भ्रष्टाचार के चलते मिलने वाले तात्कालिक लाभों के प्रति आकर्षित हो जाते हैं और किसी भी तरह से अच्छा बुरा कोई भी साधन अपनाकर धन, वैभव एकत्र करने में जुट जाते हैं।

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया या भ्रष्ट आचरण का तात्पर्य ऐसा आचरण है जो गैरकानूनी और अनैतिक हो और अपात्र को लाभ पहुँचाने के लिए किया गया हो। प्रायः गलत साधनों से धन एकत्र करना और भौतिक सम्पत्ति अर्जित करना इसका सबसे प्रचलित तरीका है। इन सबके पीछे असीमित धन लिप्सा एक प्रमुख कारण है। आज सत्ता के मूल्य फ़ौरी लाभ, शक्ति का संजय और सत्ता पर काबिज बने रहने की जुगत बिठाने तक सिमट कर रह गए हैं। 'मूल्य' और 'आदर्श' जैसे सरोकार के स्थान पर सत्ता की शक्ति के बंटवारे के आधार पर समर्थन देना या वापस लेना जनप्रतिनिधियों के लिए आम बात हो चली है। सत्ता की बन्दर बांट के क्रम दो प्रदेश स्तर पर विरोध और केन्द्र में समर्थन का अद्भुत नजारा हम देख चुके हैं। शासन करने वालों को प्रजा के सुख की चिन्ता नहीं है। वे अपनी पीढ़ी दर पीढ़ी के उन्नत भविष्य को सुधारने के लिए धन संचय में जुटे हैं।

हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन का यह एक दुःखद पक्ष है कि आज सत्ता भ्रष्टाचार का प्रतीक और पर्याय सी बनती जा रही है। समाज में शीर्ष स्थान पर स्थित लोग भ्रष्टाचार के एक से एक उच्चतर मानदंड स्थापित कर रहे हैं। आज नेता, प्रशासक, अधिकारी, न्यायाधीश, पुलिस और हर स्तर के सरकारी कर्मचारी सभी भ्रष्टाचार की गिरफ्त में हैं। भ्रष्टाचार करने का साहस और उसकी मात्रा दोनों में वृद्धि हुई है। ऐसे लोगों की सम्पत्ति में होने वाली आशातीत वृद्धि की व्याख्या भ्रष्ट तरीकों के बिना संभव ही नहीं है। जनता का अहित कर, उसे धोखा दे कर और अनुचित तरीकों का उपयोग करते हुए अपना लाभ और स्वार्थ–साधन राष्ट्र–द्रोह के तुल्य है। एम. पी. या एम. एल. ए. बनने वालों का एक ही ख्वाब रहता है कि कितनी जल्दी सम्पन्न बना जाये और इस आकांक्षा की कोई ऊपरी सीमा नहीं है। आज चुनावी व्यवस्था इतनी व्यय–साध्य हो गयी है कि साधारण आदमी के बूते की बात नहीं है। इसका फल हमारे सार्वजनिक जीवन की शुचिता के लिए बड़ी नकारात्मक और अहितकारी साबित हो रहा है। राजनीति का दरवाजा अच्छे लोगों के लिए लगभग बन्द सा हो चला है। वे इस काली कोठरी में नहीं जाना चाहते।

रुपये से चुनाव जीतना और जीत कर फिर रुपये इकट्ठा करना अधिकांश नेताओं का अन्तहीन व्यसन हो चला है। राजनैतिक हल्कों में आपसी स्वार्थ को साधन नेताओं का न्यूनतम साझा कार्यक्रम हो गया है जिसके मार्ग में घोर वैचारिक भिन्नता भी

आड़े नहीं आती। इस हेतु सभी एकजुट हो जाते हैं। मुख्यमंत्री और केन्द्रीय मंत्री को जेल, दागियों को मंत्री बनाना, सीवीसी के चयन में गड़बड़ी और उसे तब तक सही ठहराना जब तक वह न्यायालय से निरस्त न हो जाय उच्च और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों पर संगीन आर्थिक भ्रष्टाचार के आरोप और महाभियोग और प्रदेश के मुख्यसचिव स्तर के अधिकारी को जेल कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो सत्ता की बखिया उधेड़ रहे हैं। जब उत्तरदायी व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व का वहन नहीं करता है या उसकी उपेक्षा करता है तो वह आम आदमी के दुःख का कारण बनता है। आज ऐसा ही हो रहा है।

समकालीन भारतीय समाज जिन प्रमुख समस्याओं से ग्रस्त है उनमें भ्रष्टाचार की समस्या न केवल सबसे प्रमुख है अपितु वह स्वयं कई समस्याओं की जड़ में है। चूंकि सामाजिक जीवन परस्पर निर्भरता पर आश्रित है, यह आवश्यक हो जाता है कि एक दूसरे के प्रति दायित्वों का निर्वाह किया जाय। यह बात प्रत्येक सामाजिक संगठन पर लागू होती है। परिवार, गांव, समुदाय, नगर, प्रदेश और देश चाहे जिस स्तर के संगठन की कार्यप्रणाली देखी जाय तो यह बात आसानी से स्पष्ट हो जाती है कि इनका संचालन करने के लिए यह अनिवार्य रूप से अपेक्षित हो जाता है कि आचरण की शुचिता अक्षुण्ण रखी जाय। जब हम अपेक्षित या स्वीकृत मानकों का विरोध करते हैं या उनसे परे हट कर अपना आचरण संचालित करते हैं तो हम भ्रष्टाचार के दोषी हो जाते हैं। समाज बड़े लोगों के आचरण पर नजर रखता है और उसका अनुकरण करता है।

भ्रष्टाचार के प्रति हमारा आकर्षण, जिसके वशीभूत हो कर लोग उसमें लिप्त होते हैं इतना प्रबल होता है कि वे उसके लिए जोखिम उठाते हैं, झूठ बोलते हैं और वह सब कुछ करते हैं जो वर्जित है और न करने योग्य होता है। इसके मूल में संभवतः लोभ की प्रवृत्ति होती है अर्थात् अपात्र द्वारा अवांछित लाभ उठाने की चेष्टा की जाती है। आम तौर पर दो तरह के भ्रष्टाचार पाये जाते हैं। एक तो वह जिसमें शिकार को सताया जाता है, शोषण किया जाता है ताकि उससे लाभ (घूस) मिल सके और दूसरे वे जिनमें कुछ लोग मिल बैठ षडयंत्र करते हैं और अपने लिए लाभ की व्यवस्था करते हैं।

कहना न होगा कि भ्रष्टाचार के सबसे अधिक मामले आर्थिक श्रेणी के होते हैं। विगत् वर्षों में, खास तौर पर 1990 के बाद के आए उदारीकरण और निजीकरण के दौर में जितने घोटाले हुए हैं, उन पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें ऊँचे तबके के और सम्पन्न लोग जिनमें राजनेता, प्रशासनिक और पुलिस महकमें के बड़े सरकारी अधिकारी और न्यायपालिका के लोग काफी बड़ी संख्या में सम्मिलित हैं। दुर्भाग्य से दिन प्रतिदिन इनकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। भ्रष्टाचार सत्ता हथियाने और सम्पन्न होने का शॉर्टकट साबित हो रहा है। हमारी प्रशासनिक व्यवस्था और न्यायिक व्यवस्था

की लालफ़ीताशाही, जटिलता तथा समय के प्रति लापरवाही आदि के कारण इस बात का मौका मिल जाता है कि सन्देह का लाभ आसानी से मिल जाने से अपराधी निर्भय हो जाते हैं।

भ्रष्टाचार का सत्ता–सुख से बड़ा निकट का रिश्ता है। इस पर अंकुश मूल्यों द्वारा स्थापित होता है। पर आज सत्ता मूल्यनिरपेक्ष होती जा रही है और ऐसे में मूल्यों की महत्ता कमजोर पड़ने लगी है और वे बेमानी लगने लगे हैं। आज पूरे देश की मुख्य चिन्ता सत्ता और शासन के गलियारों में व्याप्त भ्रष्ट आचार से निजात पाने की है। जन लोकपाल विधेयक के पक्ष में जन्तर–मन्तर पर अनशन पर बैठे श्री अन्ना हजारे के सात्विक विरोध के सुर में देश की सारी जनता पर सुर मिला था। तदुपरान्त रामलीला मैदान में चले उनके अनशन को पूरे राष्ट्र से मिले अपार जन–समर्थन से यह स्पष्ट सन्देश मिलता है कि भ्रष्टाचार स्वाभाविक नहीं है और उसके खिलाफ आम आदमी में बड़ा गहरा क्षोभ और आक्रोश है। भारी जद्दो जहद के बाद अंततः सरकार और संसद दोनों को इस सत्य को पहचानना ही पड़ा और एक सशक्त लोकपाल विधेयक के लिए संकल्प लेना पड़ा। पर उस घटनाक्रम से यह भी प्रकट हो गया कि राजनीति के महारथी किस तरह इस कदम के लिए तत्पर नहीं है। इस विधेयक के भविष्य पर प्रश्न चिह्न बना हुआ है।अभी भी राजनेता मुक्त मन से लोकपाल विधेयक का स्वागत करते नहीं दिखाते और अमली जामा पहनाने में जरूर बाधाएँ आयेंगी।

स्मरणीय है कि एक सशक्त लोकपाल निश्चय ही स्वागत योग्य है। पर इसे प्रभावी होने के लिए जरूरी है कि इसे आवश्यक अधिकार भी दिए जाये कि वह बिना सरकार की अनुमति के मामलों पर विचार कर सके और इसके निर्णय मानने की बाध्यता हो। सीवीसी की संस्था इन्हीं कारणों से असफल सिद्ध हुई। 'लोकपाल' रोग की दवा है पर इससे कहीं ज्यादा कारगर होगी रोकथाम की व्यवस्था। भ्रष्टाचार को रोकने के लिए हमें प्रशासन की विभिन्न संस्थाओं को चुस्त बनाना होगा। चूंकि आम आदमी का सरकारी व्यवस्था (ब्यूरोक्रैसी) से हर दिन सामना होता है इसमें सुधार को प्रथमतः प्राथमिकता देनी होगी। भ्रष्टाचार को घटाने के लिए निर्णयों को पारदर्शी और स्वेच्छया निर्णय (डिस्क्रिशन) पर लगाम होनी चाहिए। काम करने में अनावश्यक विलम्ब करने वालों को दंड मिलने की व्यवस्था होनी चाहिए दूसरी ओर वरिष्ठता के बदले कार्य कुशलता को पुरस्कृत किया जाना चाहिए इस हेतु मूल्याँकन की एक वैध और प्रभावी व्यवस्था अपेक्षित होगी। घूस के शिकार को इसकी शिकायत के लिए प्रोत्साहित करने की व्यवस्था होनी चाहिए पर गलत शिकायत करने वाले को दंड भी मिलना चाहिए। ई–प्रशासन (ई–गवर्नेन्स) की इसमें खासी भूमिका दिखती है। बहुत से कार्य इसकी सहायता से भ्रष्टाचार के चंगुल

से मुक्त किए जा सकते हैं। आज कई प्रदेशों में इस दिशा में पहल की गयी है। सिटिनल चार्टर लागू करना, पारदर्शी नीलामी और पद्धतियों को वेबसाइट पर प्रस्तुत करना कुछ ऐसे कदम हैं जिनसे भ्रष्टाचार पर नियंत्रण में सहायता मिलेगी। इनके साथ ही चुनावी सुधार लाना भी जरूरी है। उसमें होने वाले खर्च की पारदर्शी व्यवस्था आवश्यक है। हमारे पुलिस महकमे के बहुत से नियम कानून अव्यावहारिक और व्यर्थ हैं पर हम उन्हें ढो रहे हैं। जब तक हम इन क्षेत्रों में सुधारों को नहीं लायेंगे भ्रष्टाचार की समस्या से मुक्ति नहीं मिल सकेगी। इसके लिए इच्छाशक्ति, साहस और दृढ़ता की विशेष आवश्यकता है।

आज प्रशासन तंत्र और उसकी सत्ता की व्यवस्था ऐसी है कि अपराधियों को दंड नहीं मिल पाता है और आम आदमी निरंतर हताश होता जा रहा है। लोग चाहते हैं कि सत्ता भ्रष्टाचार से मुक्त हो। श्री अन्ना हजारे के प्रयत्न से देश में मूल्य–चेतना की सुगबुगाहट बढ़ी है। आवश्यकता है कि इस चेतना की लौ जलाए रखी जाय और भ्रष्टाचार मुक्त समाज की परिकल्पना को साकार किया जाय। तभी सच्चे अर्थों में मानव अधिकारों की प्रतिष्ठा हो सकेगी।

अंत में यह भी याद रखना होगा कि लोकपाल जैसी कानूनी व्यवस्था भ्रष्टाचार को समूल उखाड़ फेंकने के लिए कोई राम बाण नहीं होगी। आचरण की शुद्धता और शील की स्थापना ही इसका स्थायी हल होगा। इसकी जड़ें परिवार और विद्यालय जैसे समाजीकरण की संस्थाओं में जीते हुए और परिवेश में उपस्थित माडलों को देखने में निहित होती हैं। ये सभी बच्चे का संस्कार गढ़ते हैं और उसका मार्ग तय करते हैं। अतः नैतिक मूल्य का स्वास्थ्य परिवेश बनाना हमारी प्रथम वरीयता होनी चाहिए।

एक अनूठी संघर्ष–गाथा

• चमन लाल

कर्नाटक प्रदेश के जिला मैसूर का हेगड देवन कोटे तालुक जानजाति बहुल क्षेत्र है। तालुक की कुल जनसंख्या–253928 (2001 जनगणना) का 15 प्रतिशत भाग आदिवासी समुदाय का है। कुल 9 अनुसूचित जनजातियों (जनसंख्या : 39239) में से पाँच–जेनूकुरुबा, काडूकुरुबा, पनिया, यारवा और सोलीगा मूलतः वनवासी हैं जो पीढ़ियों से काबीनी नदी के इर्द–गिर्द घने जंगल में जीवन–यापन करते रहे हैं। इनकी कुल आबादी लगभग 15,000 है। वर्ष 1960 तक ये प्रकृति से सामंजस्य कायम कर अपना पूर्णतः वन–आधारित जीवन निर्बाध बिता रहे थे। इनके खान–पान, रहन–सहन, सुस्ती–बीमारी की सभी आवश्यकताएं जंगल से पूरी हो जाती थीं। जंगली जानवरों का शिकार और जंगल में उगने वाले कंदमूल तथा फल इनको भर पेट भोजन प्रदान करते थे। जड़ी–बूटियों के सेवन से ये स्वस्थ और सशक्त बने रहते थे। इनकी अपनी विशिष्ट (कन्नड़ पर आधारित) बोली है। प्रत्येक समुदाय अपने पारंपरिक देवी–देवताओं तथा पूर्वजों की उपासना करता था। संपत्ति तथा निजी स्वामित्व की अवधारणा से अपरिचित इनका जीवन पूर्णतः संतुष्ट और शांतिपूर्ण था।

1960 में इन जन–जातियों के सदियों पुराने निवास स्थल काबीनी जलाशय की डूब में आ गए और इनको रहने के लिए नए स्थान ढूंढने पड़े। 1973 में बांदीपुर प्रोजेक्ट टाइगर नेशनल पार्क जो बाद में राजीव गांधी नेशनल पार्क के नाम से जाना जाने लगा, के निर्माण के फलस्वरूप ये लोग एक बार फिर विस्थापित हुए। जंगल से बेदखल करके इनको जंगल के करीब लेकिन जंगल की ज़मीन से बाहर छोटी–छोटी बस्तियों में बसाया गया जिन्हें 'हाडी' कहा जाता है। जंगल द्वारा प्रदत्त रोजगार के सारे साधन छिन जाने के बाद ये अपनी मर्जी के मालिक मस्तमौला स्वच्छंद प्राणी अपना निर्वाह करने के लिए दैनिक श्रम पर आधारित कुली मजदूर बन गए। शहद बटोरने की विधा में विलक्षण निपुणता रखने वाला एक आदिवासी कम्पय्या जंगल में प्रवेश निषिद्ध बना दिए जाने के परिणामस्वरूप अपना पेट भरने के लिए भिखारी बन गया।

• पूर्व स्पैशल रेपोर्टियर, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

काबीनी जलाशय तथा बांदीपुर नेशनल पार्क के निर्माण के लिए सरकार ने मैसूर और चामराज नगर जिलों के 20 आदिवासी गावों की 20,000 एकड़ जमीन अधिगृहित की थी। इन परियोजनाओं से विस्थापित होने वाले जनजाति परिवारों की न तो कोई क्षतिपूर्ति हुई और न ही उनके पुनर्वास की कोई व्यवस्था की गई। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 2999 परिवारों के पुनर्वास के लिए 6221 एकड़ भूमि आबंटित की गई थी। जिला प्रशासन स्वीकार करता है कि 1731 परिवार पुनर्वास के लाभ से पूर्णतः वंचित रहे। 12000 रुपये प्रति एकड़ की सरकार की आफर सभी परिवारों ने अस्वीकार कर दी थी। कुछ को अन्य स्थानों पर जमीन के पट्‌टे प्रदान किए गए लेकिन कई परिवारों को वैध पट्‌टों होने पर भी जमीन का कब्जा नहीं मिला।

यह उल्लेखनीय है कि बांदीपुर नेशनल पार्क की स्थापना के लिए 'वाइल्ड लाइफ एक्ट' के तहत की गई आशय की घोषणा के तुरंत बाद परियोजना से प्रभावित होने वाले समस्त परिवारों के अधिकारों का निर्धारण कर उनकी क्षतिपूर्ति तथा पुनर्वास की व्यवस्था करना वैधानिक अनिवार्यता थी। आशय की घोषणा के साथ ही जनजाति बस्तियों के 465 परिवार जंगल से विस्थापित कर दिए गए थे। घोषणा का नोटीफिकेशन सरकार ने 12 साल बाद 1985 में किया। चूंकि उस समय तक जंगल से हटाए गए जनजाति परिवार ज़मीन पर कब्जा खो बैठे थे, उनको पुनर्वास पैकेज में शामिल नहीं किया गया।

14–15 वर्षों तक वन विभाग तथा अन्य सरकारी संस्थाओं से न्याय प्राप्त करने की विफल चेष्टाओं के बाद वर्ष 1987 में विस्थापित परिवारों का जन आंदोलन शुरू हुआ। उन्होंने राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास भी किया किन्तु मात्र सूखी सहानुभूति के उन्हें कुछ नहीं मिला। वन विभाग से उनके संबंधों में तनाव तथा कटुता का आ जाना स्वाभाविक था। 1987 में होसाहल्ली आदिवासी बस्ती का एक युवक शिवमूर्ति एक फॉरेस्ट गार्ड द्‌वारा की गई फायरिंग में शहीद हुआ। इसके पूर्व वन विभाग के कर्मचारियों द्‌वारा 4 आदिवासियों की मारपीट तथा प्रतिक्रिया में आदिवासी महिलाओं द्‌वारा वन विभाग के कार्यालय के घेराव के सिलसिले में पुलिस ने 28 आदिवासियों के विरूद्ध आपराधिक मामला दर्ज किया था।

आदिवासियों की शिकायत पर पुलिस ने कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की थी। एच. डी. कोटे तालुक में जनजाति समुदाय की शिक्षा स्वास्थ्य और विकास के उद्‌देश्यों पर केन्द्रित स्वयंसेवी संस्था स्वामी विवेकानंद यूथ मूव्हमेंट (एस.वी.वाई.एम.) ने 1984 में अपनी स्थापना के आरंभ से ही अपने साहस, निष्ठा तथा जनकल्याण की भावना के लिए अच्छी ख्याति अर्जित कर ली थी। वन आधारित जनजातियों की कठिनाइयों को समझना तथा विभिन्न सरकारी विभागों द्‌वारा उनको दूर कराने में इस संस्था ने अहम भूमिका

निभाई है। विस्थापित जनजातियों के आंदोलन को एस.वी.वाई.एम. में 1998 से एक नई दिशा प्रदान की। फरवरी 98 में कर्नाटक के मुख्यमंत्री को अभिवेदन प्रस्तुत किया तथा वन विभाग के अलावा पुलिस समाज कल्याण तथा नागरिक अधिकार प्रवर्तन प्रकोष्ठ को भी अभ्यावेदन दिए। वन विभाग के बढ़ते हुए दमनकारी रवैये को देखते हुए विस्थापित परिवारों की शिकायत पर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 के तहत शिकायत दर्ज करायी गयी।

अगस्त 1998 में यह प्रकरण एस.वी.वाई.एम. की शिकायत पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (आयोग) पहुंचा। आयोग द्वारा संज्ञान लेते ही, अब तक निष्क्रिय बनी रही कर्नाटक सरकार हरकत में आ गई। फरवरी, 1997 में राजस्व आयुक्त, मार्च, 1997 में सचिव वन विभाग तथा जनवरी 1998 में उप आयुक्त मैसूर और साथ ही मुख्य सचिव कर्नाटक सरकार ने मीटिंग बुलाकर विस्थापितों की समस्या का हल निकालने की कोशिश की।

जून, 1998 में आयोग ने यह प्रकरण जाँच के लिए मुझे सौंपा। मैंने कुछ माह पहले ही स्पेशल रैपोर्टियर का अवैतनिक पद संभाला था। जांच का आरंभ मैंने उन स्थानों के निरीक्षण से किया जहां से विस्थापित आदिवासियों को निकाला गया था। मेरे ठहरने की व्यवस्था कबीनी डैम के भव्य गैस्ट हाउस में की थी। मैंने वहां न ठहरकर जंगल के इलाके का विस्तृत दौरा करने की इच्छा व्यक्त कर उप–आयुक्त तथा वन विभाग के अधिकारियों को असमंजस में डाल दिया था। वे मेरी बात टाल नहीं सके और दो दिन का वक्त उप–आयुक्त मैसूर समेत वन विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों के साथ वे स्थान देखने में बिताया जहां से आदिवासी परिवारों को हटाया गया था। वन–विभाग के अधिकारी जंगल के उस हिस्से में इंसानों की किसी बस्ती के होने की संभावना से इंकार कर रहे थे। उजड़ी हुई झोपड़ियों के अवशेष भी उनके हठीले रवैये में कोई फर्क नहीं ला सके। तभी आवेदक आदिवासियों में से एक ने हमको एक बहुत पुराना कुंआ दिखाया जो कई साल पहले उनके पीने के पानी का स्रोत रहा होगा। उस कुंए की बनावट तथा उसके निर्माण में इस्तेमाल की गई इंटों की शक्ल देखकर सब इस बात पर सहमत थे कि वह कुंआ कई सौ साल पुराना था तथा आवेदक आदिवासियों के वहां बसे होने के दावे को समर्थन देता था। एक बात और याद आ रही है उस ज़मीनी निरीक्षण से जुड़ी हुई। वन विभाग के अधिकारी बार–बार कह रहे थे कि उनके रिकार्ड में आवेदक आदिवासियों में से किसी का भी नाम दर्ज नहीं था। जब मैंने पूछा कि उनके रिकार्ड में किसके नाम दर्ज है तो उन्होंने कुछ साल पहले के सर्वेक्षण का उल्लेख करते हुए कुछ नाम पढ़कर सुनाए। आवेदक आदिवासियों में से दो–तीन ने तिलमिलाकर कहा कि वे

नाम उन गैर–आदिवासियों के थे जिन्होंने वन विभाग के कर्मचारियों की सांठ–गांठ से जंगल की ज़मीन पर अनाधिकृत कब्जा कर रखा था। प्रत्युत्तर में वन विभाग के अधिकारियों की चुप्पी ने मुझे ही नहीं, उप–आयुक्त मैसूर को भी विश्वस्त कर दिया कि आवेदकों का दावा गलत नहीं हो सकता। मुझे कटु शब्द बोलने पड़े, "जनाब आपके रिकार्ड में, जंगल की ज़मीन के चोरों के नाम दर्ज हैं जो बाहर से आए, लेकिन पीढ़ियों से जंगल के मूल निवासियों के नहीं जो इस जमीन के असली मालिक हैं।" जंगल का दौरा समाप्त होने के बाद, उप–आयुक्त ने आभार व्यक्त करते हुए कहा था कि इस ज़मीनी निरीक्षण के फलस्वरूप ही वे अपने जिले के कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण स्थानों तथा तथ्यों को देख पाएं जो उनको पहले ही देख लेने चाहिए थे।

मेरी रिपोर्ट पर आयोग ने दिनांक 4 अगस्त, 1998 की कार्यवाही से कर्नाटक सरकार को तीन प्रमुख निर्देश दिए। विस्थापित आदिवासी परिवारों के सदस्य अपने पूर्वजों की पूजा तथा अपने मृतकों के अंतिम संस्कार के सिलसिले में अपने पुराने निवास स्थानों पर जाने से नहीं रोके जायेंगे। आदिवासियों के विरूद्ध चल रहा पुलिस प्रकरण वापस ले लिया जाएगा। बदले में आवेदक आदिवासी अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के तहत की गई शिकायत वापस ले लेंगे। पुनर्वास की प्रक्रिया में बचे 154 परिवारों का पुनर्वास के लिए समुचित व्यवस्था की जाएगी। इससे पहले आयोग के संज्ञान के साथ ही शेष सभी परिवारों के पुनर्वास की लंबित कार्यवाई पूरी कर ली गई थी। अपनी रिपोर्ट में मैंने उल्लेख किया था कि एस.वी.वाई.एम. ने आवेदकों की मदद से एनपुरा इलाके में 500 एकड़ ज़मीन का एक टुकड़ा चिह्नित कर लिया था जो पुनर्वास की आवश्यकता पूरी कर सकता था।

कर्नाटक सरकार ने आयोग के तीनों निर्देश मान लिए। विस्थापित आदिवासियों के अपने धार्मिक अनुष्ठानों के लिए और अपने मृतकों को अपनी पैत्रिक भूमि में ही दफ़नाने के लिए जंगल में जाने की अनुमति दी जाने लगी। दोनों पुलिस प्रकरण वापस ले लिए गए। 154 परिवारों के पुनर्वास के लिए कर्नाटक सरकार ने एनपुरा की 500 एकड़ जंगल की जमीन राजस्व विभाग को स्थानांतरित के लिए भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय को प्रस्ताव भेजा। दुर्भाग्यवश शीघ्र ही यह प्रस्ताव वापिस ले लिया गया क्योंकि एनपुरा की ज़मीन वन–विभाग के लिए बहुत बहुमूल्य थी और वे उसे खोना नहीं चाहते थे। विस्थापितों के लिए अन्यत्र भूमि की तलाश की जाने लगी।

वन विभाग के सहयोग के अभाव में विस्थापित आदिवासियों के पुनर्वास का मामला शिथिल पड़ गया। आयोग ने पहले दो निर्देश दोनों पक्षों में परस्पर विश्वास पुनः स्थापित करने के उपाय मात्र थे जो मान लिए गए थे। असली मामला तो पुनर्वास का था जो ज्यों का त्यों बना रहा।

जनवरी, 2000 में आयोग ने कर्नाटक सरकार को निर्देश दिए कि इसकी सिफारिशें फरवरी, 2000 के अंत तक लागू हो जानी चाहिए। फरवरी, 2000 में ही यह प्रकरण राष्ट्रीय अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जाति आयोग के सामने भी लाया गया। मई, 2000 में कर्नाटक सरकार ने एक और स्थल–हुसकरमाला का चयन कर भारत सरकार से संस्वीकृति मांगी जो नहीं मिली।

आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा का कार्यकाल जनवरी, 2003 में समाप्त होना था। प्रकरण की धीमी गति से सभी क्षुब्ध थे। विस्थापित आदिवासी एस. वी.वाई.एम. और मैं भी। मैं चिंतित था कि यदि न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा की असाधारण क्षमता और प्रभावी व्यक्तित्व भी इस प्रकरण को हल नहीं कर पाए तो यह मामला बरसों लंबित रह सकता है जो आयोग जैसी महत्वपूर्ण संस्था के लिए शुभ संकेत नहीं होगा। मेरे प्रस्ताव पर अपना कार्यभार छोड़ने से दो माह पूर्व न्यायमूर्ति वर्मा ने विस्थापित परिवारों के पुनर्वास के लिए उपयुक्त भूमि के चयन का साझा उत्तरदायित्व भारत सरकार तथा कर्नाटक सरकार के वन सचिवों को सौंपा। एक महीने का वक्त दिया गया यह काम पूरा करने के लिए। कर्नाटक सरकार के वन सचिव को बुलाकर साफ कहा गया कि निर्देश के पालन में किसी तरह की आनाकानी का मतलब यही निकाला जाएगा कि प्रदेश सरकार अपनी आदिवासी जनता के अधिकारों के प्रति संवेदनशील नहीं है। मेरे द्वारा सुझायी यह रणनीति काम आई और 25 अप्रैल, 2003 को कर्नाटक सरकार ने विस्थापित 154 परिवारों के लिए 200 हेक्टेयर भूमि के आबंटन के आदेश जारी किए। यह जमीन जो सोलेपुरा रिजर्व फारेस्ट से 'डिरिज़र्वेशन' की कार्रवाई पूरी करने के बाद ली गई थी विस्थापित परिवारों के आवास तथा खेती का आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त थी।

अपना कार्यभार छोड़ने से पूर्व, 13 जनवरी, 2003 को न्यायमूर्ति वर्मा ने इस प्रकरण में अपने अंतिम आदेश द्वारा निर्देशित पुनर्वास की प्रक्रिया के अनुवीक्षण के लिए उप–आयुक्त मैसूर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसमें भारत सरकार कर्नाटक सरकार और एस.वी.वाई.एम. के प्रतिनिधियों के अलावा मुझे भी शामिल किया गया। इस कमेटी के काम के सिलसिले में मैं मैसूर जाता रहा। 154 परिवारों की पहचान और उनके सत्यापन का काम उप–आयुक्त मैसूर द्वारा बड़ी गंभीरता से किया गया। उसके बाद ही लाभार्थियों को ज़मीन के पट्टे प्रान किए गए। मेरे सुझाव पर उप–आयुक्त मैसूर ने एक उपसमिति गठित की जिसमें तीन प्रमुख जनजाति संस्थाओं तथा विस्थापित परिवारों को प्रतिनिधित्व दिया गया। इस उप–समिति द्वारा पुनर्वास प्रक्रिया की दैनिक गतिविधियों पर नज़र रखी गई।

अगस्त, 2005 में 154 मकानों का निर्माण कार्य आरंभ हुआ। अप्रैल, 2006 में ये मकान तैयार हो गए। रू0 56000 प्रति मकान की लागत में भारत सरकार ने रू0 36,000 और कर्नाटक सरकार ने रू0 20,000 का योगदान किया। भारत सरकार ने एक लाख रुपये प्रति परिवार की दर से पुनर्वास कालोनी के आवश्यक विकास के लिए अतिरिक्त राशि भी दी। उप–आयुक्त मैसूर की सहानुभूतिपूर्ण देख रेख में मकान निर्माण, बिजली पानी की व्यवस्था कालोनी की अंदरूनी सड़कों का निर्माण तथा खेती की जमीन को तैयार करने के सभी काम तत्परता से संपन्न हुए। पुनर्वास प्रक्रिया की समीक्षा के लिए मैं दो बार निर्माणाधीन कालोनी में गया। जून, 2006 में पुनर्वास के सभी काम पूरे हो गए और एक अनूठे संघर्ष की सफल परिणिति के फलस्वरूप एक नई आदिवासी हाडी (कालोनी) का जन्म हुआ जिसे पास में ही बसवेश्वर भगवान के मंदिर के होने की वजह से बसवानगिरी नाम दिया गया।

बस वानगिरी एच.डी. कोटे तालुक मुख्यालय से 7 कि.मी. और मैसूर से 57 कि. मी. दूर है। कालोनी के दो वर्ग हैं। कालोनी ए में जेनू कुरुबा जनजाति के 34, यारवा के 32 तथा सोलीगा के 6 परिवारों को बसाया गया। कुल 72 परिवार अब बढ़कर 86 हो गए हैं। कालोनी बी. में काडूकुरुबा जनजाति के 82 परिवार बसाए गए थे। उनकी वर्तमान संख्या 95 है। दोनों कालोनियों में बिजली तथा पानी की समुचित व्यवस्था है। पानी के लिए एक ओवर हैड टेंक, दो मिनी टेंक और चार हैंडपंप लगाए गए हैं। सभी 154 परिवारों को राशन के लिए अन्त्योदय कार्ड प्रदान किए गए हैं। जन वितरण प्रणाली के सक्षम तथा निर्विघ्न संचालन के उद्देश्य से कालोनी के ही एक सदस्य (नागराज–सोलीगा) को डीलरशिप दिलाना मैं एस. वी.वाई.एम. की एक सराहनीय सफलता मानता हूँ। अपना डीलर मिल जाने के बाद इन परिवारों को राशन के मामले में किसी कमी या कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ रहा है। कालोनी की 'फेयर प्राइस शॉप' करीब की दो अन्य आदिवासी कालोनियों–बमलापुर और सोलेपुरा को भी सेवाएं प्रदान करती है।

कालोनी के बच्चों की शिक्षा के लिए एक अपर प्राथमिक स्कूल (कक्षा 1 से 7) उपलब्ध कराया गया है। स्कूल की अपनी नई इमारत है। 6 अध्यापक हैं – 4 पुरुष 2 महिला, और वर्तमान सत्र में 111 विद्यार्थी हैं –59 छात्र और 52 छात्राएं। यह हर्ष का विषय है कि 6–14 वर्ष की आयु का कालोनी का कोई भी बच्चा स्कूल से बाहर नहीं है। मिड डे मील की व्यवस्था नियमित रूप से चलाई जा रही है। स्कूल की औसत दैनिक उपस्थिति 90 प्रतिशत है और ड्राप आउट दर शून्य है। 10–12 जेनुकुरुबा परिवारों के बच्चे जो वर्ष में दो 2 बार 3–4 माह के लिए पास के जिला कुर्ग में मजदूरी के लिए जाते हैं, पढ़ाई में नियमितता खो देते हैं। इस समस्या का हल ढूंढा जा रहा है। मैं इसे

एस.वी.वाई.एम. के लिए एक चुनौती बताता रहता हूँ। काडूकुरुबा, यारवा और सोलीगा अपने बच्चों की निर्विघ्न पढ़ाई के बारे में गंभीर हैं।

बसवान गिरी कालोनी के दोनों वर्गों के अपने आंगनवाड़ी केन्द्र हैं। आंगनवाड़ी वर्कर बेबी और जयम्मा अपने काम में निपुण हैं तथा रुचि और लगाव से आजकल 65 बच्चों, 8 गर्भवती और 10 दूध पिलाने वाली महिलाओं को पौष्टिक आहार नियमित रूप से दे रही है। कालोनी 'ए' में एक और 'बी' में तीन स्त्री स्वयं सहायता समूह गठित किए गए हैं। सदस्यों की कुल संख्या 40 है। कालोनी ए के निवेदिता स्वयं सहायता समूह की मुखिया भाग्यम्मा अपनी सूझबूझ, शालीनता और नेतृत्व की क्षमता के बल पर कालोनी की ही नहीं, पूरे तालुक की एक प्रभावी व्यक्तित्व मानी जाती है। इनके समूह ने बैंक लिंकेज अर्जित कर 4,40,000 रुपये का लोन भी प्राप्त किया है। स्त्री स्वयं सहायता समूहों के प्रयासों से कालोनी की 6 महिलाओं ने अपना काम शुरू किया है। दो महिलाओं ने किराने की पैटी शॉप खोली है एक फिनायल बनाती है, एक नाश्ते का सामान, एक साड़ी बेचने का काम करती है और एक दर्जी की दुकान चलाती है।

मैं संजीदा चेहरे वाली जेनूबुरुबा महिला चिक्कामणि का विशेष उल्लेख करना चाहता हूँ। 2008 में अपनी पहली विज़िट में मैंने इस औरत को मैले कुचैले कपड़ों में उदासीन और अलग–थलग देखा था। एस.वी.वाई.एम. की एक प्रमुख कार्यकर्ता पौशनी ने बताया कि कुछ महीने पहले ही चिक्कामणि का 12 साल का मेधावी बच्चा नदी में डूब कर मर गया था। मैंने उस बच्चे के बारे में कुछ सवाल पूछे। चिक्कामणि विस्तार से बताने लगी दर्द से बोझिल लेकिन संयत स्वर में। बाद में वह हमें अपने क्वार्टर में ले गई अपने मृत बच्चे के स्कूल में इनाम लेते हुए फोटो दिखाने के लिए। उसक एक ओर छोटा लड़का है। मैंने उसे उसकी परवरिश की जिम्मेदारी की याद दिलायी। पौशनी ने बताया कि वह और उसका पति दोनों टेलरिंग का काम जानते हैं लेकिन कुछ भी करना नहीं चाहते। मैंने पौशनी को राय दी कि वह चिक्कामणि पर ज्यादा समय दे तथा उसे आवश्यक आर्थिक सहायता देकर टेलरिंग का काम शुरू करने के लिए प्रेरित करे। स्वयं सहायता समूह में उसकी रुचि भी बढ़ाई जाए। 5–6 महीने लगे पौशनी को चिक्कामणि को अपनी पीड़ा के विनाशकारी पाश से बाहर निकाल लाने में। अब चिक्कामणि टेलरिंग का काम करती है। साथ में, पास के टाउन से साड़िया खरीद कर लाती है कुछ मुनाफे पर बेचने के लिए। सबसे बड़ा परिवर्तन तो उसके पति में देखा गया है। पहले वह सिवाय सस्ती शराब पीकर पड़े रहने के कुछ नहीं करता था। चिक्कामणि ने बताया अब उसकी शराब बहुत कम हो गई है और वह नियमित रूप से उसके साथ टेलरिंग का काम करता है। मैं चिक्कामणि के चेहरे पर एक खास किस्म

की आभा देखता हूँ जो दर्द को सहारा बनाकर नई जिंदगी शुरू करने वाले जान सकते हैं। वह अपने स्वयं सहायता समूह की सक्रिय सदस्य है, हर बहस में हिस्सा लेती है, कालोनी के किसी भी मुद्दे पर खुलकर बोल सकती है। चिक्कामणि में आए परिवर्तन को देखकर मेरा यह विश्वास और दृढ़ हो गया है कि जिंदगी से मुँह मोड़ लेने वाले, अंदर से टूटे–फूटे इंसानों में से कइयों को हम थोड़ी सी संवेदना और तनिक सहायता देकर फिर जीवन के सामान्य प्रवाह में वापस ला सकते हैं।

जनवरी, 2008 से मैं साल में 6–7 महीने दो हिस्सों में, जिला मैसूर के एच.डी. कोटे तालुक में एस.वी.वाई.एम. के स्वयंसेवी के रूप में बिताता हूँ। संस्था का मुख्यालय सारगुर में है जहां आदिवासियों के लिए एक अस्पताल है जिसके एक कमरे में मैं रहता हूँ। तालुक की कुल 119 आदिवासी कालोनियों में से 30 में हमारी संस्था कार्यरत है – शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामुदायिक विकास के क्षेत्र में। मैं इन सभी कालोनियों का भ्रमण करता रहता हूँ, खासतौर से उनका जहां स्कूल हैं। बसवानगीरी से मेरा विशेष लगाव स्वाभाविक है। इसमें मैं आयोग की एक महत्त्वपूर्ण सफलता का मूर्तरूप देखता हूँ जिसमें मेरा अपना जायज़ हिस्सा है। मैं वर्ष में 3–4 बार वहां जाता हूँ। कालोनी की चौपाल में जमीन पर बैठकर कालोनी के निवासियों – पुरुष एवं महिलाओं से उनके जीवन की सामान्य साधारण बातों के बारे में चर्चा करके मैं प्रसन्न लौटता हूँ। मैं उनकी बोली नहीं समझता। वे हिंदी इंगलिश दोनों भाषाओं से अनभिज्ञ है जो मैं बोलता हूँ। फिर भी, मुझे उनसे उपयोगी जानकारी प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं आती। कुछ मदद एस.वी. वाई.एम. के कार्यकर्त्ता कर देते हैं।

मैंने यहां कभी किसी को असंतुष्ट या उदास नहीं पाया। इन लोगों का जीवन कई तरह के अभावों का जीवन है। खेती की आमदनी से ये साल में 4–5 महीनों की आवश्यकताएं ही पूरी कर सकते हैं। शेष के लिए इन्हें आस–पास के गांवों या पड़ौसी जिले कुर्ग में कुली का काम करना पड़ता है फिर भी, ये अपनी स्थिति के लिए किसी को दोष नहीं देते, सरकार को भी नहीं। अपनी किस्मत पर आंसू बहाना तो इनकी आदतों में है ही नहीं। मैंने पाया है कि इन्हें कोई भी वस्तु ललचा नहीं सकती। ईर्ष्या की भावना से ये पूर्णतः मुक्त है। कालोनी में डिश एंटिना की बढ़ती संख्या (अब तक 20 घरों में यह सुविधा उपलब्ध है) मैं नोट करता रहता हूँ। कुछ परिवार दूसरों की तुलना में तेजी से पनप रहे हैं। उनके रहन–सहन में खर्चीला फर्क आ रहा है। लेकिन मुझे कभी नहीं लगी कि वे अपने को दूसरों से अलग समझते हैं या उन्हें अपने से दूर या अलग होने का अहसास दिलाते हैं।

बसवान गिरी के निवासी 17 जून 2009 का दिन कभी नहीं भूल सकते जब भारत के सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश तथा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के

भूतपूर्व अध्यक्ष न्यायमूर्ति एम. एन. वेंकटचल्लय्या तथा न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा कालोनी में पधारे थे। जब एस.वी.वाई.एम. के संस्थापक डॉ0 बालासुब्रामण्यम ने उनको बताया कि उनकी शिकायत पर पुनर्वास के निर्देश न्यायमूर्ति वेंकटचल्य्या ने दिए थे तथा उनका पालन जस्टिस वर्मा ने कराया था तो उनके चेहरों पर आदर और कृतज्ञता की एक अद्भुत लहर दौड़ गई थी। प्रकरण में मेरी भूमिका से तो वे पहले से ही परिचित थे तथा मुझे अपने परिवार का ही अंग मानने लगे थे। पुरुषों एवं महिलाओं की बेकाबू भीड़ ने दोनों को घेर लिया था। एक–एक करके सभी उनसे हाथ मिलाना चाहते थे। हर कोई उनको छूना चाहता था। न्यायमूर्ति वेंकटचल्लय्या और न्यायमूर्ति श्री वर्मा ने कालोनी का राउण्ड लिया तथा मुखिया लोगों से बात की। न्यायमूर्ति श्री वेंकटचल्लय्या से कन्नड़ भाषा में बात करते हुए चारों समुदायों के मुखिया लोग विशेष गर्व अनुभव कर रहे थे। डॉ0 सुब्रमण्यम जिनको इस अनूठे संघर्ष की विजय का सारा श्रेय मिलना चाहिए खुशी के आंसू रोक नहीं पा रहे थे। मुझे उस अद्वितीय संघर्ष के कई ऐसे मुश्किल मुकाम याद आ रहे थे जब कर्नाटक सरकार की संवेदनहीनता, आयोग के दबाव की अपर्याप्तता और विस्थापितों की बढ़ती बेचैनी और संभावित अराजकता से हताश होकर यह विलक्षण व्यक्ति अपनी उम्मीद खोने लगता था। मैं जानता था उसके एक इशारे से यह शांतिपूर्ण आंदोलन हिंसात्मक लड़ाई में बदल सकता था। मेरी आपत्तियों के बावजूद डॉ0 सुब्रमण्यम यह कहते कभी नहीं थकते कि ऐसे कठिन समय में उन्हें अपना मानसिक संतुलन और आयोग में आस्था बचाए रखने की हिम्मत मुझ से ही मिलती थी।

मैं कह सकता हूँ कि बसवान गिरी में विस्थापित आदिवासियों के पुर्नवास की व्यवस्था का प्रत्यक्ष अवलोकन करके लौटते समय न्यायमूर्ति श्री वर्मा ने इस प्रकरण में अपने अंतिम आदेश के निम्नलिखित शब्दों को याद करके असाधारण प्रसन्नता और गर्व अनुभव किया होगा:–

"ऐसे समय में जब लोगों की सरकार में आस्था समाप्त होती दीखती है मैं देशवासियों को बताना चाहता हूँ कि ईमानदार, युक्तिसंगत, विधि–सम्मत और नैतिक साधनों के प्रति जिनके आधार पर यह आदिवासी प्रकरण लड़ा गया है किसी भी शासन/व्यवस्था का जवाब निश्चय ही सकारात्मक होता है।"

• • •

लेख

भ्रष्टाचार तथा मानवअधिकार

• प्रो. योगेश अटल

पिछले कुछ वर्षों में भ्रष्टाचार की समस्या पर लोगों का अधिकाधिक ध्यान केन्द्रित होने लगा है। समस्या इतनी गहन और इतनी व्यापक है कि इसकी चर्चा और इससे निबटने के प्रयास अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी होने लगे हैं। आर्थिक विकास के बावजूद भी सामाजिक विकास के क्षेत्र में बड़ी खामियाँ है जो बढ़ती हुई गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक विघटन की प्रवृत्तियों में प्रायः सभी देशों में परिलक्षित हो रही है। ऐसी अवस्था में सुधार लाने के लिए सुशासन अर्थात् "गुड गवर्नेन्स" की आवश्यकता पर बल दिया जाना चाहिए। विश्व बैंक के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधि अधिकारियों का एक दल गठित किया गया। इस दल से यह अपेक्षा की गई कि वह सुशासन की परिभाषा तैयार करे और सुशासन के उदाहरण, जहां से भी उपलब्ध हो, एकत्र करे और उनके व्याख्यापूर्ण वर्णनों को वितरित करे ताकि अन्य देश भी उनका अनुपालन कर सके।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं। उदाहरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र के नशीली दवाओं और अपराध के कार्यालय (UN Office on Drugs and crime UNODC) ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक वैश्विक कार्यक्रम का प्रारंभ किया है जिसके अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ के भ्रष्टाचार के विरुद्ध सम्मेलन को कार्यान्वित करने में सदस्य देशों को सहायता प्रदान की जाती है। गैर–सरकारी संगठनों (NGOs) के स्तर पर अंतरराष्ट्रीय पारदर्शिता नामक संस्था (TI) सक्रियता से भ्रष्टाचार के मामलों को उजागर करती है। इसी प्रकार और भी कई छळटे हैं जैसे – ग्लोबल इंटेग्रिटी, ग्लोबल विटनेस, रेवेन्यु वॉच इंस्टीट्यूट, टीरी और ग्लोबल आर्गेनाइजेशन ऑफ पार्लियामेन्टेरियन्स अगेंस्ट करप्शन (GOPAC)। इसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर भी कई गैर–सरकारी संगठन भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान चला रहे हैं। इंडिया अगेंस्ट करप्शन भी इसका एक उदाहरण है जिसने सरकारी कार्यालयों

• यूनेस्को में समाज विज्ञान के पूर्व प्रधान निदेशक

में व्याप्त भ्रष्टाचार का समूल नष्ट करने के लिए राष्ट्रव्यापी आंदोलन चला रहा है और उसके लिए समुचित संस्थागत परिवर्तनों की मांग को अपना समर्थन दिया है।

भ्रष्टाचार का अभिप्राय

अंग्रेजी के 'करप्शन' शब्द का कई अर्थों में प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी का करप्शन शब्द लेटिन भाषा के corruption से आया है जिसका भावार्थ–नैतिक पतन, दुष्ट व्यवहार या सड़ांध होता है। सामाजिक संदर्भ में भ्रष्टाचार सांस्कृतिक मूल्यों की हानि का परिचायक होता है। किसी भी समाज की संस्कृति के स्थापित और सर्वमान्य मूल्यों का हनन भ्रष्टाचार की परिधि में आता है। इस दृष्टि से किसी भी व्यवहार का भ्रष्ट होना या न होना समाज–विशेष की संस्कृति पर निर्भर करता है। जिस व्यवहार को समाज उचित और अनुकरणीय मानता है उस व्यवहार से हट कर चलना ही भ्रष्टाचार का परिचायक होता है।

कौन सा व्यवहार भ्रष्ट है और कौन सा नहीं तथा किस मात्रा तक भ्रष्ट आचरण सहनीय है या नहीं, यह किसी एक संस्कृति के संदर्भ में भी समय–समय पर बदल सकता है। किन्तु सभी समाजों में किसी एक काल में उचित और भ्रष्ट आचरण का भेद सदैव बना रहता है।

यहां यह बता देना भी आवश्यक है कि सभी जीवित समाजों में लोगों का व्यवहार नवीनीकृत नहीं होता। कई कारणों से लोग परिपाटी से हट कर कार्य करते हैं। इसे ही सामाजिक विपथगमन (Social Deviance) कहा जाता है। विपथगमन के माध्यम से ही समाज में परिवर्तन आते हैं, क्रान्तियों, परंपरा से हट कर चलने वाले ही समाज के लिए नयी संभावनाएं प्रदान करते हैं। दूसरी ओर विपथगमन से ही समाज में विघटन की प्रक्रिया भी चल पड़ती है। जिन्हें हम 'अपराध' की संज्ञा देते हैं वे सारे कृत्य विपथगमन का ही परिचायक हैं। भ्रष्टाचार भी इसी श्रेणी में आता है। वह विकास को अवरोधित करता है और समाज के अन्य सदस्यों की यंत्रणा का कारण बन जाता है। इसीलिए प्रत्येक समाज में ऐसे व्यवहारों पर रोक लगाने के लिए सामाजिक नियंत्रण की व्यवस्था होती है। धर्म के माध्यम से मूल्यों और उचित–व्यवहार की पुष्टि, सामाजीकरण की प्रक्रिया से नवजात शिशु का समाज–स्वीकष्त व्यवहार में पालन–पोषण और न्याय एवं दंड व्यवस्था से अनुचित व्यवहार पर अंकुश – हर जीवित समाज की संस्थागत व्यवस्थाएं हैं। इन्हीं के माध्यम से समाज में संघर्ष पर रोक और सहकार को प्रोत्साहन मिलता है।

प्रत्येक समाज में सामाजिक नियंत्रण की संस्थाओं की उपस्थिति इस बात का

स्वीकर्षति है कि सभी में भ्रष्टाचार और अनुचित व्यवहार की न केवल संभावना होती है वरन् ऐसा व्यवहार पाया जाता है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि सभी समाजों में अपराध और भ्रष्टाचार पाया जाता है। इनकी कितनी माया है और कितनी आकर्षति है इसमें अंतर होता है। कौन से अपराध अधिक होते हैं, कौन से नहीं, किस तरह का भ्रष्टाचार अधिक है किस तरह का नहीं, यह समाजगत है। इसी कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल (अंतरराष्ट्रीय पारदर्शिता) नामक संस्था प्रतिवर्ष सभी देशों से आंकड़े इकट्ठे करती है और भ्रष्टाचार के आधिक्य के आधार पर देशों को सूचीबद्ध करती है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, भ्रष्टाचार से कोई देश अछूता नहीं है। यह भी कि भ्रष्टाचार का व्यापक अर्थ भी है और एक संदर्भित अर्थ भी। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जब देशों को भ्रष्टाचार के आधार पर आंका जाता है तो उसका संदर्भ व्यवस्थागत भ्रष्टाचार होता है। व्यक्तिगत आचरण की भ्रष्टता को उसमें सम्मिलित नहीं किया जाता। समाज का कोई सदस्य अपने किसी आचरण में भ्रष्ट हो सकता है। उस आचरण की गंभीरता के अनुसार ही उसे दंडित किया जाता है। छोटे–मोटे विपथगमन की अनदेखी की जाती है। गंभीर कुकृत्यों की समाज यथोचित निंदा करता है अथवा दंडित करता है। जब ऐसा व्यवहार अन्य व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करे तो उसे 'अपराध' की श्रेणी में रखा जाता है। एक दृष्टि से अपराध के कष्ट्य से पीड़ित व्यक्ति के मानव–अधिकारों का हनन होता है। बलात्कार से उत्पीड़ित महिला का मानव अधिकार प्रभावित होता है, किन्तु दो वयस्कों की परस्पर सहमति से किया जाने वाला यौन–व्यवहार इससे भिन्न है। उसे बलात्कार की संज्ञा नहीं दी जा सकती। पर परस्पर सहमति का यौन–संबंध अथवा प्रेम–विवाह भी यदि सामाजिक निषेधों की अवज्ञा माना जाए तो फिर उसे भी यथोचित दंड दिया जाता है। प्रत्येक समाज में इस दृष्टि से निकटाभिगमन निषेध (अर्थात incest taboos) लगे होते हैं किन्तु कौन से संबंधी इस निषेध की परिधि में आते हैं यह समाज की संस्कृति तय करती है। उदाहरण के लिए हिंदु समाज में चचेरे और मौसेरे भाई–बहन के बीच ही नहीं अपितु फुफेरे–ममेरे भाई–बहन अर्थात् क्रॉस कजिन्स के बीच भी विवाह की मनाही है, पर मुस्लिम समाज में इसकी छूट ही नहीं वरन् इन्हें प्राथमिकता दी जाती है। उत्तर भारत के कई भागों में इसीलिए इस निषेध को तोड़ने पर जाति–पंचायतें दंड तक देती हैं। ऐसे व्यवहारों की बढ़ती हुई संख्या के मद्दे नजर इन नियमों को तोड़ने वाले और उनके समर्थक परिवर्तन की मांग करने लगे हैं और ऐसे निषेधों को मानव अधिकार के विरुद्ध घोषित करने लगे हैं।

मानव अधिकारों के हनन के विरुद्ध जो मुहिम चलाई जा रही है वह एक

ओर तो संस्कृति समर्थित परंपराओं एवं रूढ़ियों के विरुद्ध है और दूसरी ओर प्रशासन एवं राजनीति में निरंतर बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के विरुद्ध है जिसके कारण प्रजातंत्र की आधारशिला को ठेस पहुंचती है और शासकगण निरंकुश और दमनकारी होते जाते हैं।

मानव अधिकारों की मांग शासित वर्ग से उठती है। इसीलिए मानव अधिकार से संबंधित कार्यकर्त्ताओं को बहुधा सरकार की खिलाफत करने वाले और व्यवस्था–विरोधी की दृष्टि से देखा जाता है। यथास्थिति बनाए रखने के उद्देश्य से ऐसे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को शासन न केवल संशय की दृष्टि से देखता है वरन् उन्हें दंडित भी करता है और अपराधी घोषित कर उन्हें कारावास भी भेज देता है। ऐसा करना भी एक प्रकार से मानव अधिकारों की अवहेलना ही है।

इस संक्षिप्त व्याख्या से यह तो स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार और मानव अधिकार के बीच अंतर्संबंध है। किन्तु ये एक दूसरे के पर्याय नहीं है। भ्रष्टाचार समाज के नैतिक ह्रास का परिचायक है। व्यवहार में नैतिक गिरावट का द्योतक है। किन्तु भ्रष्टाचार को विद्वानों ने अपने–अपने विशेषीकृत दृष्टियों से देखा है। राजनीति के विद्वान, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, धर्मोपदेशक और समाजसेवी लोग इसे अपने–अपने ढंग से परिभाषित करते हैं। आवश्यकता है कि इस सामाजिक समस्या का अंतर–विज्ञानी ढंग से परीक्षण हो।

भ्रष्टाचार का वर्गीकरण

भ्रष्टाचार (1) राजनैतिक (2) प्रशासनिक, अथवा (3) संस्थागत हो सकते हैं। इनके अतिरिक्त निजी क्षेत्र की कॉरपोरेट संस्थाएं भी भ्रष्टाचार को प्रश्रय देती हैं।

इन सभी में एक बात समान है–निजी लाभ के लिए अपनी आधिकारिक शक्ति का दुरुपयोग। एक प्रकार से यही भ्रष्टाचार की परिभाषा है। किन्तु कानून की दृष्टि से भ्रष्टाचार को और भी सुस्पष्ट ढंग से परिभाषित करना आवश्यक है।

जिन कृत्यों को भ्रष्टाचार का सूचक माना जाता है उनका यहां उल्लेख करना आवश्यक है :–

1. रिश्वत अर्थात् घूस, उत्कोच

इसमें दो तरह के व्यवहार आते हैं :

(अ) किसी सरकारी अधिकारी को अदातव्य या अनुचित लाभ की प्राप्ति के लिए कोई

भेंट या राशि देना या प्रस्तावित करना।

(आ) किसी सरकारी अफसर या कर्मचारी द्वारा स्वयं इस प्रकार की भेंट को स्वीकार करना या परोक्ष रूप से अपने सगे–संबंधियों या मित्रों के माध्यम से प्राप्त करना।

यह आदान–प्रदान इस अंतःक्रिया के दोनों पक्षों से हो सकता है। एक प्रार्थी अपना काम निकलवाने के लिए स्वयं रिश्वत की पेशकश कर सकता है, या फिर सरकारी अधिकारी प्रार्थी के कार्य को प्राथमिकता देने के एवज में मांग भी सकता है। नीचे स्तरों पर रोजमर्रा के कार्यों में तो घूस लेना एक अपेक्षित व्यवहार सा बन जाता है और प्रार्थी रिश्वत देने के लिए तैयार हो कर आता है। ऐसे कामों के लिए बंधी हुई रेट होती हैं और उसे अंतःक्रिया का अलिखित एवं मान्य अंग मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए पासपोर्ट बनवाते समय पुलिस द्वारा पूछताछ के लिए भेजा गया सिपाही एक निश्चित धन–राशि की अपेक्षा करता है और पासपोर्ट का प्रार्थी उसे सहर्ष देता भी है क्योंकि वह यह जानता है कि यह राशि नहीं देने पर सिपाही उसकी अर्जी को गफलत में डाल सकता है और इस कारण पासपोर्ट मिलने में देरी हो सकती है।

रिश्वत को सक्रिय और निश्चेष्ट की श्रेणी में बांटा जा सकता है। रिश्वत देना सक्रिय रिश्वतखोरी है और रिश्वत लेना निश्चेष्ट रिश्वतखोरी है। इसी प्रकार रिश्वत मांगना सक्रिय रिश्वतखोरी है और उस मांग को पूरा करना निश्चेष्ट रिश्तखोरी है – क्योंकि रिश्वतदाता केवल मांग की पूर्ति करता है। वह जानता है कि उसके दिए बिना उसका मनोरथ सिद्ध नहीं होगा।

2. गबन या **Embezzlement**

जब सार्वजनिक संपत्ति का किसी सरकारी अधिकारी द्वारा गलत उपयोग होता है और उसके कारण उसे अथवा अन्य किसी व्यक्ति या संस्था को अनुचित लाभ पहुंचता है और इस कारण उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती जिनके लिए वह राशि आबंटित की गई थी तो ऐसे दुरुपयोग को गबन की संज्ञा दी जाती है।

3. अपने पद का दुरुपयोग

कई बार सरकारी अधिकारी अपने पद से प्राप्त प्रभाव का दुरुपयोग कर ऐसे व्यक्ति या संस्था को अनुचित लाभ पहुंचाते हैं और एवज में परोक्ष रूप में लाभान्वित होते हैं। सरकारी कामों के लिए दिए जाने वाले ठेके, 2 जी स्पेक्ट्रम के लिए दिए जाने वाला लाइसेंस, कॉमनवेल्थ खेलों के आयोजन से जुड़ी कई खरीददारियों आदि में पद के

दुरूपयोग के ही आरोप लगाए गए हैं। इन कृत्यों में न केवल सरकारी खर्चों में अनुमानों से अधिक व्यय होने से राष्ट्रीय कोष पर उल्टा प्रभाव पड़ता है, वरन् पदों का दुरूपयोग करने वाले व्यक्ति लाभान्वित होने वाले लोगों या कंपनियों से बेवजह काला धन भी अर्जित करते हैं।

4. अवैध सम द्धि

यदि किसी राजनेता, मंत्री या उच्च अधिकारी की संपदा में सहसा दर्शनीय वर्षद्धि हो जाए जिसे उसकी वैध कमाई के संदर्भ में अविश्वसनीय माना जाए तो वह अवैध समृद्धि ही कहलाएगी। कोई प्रदेश का मुख्य सचिव जो मध्यमवर्गी परिवार से आया हो और जिसकी आय का माध्यम यदि मासिक वेतन ही रहा हो तो फिर यदि उसकी संपत्ति करोड़ों में पाई जाय – भवन, भूमि, आभूषण और बैंकों में जमा राशि आदि के रूप में तो उस पर भ्रष्टाचारी होने का संशय होना स्वाभाविक है।

भ्रष्टाचार और मानव अधिकारों का हनन

मानव अधिकारों की सूची में ऐसा कोई भी अधिकार नहीं है जो स्पष्टतः भ्रष्टाचार के विरुद्ध हो। किन्तु भ्रष्टाचार के कारण जब व्यक्ति का कोई मानव अधिकार छिनता है तो फिर उस दृष्टि से ऐसे विशिष्ट भ्रष्टाचार को रोकना आवश्यक हो जाता है।

यदि न्यायपालिकाओं में भ्रष्टाचार फैलने लगता है तो फिर न्याय मिलने के अधिकार पर असर पड़ सकता है। यदि सरकारी अस्पतालों में डॉक्टर और अन्य कर्मचारी धनी व्यक्तियों से पैसा लेकर उनके उपचार को प्राथमिकता देते हैं तो गरीब व्यक्ति को उपेक्षा भोगनी पड़ती है। यदि सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा गरीबों को वितरित किया जाने वाला अनाज ज्यादा पैसे लेकर समृद्ध वर्ग में बेच दिया जाता है तो दरिद्र वर्ग के मानव अधिकार पर चोट पहुंचती है। यही बात शिक्षा के क्षेत्र में भी लागू होती है। भ्रष्ट समाज में, अर्थात् ऐसे समाजों में जहां सरकारी काम–काज में भ्रष्टचार चरम सीमा पर पहुंच चुका है, सरकार लोगों के मानव–अधिकारों की रक्षा करने में अपने को असमर्थ जानने लगती है।

यह सही है कि भ्रष्टाचार की निरंतर वृद्धि से अंततः मानव–अधिकारों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। किन्तु यह कहना गलत होगा कि भ्रष्टाचार का प्रत्येक कृत्य मानव अधिकार का उल्लंघन है। इसलिए हमें भ्रष्टाचार व उनके कृत्यों को चिन्हित करना होगा जिनके कारण मानव अधिकारों का सीधा उल्लंघन होता है। साथ ही उन कृत्यों को अलग

श्रेणी में रखना होगा जिनके कारण मानव अधिकार अंततः प्रभावित हो सकते हैं।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर समस्त सदस्य राष्ट्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे मानव अधिकारों से संबद्ध अपने दायित्वों का निर्वाह करें। राज्य सरकारों के इस संदर्भ में तीन दायित्व है – (1) मानव अधिकारों के सम्मान का दायित्व, (2) मानव अधिकारों की रक्षा का दायित्व और (3) मानव अधिकारों को पूरा करने का दायित्व। जिस किसी भ्रष्टाचारी कृत्य से मानव अधिकारों की हत्या होती है, या उनका अनादर होता उन पर रोक लगाना किसी भी सरकार का दायित्व बनता है। साथ ही उसका यह भी दायित्व है कि यदि मानव अधिकारों की रक्षा के लिए नए विधि–विधान की आवश्यकता हो तो उन्हें वह पारित करे और उनके पालन की उचित व्यवस्था करे।

हम पहले ही यह स्पष्ट कर चुके हैं कि भ्रष्टाचार के कतिपय कृत्यों से यदि मानव अधिकारों की प्रत्यक्षतः अवहेलना होती है तो अन्य कई कृत्यों से परोक्षतः मानव अधिकार प्रभावित होते हैं।

1. *प्रत्यक्ष अवहेलना*

उदाहरण के लिए, किसी भी न्यायमूर्ति को दी जाने वाली घूस उस पदासीन व्यक्ति की स्वतंत्रता और निष्पक्षता को प्रभावित करती है और उससे उचित न्याय के अधिकार को चोट पहुंचती है। इसी प्रकार जब किसी व्यक्ति को उसके अधिकार से वंचित किया जाता है, अर्थात मार्ग में बाधाएं खड़ी की जाती है, तो वह भी सीधा मानव अधिकार पर प्रहार है। शिक्षा का अधिकार या स्वास्थ्य का अधिकार तब छिन जाता है जब एक शिक्षार्थी को स्कूल या कॉलेज में प्रवेश पाने के लिए गुप्त रूप से या संस्थागत चंदे के रूप में (जिसे capitation fee – प्रति व्यक्ति अनुदान – कहा जाता है) एक सुनिश्चित राशि देने को बाध्य किया जाता है। ऐसी स्थिति में प्रवेश का आधार व्यक्ति की अध्ययन क्षमता न होकर उसकी पैसे देने की क्षमता हो जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में जन्म प्रधान निर्योग्यता के आधार आरक्षण देने की व्यवस्था को भी कई लोग मानव अधिकार पर आघात मानते हैं। यही बात स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी है। सरकारी अस्पतालों की कुव्यवस्था और समुचित उपचार की सुविधाओं के कारण जब एक गरीब व्यक्ति को प्राइवेट अस्पतालों में अधिक धनराशि जुटा कर उपचार के लिए जाने को बाध्य होना पड़ता है तो वह भी एक प्रकार से स्वास्थ्य संबंधी उसके मानव अधिकार पर चोट पहुंचाता है। सरकारी अस्पतालों में डॉक्टरों द्वारा गुप्त रूप से ली जाने वाली फीस भी 'घूस' का ही एक स्वरूप है। इसी प्रकार सरकारी अस्पतालों के कर्मचारी मुफ्त में उपलब्ध कराई जाने वाली दवाइयों का भी चोरी से केमिस्टों को बेच देते हैं और इस

कारण उनके अभाव में एक सामान्य वर्ग के रोगी को मजबूरन बाजार से उन्हीं दवाइयों महंगे भावों में खरीदना पड़ता है। कई बार डॉक्टर लोग फार्मास्युटिकल कंपनियों के साथ साठ–गांठ बिठा कर ऐसी दवाइयां लेने की राय देते हैं जो महंगी होती है, जबकि कम दामों वाली उन्हीं लवणों वाली दवाइयों से काम चल सकता है और जो सरकारी अस्पतालों में मुफ्त में मुहैया करवाई जाती हैं।

जनता की जागरूकता बढ़ने के कारण अब उपचार और चिकित्सा के मामलों में लापरवाही बरतने वाले डॉक्टरों और अन्य स्वास्थ्यकर्मियों के खिलाफ लोग अब कोर्ट–कचहरियों में जाने लगे हैं। जहां इस जागरूकता से स्वास्थ्य के मानव अधिकार को थोड़ी–बहुत मजबूती मिली है, वहीं इसके कुछ अनपेक्षित परिणाम भी सामने आए हैं। डॉक्टर लोग अपने को कानूनी दाव पेंचों में फंसने से बचाने के लिए, अब कई प्रकार की जांच प्रयोगशालाओं में कराने के लिए जोर देने लगे हैं। निस्संदेह प्रोद्योगिकी के विकास के साथ कई ऐसी मशीनें आई हैं जिनसे रोगों के सही निदान में भरी सहायता मिलती है, पर कई सामान्य रोगों के लिए इतनी खर्चीली जांच की आवश्यकता नहीं होती। पर अपने बचाव के लिहाज से डॉक्टर लोग सभी तरह की जांच प्रस्तावित करते हैं जिससे उपचार में समय और व्यय दोनों ही बढ़ जाते हैं। इस नए व्यवहार से जहां डॉक्टर लोग अपने को थोड़ा सुरक्षित अनुभव करते हैं, वहीं प्रयोगशालाओं के माध्यम से उन्हें कमीशन मिलने से उनकी आय भी बढ़ने लगी है। इस सब में पिसता है मध्यम और निम्न वर्ग का परिवार, जिसे उपचार के बढ़ते हुए व्यय का भार झेलना पड़ता है। एक मरीज की दृष्टि से ये नए और महंगे उपचार उसके बजट को प्रभावित करते हैं और खर्च न कर पाने की स्थिति में उसके स्वास्थ्य के अधिकार से भी उसे वंचित करते हैं। दूसरी ओर चिकित्सा व्यवसाय की दर्ष्टि से शोध की नई उपलब्धियाँ ऐसे रोगों का इलाज करने में समर्थ हुई हैं जिन्हें पहले भगवान भरोसे छोड़ दिया जाता था। आज उपचार महंगा हो गया है और मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग का व्यक्ति अपने दैन्य और दारिद्रय के कारण उसका लाभ उठाने में स्वयं को असमर्थ पाता है। ऐसी स्थिति में शिक्षा में अधिकार की तरह ही स्वास्थ्य के अधिकार का भी लाभ आम आदमी तक नहीं पहुंच पाता। दोनों ही क्षेत्रों में प्रचलित भ्रष्टाचार ने अध्यापक और चिकित्सक की सम्मानित स्थिति और उससे जुड़ी भूमिकाओं को बदलता दिया है। ये भूमिकाएं समाज सेवा से हट कर व्यावसायिक बनती जा रही है।

2. परोक्ष अवहेलना

मानव अधिकारों की परोक्ष अवहेलना में विशेषतया ऐसे भ्रष्टाचार का हाथ रहता है जिसकी आवृत्ति होने पर ही मानव अधिकार प्रभावति होते हैं। एक उदाहरण, जिसका

बार–बार जिक्र आता है, औद्योगीकरण से जुड़ा है। सरकारी अफसरों को घूस देकर उन्नत देश अपने टॉक्सिक वेस्ट (Toxic Waste – विशाक्त कूड़ा–करकट) को विकासशील देशों में निर्यातित कर देते हैं और ऐसा कूड़ा कई बार बस्तियों के इर्द–गिर्द डाल दिया जाता है। ऐसे कूड़े से निकलने वाली विशाक्त गैसों से वहां के निवासी प्रभावित होते हैं और कई रोगों के शिकार हो जाते हैं। इस दृष्टान्त में रिश्वत को सीधे–सीधे अधिकारों के हनन से नहीं जोड़ा जा सकता किन्तु रिश्वत ऐसे मामलों में एक आवश्यक कारक है ही।

इसी श्रेणी में हम इन मामलों को भी रख सकते हैं जिसमें भ्रष्ट अधिकारी पैसा लेकर भ्रष्टाचार की वारदातों की सार्वजनिक रूप से उद्घाटित नहीं होने देते हैं। कॉमनवेल्थ खेलों के आयोजन से जुड़े अथवा 2 जी स्पेक्ट्रम की निविदा से संबंधित कागजातों को घूस लेने वाले अधिकारियों ने जिस तरह छुपा कर रखा वह सूचना के अधिकार को खंडित करता रहा।

यहां हम भ्रष्टाचार से प्रभावित होने वाले मानव अधिकारों को चिन्हित करने की चेष्टा करेंगे :–

1. असमानता और भेदभाव न करने के सिद्धांत

भेदभाव कई तरह से किया जा सकता है : जैसे बहिष्कार, प्रवेश पर रोक, वर्गीकरण, अथवा पक्षपात। ये भेदभाव प्रजाति (रेस), धर्म, व्यवसाय, जाति अथवा लिंग के आधार पर किए जाते हैं। इन आधारों पर किया जाने वाला किसी भी तरह का भेदभाव तभी मानव–अधिकार के विरुद्ध होता है जबकि उसे पीड़ित व्यक्ति का सामाजिक स्तर घटे या फिर उसके कारण उसे उसके अन्य मानव अधिकारों से वंचित किया जाए। सुविधा–शुल्क के रूप में गुप्त अर्थात् मेज के नीचे से दी जाने वाली घूस दूसरों के मानव अधिकारों का हनन तभी करती है जब उन्हें भी पैसा देने के लिए विवश किया जाए। कई लोगों का मानना है कि जिस घूस से दूसरों का नुकसान न हो, केवल अपना काम जल्दी से और आसानी से निकल जाए, वह सभ्य है। किन्तु यदि इसके कारण से अन्य लोगों को कष्ट हो और अनाधिकृत बिचौलियों का सहारा लेना पड़े तो अवश्य ही वह अधिकार के हनन की श्रेणी में रखा जायगा।

2. जब समुचित न्याय मिलने के अधिकार का खंडन हो

न्यायालयों और न्यायाधीशों को दी जाने वाली रिश्वत को इस श्रेणी में रखा जाता है। सेवा–निवृत्त हुए एक आई.ए.एस. अधिकारी ने राजस्थान के राष्ट्रदूत में प्रकाशित अपने लेख में इसका उल्लेख किया इसे प्रस्तुत करना जा यहां बड़ा संगत लगता है:

"जब मेरी प्रथम नियुक्ति ब्यावर में उपजिला अधिकारी के के रूप में मैं हुई थी तो मेरे न्यायालय की फाइलों को एक मुंशी संभालता था। मुझे वह बहुत मुस्तैद लगता था क्योंकि दिन भर में हुए कोर्ट आदेशों को वह शाम तक फाइलों में लिख कर मेरे सामने हस्ताक्षर करने के लिए पेश कर देता था। बाद में मुझे पता चला कि वह वकीलों से मिला हुआ था और वकील की इच्छानुसार तारीख पेशी देने के लिए पैसा वसूल करता था।"

इन्होंने एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत किया है जो सरकारी लाइसेंस से जुड़ा हुआ है।

"जब मैं भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय में नियुक्त हुआ जहां भारत के सब बड़े–बड़े उद्योगपति लगातार चक्कर लगाते थे। मेरा कार्य था कि आयात के हर प्रार्थना पत्र को मैं निर्णय के लिए एक कमेटी के सामने प्रस्तुत करूं। ये बहुत ही रूटिन कार्य लगता था। एक दिन मैंने देखा कि मेरे कार्यालय का एक कर्मचारी जिसका काम इन फाइलों की जांच करके प्रस्तुत करना था, एक बहुत बड़ी गाड़ी में अपने घर की ओर प्रस्थान कर रहा था। पता चला कि वह रोज बड़ी–बड़ी गाड़ियों में दफ्तर आता था और शाम को उद्योगपतियों द्वारा इन्हीं गाड़ियों में बैठकर घर वापस जाता था। जो भी उद्योगपति उसे पैसा देता था उसकी पत्रावली पर वह बहुत कम ऑब्जेक्शन लगता था और जो पैसा नहीं देता था उसे वह लगातार सताता रहता था और उसकी फाइले महीनों बाद प्रस्तुत करता था।'

दोनों ही उदाहरणों में क्लर्कों के स्तर पर चलने वाली घूसखोरी का जिक्र है। यह भ्रष्टाचार है।

3. *जब भ्रष्टाचार के कारण राजनीतिक सहभागिता पर प्रभाव पड़े*

सरकारी कार्यालयों में प्रचलित भ्रष्टाचार के कारण जब मतदाता–सूचियों में कमी रह जाती है, या फिर गलत नाम जोड़ दिए जाते हैं तो फिर मतदाता चुनाव लड़ने और चुनाव में मत देने के अधिकार से वंचित हो जाता है। 1999 के चुनाव के समय भारतीय चुनाव आयोग के एक आयुक्त तक इसका शिकार हुए क्योंकि जब वे मत डालने गए तो उनका नाम मतदाता सूची में नहीं था।

इसी प्रकार सार्वजनिक सेवाओं की पहुंच भी कई बार रोकी जाती है। कई बार भाषण देने की स्वतंत्रता, विरोध प्रकट करने और आंदोलन की स्वतंत्रता पर भी कुठाराघात पुलिस द्वारा धारा–144 लगाकर दिया जाता है। सरकार के प्रति लोगों में

' डॉ0 सुधीर वर्मा के राष्ट्रदूत में प्रकाशित "भ्रष्टाचार बनाम अन्ना बनाम रामदेव से उद्धृत

उठने वाले विरोध और क्रोध को विराम देने वाले अधिकांश प्रयास मानव अधिकारों और संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों की अनदेखी करते हैं।

4. *जब भ्रष्टाचार से सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित किया जाए*

5. *जब भ्रष्टाचार भोजन के अधिकार पर प्रहार करे*

6. *जब लोगों के निवास के अधिकार पर भ्रष्टाचार के कारण प्रभाव पड़े*

7. *जब भ्रष्टाचार से स्वस्थ जीवन के अधिकार की अवहेलना हो*

8. *जब शिक्षा का अधिकार होते हुए भी लोगों को शिक्षा मिलने के मार्ग में भ्रष्टाचार रोड़े अटकाए आदि*

इस प्रकार भ्रष्टाचार के प्रचलन से जीवन के हर क्षेत्र में ऐसे कुप्रभाव पड़ते हैं कि व्यवस्था चरमराने लगती है। जब भ्रष्टाचार चरम सीमा पर पहुंच जाता है और लोगों की वेदना सरकार के स्थापित तंत्र तक नहीं पहुंचने पाती है, तब जनता अपने भाषण की स्वतंत्रता और विरोध प्रकट करने की स्वतंत्रता का उपयोग कर सरकार का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करती है। आंदोलन के माध्यम से जनता का सोया हुआ स्वर मुखर होता है। अप्रजातांत्रिक समाजों में ऐसे जन–आंदोलनों को निरंकुश शासक अपने सैन्य बल के माध्यम से कुचलने की चेष्टा करते हैं और आंदोलन के नेताओं और समर्थकों पर हिंसा बरसाते हैं। इसीलिए लगातार अंतराष्ट्रीय जगत प्रजातंत्र के प्रसार और स्वीकरण के प्रयास में संलग्न है।

ऐसा नहीं है कि प्रजातांत्रिक शासन–प्रणालियां भ्रष्टाचार मुक्त होती हैं। किन्तु उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध मुहिम खड़ी करने के लिए समुचित प्रावधान होते हैं जिनके माध्यम से जनता अपना स्वर तेज करती है और मानव अधिकारों की रक्षा हेतु भ्रष्टाचार का समूल नष्ट करने के लिए अपनी आवाज़ को न्याय दिलाने का संकल्प लेती है।

• • •

मानवाधिकार तथा लोकतंत्र (सुलभ की दृष्टि से)

• डॉ॰ बिन्देश्वर पाठक

दोनों में से कौन पहले आया–लोकतंत्र या मानवाधिकार? यह मुर्गी और अंडे की कहानी की तरह है, जो आज भी नहीं सुलझ पाई है। रोम के विख्यात दार्शनिक तथा राजनेता सेनेका ने रोमन नागरिकों के अधिकारों की चर्चा की, उनके पूर्व प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में 'डेमोस क्रेटिया' अर्थात् लोगों की शक्ति की वकालत की; 'डेमोक्रेसी' शब्द उसी से निकला है। पिछले 2000 वर्षों के दौरान मानवाधिकार विशय पर चर्चा होती रही है, यह नजर से कभी ओझल नहीं हुआ। फिर भी इस विषय को द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद ही 1948 में स्पष्ट तौर पर परिभाषित और निरूपित किया जा सका; फिर तो इसे अंतरराष्ट्रीय कानून का हिस्सा बना लिया गया।

ब्रिटिश इतिहासकार नियैल फर्ग्यूसन ने कहा है कि आज धरती पर जीवित हर प्राणी के लिए, पिछले लाखों वर्षों के दौरान 14 प्राणी मर चुके हैं। इन खोए हुए 14 लोगों की तलाश में ही धर्म, विज्ञान, इतिहास, ज्योतिष, समाजशास्त्र जैसे शैक्षिक विषयों का जन्म हुआ, सबने उनके जीवन, उनकी दुनिया, उनके सामाजिक सरोकार और व्यवस्था को समझने–बूझने के प्रयास किए, जिसके तहत उनके जीवन और मूल्यों का विकास हुआ। हॉब्स का कहना था कि उनका जीवन 'गंदा, पाशविक और छोटा' था। लेकिन अपनी धारणा पर विश्वास दिलाने के लिए उनके पास कोई ठोस आधार नहीं था, ऐसा आधुनिक काल की तुलना में उनका अनुमान मात्र ही था।

उदाहरण के लिए, कौन कह सकता है कि हमारे आदिम पूर्वज दोनों विश्व–युद्धों, बाल्कन क्षेत्र, हिटलर की मार–काट, रवांडा, सूडान और सोवियत गुलागों में हुई क्रूरताओं से अधिक कुछ कर गुजरे थे? हम कैसे कह सकते हैं कि यूरोप की गुफाओं में लगभग

• संस्थापक अध्यक्ष, सुलभ इंटरनेशनल

30,000 वर्ष पूर्व रहनेवाले निएनदरथल मानव अथवा ऑस्ट्रेलिया की आदिम जातियाँ या एमजॉन घाटी और अफ्रीका की मरुभूमि के निवासी क्या उनसे अधिक भयावह रहे होंगे, जिन्हें हमने अपने समय में पशुवत् कार्य करते देखा है? जैसी कवि ओ शॉगनेसी की उक्ति है, ''हर युग के अपने सपने होते हैं—जन्मे हुए, मृत अथवा अजन्मे। और ऐसे ही सपनों के अनुसार मानवीय मूल्य उभरते हैं, जिनका अलग—अलग समयों में अलग—अलग तरह से अर्थ लगाया गया"। कार्ल मार्क्स के अनुसार, किसी समय के मुख्य विचार उस समय के शासक—वर्ग के विचार ही होते हैं। इन व्याख्याओं को अंतिम रूप से मानना या नकारना आसान नहीं है।

प्रारंभ में ऐसा माना जाता था कि सरकार अपने नागरिकों के साथ क्या करती है, यह उसका मामला है। 1945 के बाद स्थिति बदली, जब नात्सी शासकों ने मूलभूत मानवाधिकारों को नकारना शुरू किया। इसके बाद दुनिया के देशों ने तय किया कि नवजात संयुक्त—राष्ट्र की आधारभूत नीतियों और संस्थागत व्यवस्थाओं में सर्वाधिक बल मानवाधिकारों पर दिया जाए। स्पष्टतः इसमें जो मुल्कों की सरकारें होती हैं, उनकी गतिविधियों पर रोक लगती है। मानवाधिकारों से संबद्ध अंतरराष्ट्रीय कानून का मूलभूत सिद्धांत यह माना जाता है कि कोई भी सरकार लोगों के विरुद्ध ऐसा कुछ नहीं कर सकती, जो उनके मौलिक अधिकारों पर आघात हो, भले ही लोग उसके ही नागरिक और क्षेत्राधिकार के अंतर्गत हों।

मानवीय मूल्यों की ऐसी अंतर्देशीय व्यवस्था बीसवीं सदी के प्रारंभ में विकसित हुई, जब ऐसा लगने लगा कि युद्ध समग्र मानव—जाति का खात्मा कर सकते हैं। बड़े—बड़े भूखंडों और साम्राज्यों में गठित मानव—जाति और अपनी खास पहचान लिए राष्ट्रों के उद्भव से सुनियोजित और संपादित हिंसा तथा क्रूरता को बल मिला, जिसका पैमाना, विस्तार और पाशविकता पहले की अपेक्षा कहीं अधिक रही है। मानवीय मूल्यों को पूरी तरह तिलांजलि देकर सामूहिक हत्या, प्रताड़न और विनाश के कृत्य दुहराए जाने लगे। बढ़ती हुई समृद्धि, व्यापार—उद्योग और पूँजी के सर्जन से मानवीय शक्ति को नकारात्मक और विध्वंसात्मक दिशा में मोड़ने और केंद्रित करने को बल मिलता गया। मारने—मरने की विशेषज्ञता हासिल की जाने लगी। मुद्दों को उजागर करने और उनसे लोगों को जोड़ने का कार्य प्रेस और मीडिया ने किया। लड़ने—मरनेवालों को धार्मिक गुरुओं ने स्वर्ग और मुक्ति के दिलासे दिए। विज्ञान की खोजों और युक्तियों ने मानव—जाति को विनाश के सूत्र तथा तरीके उपलब्ध कराए।

इन सबके चलते युद्ध पहले की अपेक्षा कहीं अधिक भयावह होने लगे। पहले जहाँ

घिरी हुई आबादी अथवा किले भुखमरी से सताए जाते थे, वहीं अब पूरे–पूरे मुल्क भूखे मरने लगे। लड़ाइयों में देश/प्रदेश की पूरी आबादी हिस्सा लेने लगी या सताई जाने लगी, हवाई हमलों में कब कौन मारे जाएँगे, कोई ठीक नहीं रहता था। ट्रेनों, मोटरगाड़ियों और जहाजों से हजारों लड़ाकू ले जाए जाने लगे। विनाश कैसे अधिक–से–अधिक हो, इसके सारे इंतजामात किए जाने लगे। पिछले विश्व–युद्ध में यूरोप में शायद ही कोई ऐसा घर बचा हो, जिसमें कोई–न–कोई नहीं मरा हो या जख्मी हुआ हो। युद्ध समाप्त होने के बाद कोई समझ नहीं सका कि लड़ाई आखिर हुई क्यों। इसी के बाद मानवाधिकार की धरणा का जन्म हुआ।

जनवरी 1947 में संयुक्त–राष्ट्र–मानवाधिकार–आयोग का पहला पूर्ण अधिवेशन हुआ। आयोग के उस समय 18 सदस्य राज्य थे, इसकी अध्यक्ष एलिनॅर रूजवेल्ट थीं। आयोग ने मानवाधिकार पर एक अंतरराष्ट्रीय विधेयक का प्रारूप तैयार करना प्रारंभ किया। एक वर्श बाद, मानवाधिकार की सार्वभौमिक उद्‌घोषणा का प्रारूप संयुक्त–राश्ट्र के 55 सदस्यीय देशों के सम्मुख उपस्थापित किया गया और सर्वसम्मति से स्वीकश्त किया गया। यह एक ऐतिहासिक उपलब्धि थी और मानव–जाति के विकास के क्रम में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव। 10 दिसंबर 1948 को पेरिस में संयुक्त–राष्ट्र–द्वारा मानवाधिकारों पर सार्वभौमिक उद्‌घोषणा की स्वीकृति प्रदान की गई, दुनिया ने यह समझा कि मानवाधिकार और विश्व–शांति एक–दूसरे से जुड़े विषय हैं। उद्‌घोषणा में कहा गया कि सच्ची और टिकाऊ शांति तभी संभव होगी, जब समाज के हरेक वर्ग के मानवाधिकार सुनिश्चित किए जाएँ। फलस्वरूप कुछ मूलभूत मानवाधिकारों की पहचान और सुरक्षा के प्रयास राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर गंभीरता से किए जाने लगे। संयुक्त–राष्ट्र चार्टर द्वारा सदस्य देशों के लिए मानवाधिकारों की रखवाली उनका कर्तव्य बनाई गई। जाति, लिंग, भाषा या धर्म के विभेद किए बिना मानवाधिकारों और मूलभूत स्वाधीनता के लिए सार्वभौमिक सम्मान को प्रोत्साहित करने हेतु संयुक्त–राश्ट्र के साथ सहयोग करने का उत्तरदायित्व संयुक्त–राष्ट्र चार्टर ने सदस्य देशों को सौंपा है। चार्टर के अनुसार ये अधिकार मानव–जाति की सम्मानजनक सभ्य जीवन की बढ़ती हुई जरूरत और माँग पर आधारित्त हैं, ताकि प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा को उचित सम्मान और सुरक्षा मिल सके।

मानवाधिकार ऐसे मूलभूत अधिकार हैं, जो किसी भी मनुष्य के सामान्य संघर्ष–रहित जीवन जी सकने के लिए आवश्यक होते हैं। इनके लिए जो सैद्धांतिक आधार गढ़े गए, उनका अंतिम लक्ष्य है व्यक्ति को समाज में अन्यों के साथ सहजता से खुशी के साथ

जीवन बिताने के लायक बनाना। संयुक्त–राष्ट्र के संस्थापक देश इस बात से अवगत थे कि किस हद तक मानवाधिकारों का उल्लंघन द्वितीय विश्व–युद्ध के लिए जिम्मेदार था। उनका मानना था कि शांतिपूर्ण विश्व का निर्माण मानवाधिकारों के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रभावशाली गारंटी के बगैर संभव नहीं है।

सन् 1975 में संयुक्त–राष्ट्र की सामान्य सभा ने सर्वसम्मति से एक उद्घोषणा स्वीकार की, जिसमें सभी मनुष्यों की यातना तथा अन्य प्रकार के क्रूर, अमानवीय अथवा अपमानजनक बर्ताव या दंड दिए जाने से रक्षा का प्रावधान किया गया। इस उद्घोषणा के अनुच्छेद 1 के अनुसार यातना का अर्थ है कोई कार्य, जिसमें किसी व्यक्ति को कोई स्वयं अथवा किसी सरकारी अफसर के कहने या उकसाने पर जानबूझकर इस उद्देश्य से शारीरिक अथवा मानसिक पीड़ा या यातना दे ताकि उस व्यक्ति से अथवा किसी अन्य व्यक्ति से कोई सूचना या स्वीकृति ली जाए या कोई कार्य उसके द्वारा किए गए अथवा उसके द्वारा किए गए होने का शक हो या उसे डराने के लिए दंड देने का मंशा या कार्रवाई हो।

जून 1979 में भारत–सरकार ने यंत्रणा के विरुद्ध संयुक्त–राष्ट्र की सार्वभौमिक उद्घोषणा पर हस्ताक्षर किए। यह कहा गया कि उद्घोषणा में उल्लिखित यंत्रणा–निषेध के नियमों का सरकार अनुपालन करेगी और वैधानिक तथा अन्य प्रभावशाली उपायों से इनका अनुपालन किया जाएगा। यंत्रणा तथा क्रूर, अमानवीय या यातनापूर्ण व्यवहार या दंड के निषेध के प्रति अंतरराष्ट्रीय कॅवनेंटों तथा घोषणाओं के मार्गदर्शन के अनुरूप भारत की प्रतिबद्धता सदैव रही है एवं तदनुसार संयुक्त–राष्ट्र–उद्घोषणा 1952 के अनुसार मानदंडों का अनुपालन किया जाता रहा है।

मानवाधिकारों की वर्तमान स्थिति का आकलन करने में अभी के अंतरराष्ट्रीय माहौल का जायजा लेना प्रासंगिक होगा। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ पॉल केनेडी के अनुसार, आज ऐसी शक्तियाँ, जो मानव–जाति के लिए चुनौती और परीक्षा की तरह हैं, बहुत ही सक्रिय और लगातार बढ़ती हुई नजर आती हैं जैसे–तकनीकी, जनसंख्या, राजनीतिक विखंडीकरण, सांस्कृतिक विरोध, पर्यावरणीय क्षति। वस्तुतः मानव–जाति को अपनी गरिमा बनाए रखने के लिए जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, उनकी जड़ में ये ही शक्तियाँ हैं।

मानवीय गरिमा की विश्व–व्यापी अपेक्षा इतनी गंभीर और उत्कट होती जा रही है कि मानवाधिकारों के समकालीन स्तर निर्धारित करने के पहले इनको ध्यान में रखा जाना आवश्यक हो गया। इसका तात्पर्य है मानव–मूल्यों की पूरी श्रृंखला का अनुपालन

सुनिश्चित करना अर्थात् लिंग, उम्र, धर्म अथवा सामाजिक स्तर के भेद के बगैर प्रत्येक मनुष्य को सम्मान दिया जाना। इसमें नागरिक–राजनीतिक व्यवस्था में अपने समुदाय का तथा अपना स्थान सुनिश्चित करने का अवसर दिया जाना सम्मिलित है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा के अनुच्छेद 21 के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को अपनी सरकार में भागीदार बनने का अधिकार है, सरकार की शक्ति का एकमात्र आधार जनता का निर्णय है और इसकी अभिव्यक्ति समय–समय पर निष्पक्ष निर्वाचन के जरिए ही होती है, यह वस्तुतः मानवोचित सम्मान का ही एक पहलू है।

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार–व्यवस्था में सबसे बड़ा परिवर्तन लाया गया है, राज्यों के अलावा जो भागीदार हैं, उनके द्वारा और यह एक आशाजनक बात है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यदि राज्यों के कार्यकलाप पर नजर डाली जाए तो लगता है कि राज्येतर भागीदारों का आविर्भाव होना ही था। ये मुख्यतः गैरसरकारी संगठन थे। 1993 में वियना में हुए मानवाधिकार पर विश्व–सम्मेलन में, राज्य–सरकारों और बड़ी संख्या में गैरसरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) ने मानवाधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय विधेयक में निहित लक्ष्यों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता बताई। परंतु सम्मेलन में हुई सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी ऐसे हजारों नए संगठनों का शामिल होना, जो दुनिया भर में मानव–गरिमा के लिए आगे बढ़कर मानवाधिकारों के निमित्त कार्यरत थे। इन्हीं पर मानवाधिकार–आंदोलन का भविष्य निर्भर करता है, उत्तर और पश्चिम में अवस्थित हमलोगों का कर्तव्य है यह सुनिश्चित करना कि दक्षिण और पूरब में हमारे भाई–बहन इस संघर्ष में भाग ले सकें।

मानवाधिकारों की अंतरराष्ट्रीय लीग (इंटरनेशनल लीग ऑफ ह्यूमन राइट्स) संयुक्त–राष्ट्र में अवस्थित परामर्शदाता संस्था है, जो अभिव्यक्ति तथा विवेक की स्वतंत्रता और नारी तथा बच्चों के अधिकारों की रक्षा के साथ–साथ यातना, गैर–न्यायिक प्राणदंड, निरंकुश कैद, धार्मिक असहिष्णुता और लापता होने जैसी बातों को रोकने की दिशा में कार्यरत है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार के क्षेत्र में गैरसरकारी भागीदार (एन.जी.ओ., विद्वद्गण, अधिवक्तागण) हमारे सतत परिवर्तनशील समुदायों के समान हित का आकलन एवं इसे उजागर करने की दिशा में कार्यरत हैं। कई मामलों में उन्होंने राज्य–सरकारों को उच्चस्तरीय व्यवस्था करने हेतु नई संवैधानिक एवं संगठनात्मक व्यवस्थाओं के लिए प्रेरित किया है। इसी सबका परिणाम हुआ है, मानवाधिकारों के लिए संयुक्त–राष्ट्र–उच्चायुक्त के पद का हाल ही में सर्जित होना।

शीतयुद्धोत्तर वैश्विक स्तर पर मानव–गरिमा के हित में हमारी आशाएँ बढ़ी हैं। संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण बात हुई है मानवाधिकारों के मॉनिटरों की बढ़ती हुई संख्या।

मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामलों की मॉनिटरिंग और रिपोर्टिंग करने के क्षेत्र में कार्यरत एजेंसियों को मानवाधिकार के लिए गठित अंतरराष्ट्रीय लीग तकनीकी सहायता प्रदान करता है। 1963 में केपटाउन, दक्षिण अफ्रीका में स्वर्गीय रॉबर्ट एफ. केनेडी ने कहा था, 'मानव–इतिहास साहस और आस्था के असंख्य कारनामों से ही बनता है। हर बार जब कोई किसी आदर्श के लिए खड़ा होता है या दूसरों की मदद के लिए कुछ करता है या अन्याय के खिलाफ लड़ता है, तब उससे आशा की एक छोटी लहर उठती है और लाखों अलग–अलग दिशाओं से आती हुई और मिलती हुई इन छोटी लहरों से विशाल धरा बनती है, जो अत्याचार और विरोध की बड़ी–से–बड़ी दीवारें गिरा सकती है।'

मानवाधिकारों के मॉनिटर और अधिवक्ता अपना कार्य स्वयं पर खतरा लेकर कर पा रहे हैं, इससे बड़ी आशा जगती है। पर यदि वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों की स्थिति पर नजर डाली जाए तो लगता है, हालाँकि पहले के हालात के बनिस्पत स्थिति सुधरी है, फिर भी बहुत कुछ करना और होना अभी बाकी है। प्रसिद्ध लेखक थॉमस मान के अनुसार मनुष्य एक व्यक्ति की तरह अपनी जिंदगी ही नहीं जीता, बल्कि वह जाने–अनजाने अपने युग और अपने समकालीनों की जिंदगी भी जीता है। हमें अपने मकसद साफ रखने होंगे और आगे उभरते हुए भविष्य की होनी–अनहोनी बातों पर भी गौर करना होगा। हमें स्वयं से पूछना होगा, आनेवाला समय हमें कैसा लगेगा। यदि उत्तर नकारात्मक है तो हमें विकल्पों पर सोचना होगा और उन बातों की पहचान करनी होगी, जो हमारा भविष्य बेहतर बना सकें। मानवाधिकार–आंदोलन सतत चलनेवाली कहानी है, इसकी परिणति अभी दूर है। फिर भी हमारी सभ्यता के लिए क्या वांछित और क्या अवांछित है, इसके स्तर बने हैं। उस ख्याल से मानवाधिकार–उद्घोषणा एक बेहतर दुनिया की दिशा में महत्त्वपूर्ण पहल है।

मानवाधिकारों के प्रति सुलभ की दृष्टि इस विश्वास पर आधारित है कि इनका संस्थापन शिक्षा, अभियान, सामाजिक जागरूकता और विभेद समाप्त करने हेतु लोगों को राजी कराने से ही हो सकता है। अस्पृश्यता को समाप्त करने और बच्चों को शिक्षित करने की दिशा में कानून बनाए गए हैं। फिर भी हमारे यहाँ गरीब लोगों (संयुक्त–राष्ट्र की परिभाषा के अनुसार + 2 प्रतिदिन पर जीनेवाले), निरक्षर लोगों और कमजोर बच्चों की भारी संख्या विद्यमान है। सामाजिक संकेतकों पर यू.एन.डी.पी. के प्रतिवेदनों से भी ऐसे ही परिणाम सामने आए हैं।

सुलभ के लिए स्कैवेंजर गरीबी, सामाजिक भेदभाव तथा संयुक्त–राष्ट्र–उद्घोषणा के अनुच्छेदों के उल्लंघन का प्रतीक है। हमने उनकी शिक्षा, प्रशिक्षण और सामाजिक

उन्नयन के लिए अखिल भारतीय स्तर पर विश्तस्त नेटवर्क के जरिए सरकार तथा गैरसरकारी एजेंसियों के साथ मिलकर सामाजिक परियोजनाएँ ली हैं। स्कैवेंजिंग मानव–मूल्यों और अधिकारों से संबद्ध एक बहुत बड़ा प्रश्न है, इससे 10 दिसंबर 1948 को संयुक्त–राष्ट्र की सामान्य सभा द्वारा स्वीकृत मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोशणा के अनुच्छेद 1 का उल्लंघन होता है: मानव–गरिमा और मानवाधिकार की दृष्टि से सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र तथा बराबर हैं–यह उद्घोषणा राष्ट्रों के नैतिक प्रबंधन तथा अनुचित राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने की दिशा में मानव–मूल्यों का मानक निर्धारित करती है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा के प्रथम दो अनुच्छेदों में स्पष्ट किया गया है कि स्वतंत्रता, समानता तथा भाईचारा मानवाधिकारों के आधार हैं। प्रत्येक मनुष्य किसी भी प्रकार के भेदभाव के, जैसे–जाति, रंग, लिंग, भाशा, धर्म, राजनीतिक या अन्य किसी अभिमत, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल, जन्म आदि–अनुच्छेद 2) बिना मानवोचित स्वतंत्रता और अधिकारों का अधिकारी है। जाति–प्रथा इस उद्घोषणा के प्रावधानों के विरुद्ध है, क्योंकि इससे जन्म के आधार पर लोगों में भेदभाव किया जाता है। इस व्यवस्था में कुछ वर्ग के लोगों के लिए मंदिर में प्रवेश, संस्कृत–भाषा पढ़ना–लिखना तथा धार्मिक ग्रंथ पढ़ने की मनाही है। यह अनुच्छेद 18 के विरुद्ध है, 'हर किसी को विचार की स्वतंत्रता का अधिकार है।'

स्कैवेंजरों को गाँवों के बाहर रहने के लिए मजबूर किया जाता है (अनुच्छेद 13(1) का उल्लंघन)। स्कैवेंजरों को मीडिया में भी उतना ध्यान नहीं दिया जाता। यह वर्ग एक अनुचित जाति–व्यवस्था के तहत, जिसे समाज का अनुमोदन भी प्राप्त है, सदियों से मानव–मल की हाथों से सफाई और ढुलाई का अमानवीय कार्य करता रहा है। अन्य समाजों में भी सामाजिक वर्गीकरण होते हैं, पर धर्मशास्त्रों से कथित रूप से अनुमोदित वर्गीकरण हमारे ही समाज में विद्यमान् है। बड़ी संख्या में उदारचित्त लोगों ने, जैसे–गाँधीवादी, मानवतावादी तथा मानवाधिकारों पर सक्रियतावादी लोग, समाज के इस भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाई है। मनोवृत्ति में क्रांति ही परिवर्तन ला सकती है, जो सुलभ का अभियान है, जिसके लिए तकनीकी, शिक्षा और प्रशिक्षण की सहायता ली जा रही है। जाति–प्रथा सामाजिक घृणा पर आधारित है, यह आदिम, अमानवीय तथा पूरी तरह अप्रजातांत्रिक व्यवस्था है। समय आ गया है इस प्रथा को समाप्त करने और उनलोगों के मानवाधिकार लौटाने का, जिन्हें सदियों से प्रताड़ित किया जाता रहा है।

सुलभ का प्रयास रहा है–स्कैवेंजरों की मानवीय गरिमा और मानवोचित अधिकार लौटाने का, जिसके वे हकदार हैं, उनकी दरिद्रता दूर करने और उनका

सामाजिक समन्वय सुनिश्चित करने का तथा स्वच्छता एवं स्वास्थ्य की देखभाल के साथ–साथ पर्यावरणीय प्रदूषण की रोक–थाम। पिछले 40 वर्षों में सुलभ ने भारी संख्या में स्कैवेंजरों को मानव–मल की हाथों से सफाई और ढुलाई के अमानवीय कार्य से मुक्त कराने, अच्छे रोजगारों में उन्हें लगाने, लाखों पोर–फ्लश शौचालयों का निर्माण करने में उल्लेखनीय सफलता पाई है। मेरे लिए स्कैवेंजर मानवाधिकार के उल्लंघन का अद्वितीय प्रतीक है। स्कैवेंजर ही सुलभ का 'मैस्कॉट' है। कुछ लोगों का यह कहना कि 1.2 अरब की जनसंख्या में दस लाख से भी कम स्कैवेंजरों की संख्या नगण्य है, पूर्णतः दिग्भ्रमित धारणा है।

यह कहा जाता है कि एक व्यक्ति की मौत ट्रैजडी होती है, लाखों मौतें सांख्यिकी होती हैं। यह सही लगता है: एक गुलाम विद्रोही, स्पार्टकस (ई.पू. 75) गुलामी को चुनौती देनेवाला पहला व्यक्ति था, जिसके कुछ ही समय बाद रोमन साम्राज्य बिखर गया; एक व्यक्ति, फ्रांज फर्डिनेंड की बॉस्निया में हत्या से प्रथम विश्व–युद्ध की चिनगारी लगी, जिसमें लाखों लोग मारे गए, कितने घायल हुए, उनका कोई आँकड़ा उपलब्ध नहीं है। फ्रांसीसी क्रांति बास्तील में शुरू हुई, जिसे नेपोलियन ने अपनी जीतों और अपने दुःखद अंत से चिह्नित किया। दक्षिण अफ्रीका में गाँधी को केवल गोरों के लिए आरक्षित रेल–डिब्बे से बाहर उतार दिया गया और एक दिन ब्रिटिश राज्य भारत में समाप्त हो गया। श्रीमती रोजा पार्क्स को मौंटगोमरी, अलाबामा में गोरों के लिए आरक्षित बस से उतार दिया गया और अमेरिका में नागरिक–अधिकार–आंदोलन शुरू हो गया और देश का इतिहास बदल गया; हैरियट बीचर स्टो ने 'अंकल टौम्स केबिन' नामक उपन्यास लिखा और नागरिक युद्ध शुरू हो गया, जिसे जीतने के बाद राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन को मार डाला गया। इन सारी घटनाओं से लगता है, एक–दो अथवा कुछ लोग इतिहास को मोड़ देते हैं, जबकि लाखों लोगों का कष्ट अनदेखा–अनसुना रह जाता है।

भारत में स्कैवेंजरों की दशा का इसी संदर्भ में अध्ययन किया जाना चाहिए। सुलभ–आंदोलन ने स्कैवेंजरों को भारतीय समाज के साथ जोड़ने का ऐतिहासिक कार्य किया है, जिनकी दशा दिनोंदिन इन प्रयासों के चलते सरकार तथा लोगों के साथ मिलकर कार्य करने से सुधर रही है। यह आंदोलन, वस्तुतः मानवाधिकार के संरक्षण एवं उन्नयन का आंदोलन रहा है।

• • •

लेख

निवारक निरोध कानून एवं मानवाधिकार

• डॉ0 आनन्द कुमार विश्वकर्मा*

मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा, 1948 में भारत ने हस्ताक्षर किया। तत्पष्चात् जब भारतीय संविधान का निर्माण किया गया तब संविधान निर्माताओं ने मानवाधिकार की संकल्पना को भारतीय संविधान में पर्याप्त स्थान दिया। इस संकल्पना को संविधान में मूल अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया। संविधान का अनु0 21, जो कि प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार से सम्बन्धित है, मानवाधिकार के वृहद एवं विभिन्न स्वरूप को समाहित करता है। अनु0 21 में प्रदत्त प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार सभी व्यक्तियों को है चाहे वे भारत के नागरिक हो या विदेशी या शरणार्थी । प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार न केवल विधायिका बल्कि कार्यपालिका के आदेशों एवं कार्यों के विरुद्ध भी उपलब्ध है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि संविधान निर्माण के पष्चात् आजाद भारत में अनेकों ऐसे निवारक निरोध एवं आतंक निरोधक कानून बने जो मानवाधिकार की भावना के बिल्कुल विपरीत रहे। यद्यपि ऐसे कानूनों को देष की संप्रभुता, अखण्डता एवं षान्ति–सुरक्षा के नाम पर न्यायोचित ठहराया जाता रहा है किन्तु इनका प्रयोग निहित स्वार्थों की पूर्ति एवं औपनिवेषिक मानसिकता को बनाये रखने में ज्यादा किया गया। संसद ने संविधान लागू होने के एक महीने के भीतर निवारक निरोध कानून, 1950 बनाया। निर्माताओं ने इस कानून को आजादी के पष्चात् होने वाले संभावित विद्रोहों एंव अषान्ति के लिए आवष्यक बताया और इसके केवल एक वर्श तक लागू रहने की बात कहीं। किन्तु यह कानून सत्रह वर्शों तक प्रभाव में रहा। सन् 1958 में संसद ने आर्मफोर्सेस (स्पेशल पावर) एक्ट बनाया। इसका उद्देष्य आसाम राज्य के नागा पहाड़ियों में नृजातीय (Ethenic) संघार्शो को समाप्त करना था किन्तु यह कानून आज भी पूर्वोत्तर राज्यों एवं जम्मू–कश्मीर में लागू है और इनका दुरुपयोग बदस्तूर जारी है। इस कानून की आड़ में मणिपुर में हुए मनोरमा बलात्कार कांड जिसने मानवाधिकार की धज्जियाँ उड़ा कर रख दी, कौन भूल सकता

• वरिष्ठ प्रवक्ता, विधि संकाय, लखनऊ वि. वि. लखनऊ

है? आजादी के चौसठ वर्ष बाद भी हम पूर्वोत्तर राज्य के लोगो को मुख्य धारा से नही जोड़ सके और उनके लिय ।थ्ैच्। जैसे बर्बर कानून की जरूरत पड़ रही है। निवारक निरोध कानूनों की श्रृखला में केन्द्र सरकार ने Maintenance of Internal Security । बजए 1971 बनाया।आपातकाल के दौरान इस कानून का दुरूपयोग किसी से छुपा नहीं है। इस कानून के तहत आपातकाल में हजारों लोगों को आन्तरिक सुरक्षा के नाम पर बिना वारन्ट के गिरफ्तार किया गया, उन्हें जेल भेजा गया और उनके ऊपर झूठे मुकदमें कायम किये गये। हद तो तब हो गई जब डप्ै। को 39 वें संविधान संषोधन द्वारा नवीं अनुसूची में डाल दिया गया। नवीं अनुसूची में इस कानून को डालने का मतलब था कि इसकी विधिमान्यता को किसी भी आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती चाहे वह मूल अधिकार का उल्लघंन ही क्यों न करता हो। सन् 1980 में MIS । के उत्तराधिकार के रूप में राश्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम लाया गया। इस कानून के तहत न केवल राश्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े मामले आते है बल्कि सामाजिक तनाव, साम्प्रदायिक दंगे, आद्यौगिक अषान्ति से जुड़े मामले भी इसके अन्तर्गत देखे जा सकते है। पंजाब में हो रहे आतंकवादी गतिविधियों को रोकने के लिए संसद ने Terrorist and Disruptive Activities (Prevention) । बजए 1985 बनाया जिसे सामान्यतः टाडा के नाम से जाना गया। इस कानून ने जाँच ऐजेन्सीयों को वृहद शक्ति प्रदान की और जिसका जमकर दुरुपयोग किया गया। इस कानून ने गिरफ्तार व्यक्ति के 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने की पुलिस की बाध्यता समाप्त कर दी। कोई भी गिरफ्तार व्यक्ति एक वर्ष की अवधि तक पुलिस रिमाण्ड में रखा जा सकता था। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के प्रावधान के विपरीत पुलिस के समक्ष अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति वैध थी एवं साक्ष्य के रूप में प्रयोग की जा सकती थी।

साबित करने का भार अभियोजन पर न होकर अभियुक्त व्यक्ति पर था कि वह साबित करे कि उसने अपराध नहीं किया है। एक आकलन के अनुसार लगभग 76000 लोग 1994 तक टाडा के तहत गिरफ्तार किये गये जिसमें केवल 35 प्रतिषत मामलों में पुलिस ने चार्जशीट लगायी और उनका विचारण हुआ। विचरित मामलों में 95 प्रतिषत व्यक्ति न्यायालय द्वारा बरी कर दिये गये और केवल 2 प्रतिषत मामलों में ही अभियुक्त को दोश सिद्ध किया गया। इस कानून के दुरुपयोग एंव मानवाधिकार की शिकायतों के फलस्वरूप इसे 1995 में समाप्त करना पड़ा। इस कानून के उत्तराधिकार के रूप में पुन संसद ने 2002 में Prevention of Terrorist Activities । बज बनाया। इस कानून का उद्देश्य आतंकवादी गतिविधियों की रोकथाम करना था। यद्यपि इस कानून में मानवाधिकार के उल्लघंन को रोकने के लिए कुछ प्रावधान किये गये फिर भी इसके कई प्रावधान जांच एजेन्सीयों को इसके दुरूपयोग की खुली छूट देते थे। जैसे गिरफ्तार व्यक्ति को संदेह

के आधार पर अधिकतम 180 दिनों तक रखा जा सकता था। पुलिस के समय अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति वैध थी। गवाहों की पहचान छुपाने के लिए पुलिस प्राधिकृत थी। मानवाधिकार उल्लघंन एंव राजनैतिक दुरूपयोग के कारण इस कानून को 2004 में समाप्त कर दिया गया।

न्यायिक दृष्टिकोण

निवारक निरोध एवं आतंक निरोधक कानूनों की व्याख्या में न्यायापालिका एकरूप नही रही। पचास एवं साठ के दशक में न्यायपालिका ऐसे कानूनों को न्यायोचित ठहराती रही और संकुचित अर्थो में इसकी व्याख्या की। **ए0के0 गोपालन बनाम मद्रास राज्य** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने न केवल गोपालन की गिरफ्तारी और निवारक निरोध कानून 1950 की वैधता को उचित ठहराया बल्कि संविधान के अनु0 21 की संकुचित व्याख्या भी की। **ए.डी.एम. जबलपुर बनाम शिवाकान्त शुक्ला** (बन्दी प्रत्यक्षीकरण वाद) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि आपातकाल के दौरान अनु0 21 प्रतिबन्धित किया गया है इसलिए कोई भी व्यक्ति न्यायालय में जाकर उसका प्रवर्तन नहीं करा सकता। इस दौरान की गई गिरफ्तारी को किसी भी आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती, भले ही ऐसी गिरफ्तारी दुर्भावनापूर्ण की गई हो। इस प्रकार आन्तरिक सुरक्षा कानून (MISA) की धारा 16– | को संवैधानिक ठहराया जिसके अन्तर्गत बिना आधार बताये किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से गिरफ्तार किया जा सकता था। निष्चित रूप से ऐसे कानून एवं ऐसे कानूनों की व्याख्या मानवाधिकार की भावना के प्रतिकूल रहे है। प्रारम्भ में न्यायपालिका ने ऐसे निरोधक कानून को न्यायोचित ठहराया और मानवाधिकार के सन्दर्भ में इन कानूनों की व्याख्या नही की थी। तत्पश्चात् न्यायपालिका के दृष्टिकोण में बदलाव हुआ और न्यायालय ने इस कानून के दुरूपयोग को रोकने के लिए समुचित प्रयास किया है। **ए0के0 राय बनाम भारत संघ** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने बहुमत से यह निर्धारित्त किया कि आन्तरिक सुरक्षा कानून 1950 संवैधनिक है किन्तु इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने इस कानून के दुरूपयोग को रोकने हेतु दिशा निर्देश जारी किया। न्यायालय ने अभिनिर्धारित्त किया कि ऐसे कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार व्यक्ति के सम्बन्ध में निम्न दिषा निर्देषों का पालन अपरिहार्य होगा। प्रथम–गिरफ्तार व्यक्ति के निकट सम्बन्धी को गिरफ्तारी की लिखित सूचना दी जायेगी। द्वितीय– विषेश परिस्थितियों को छोड़कर गिरफ्तार व्यक्ति को वहीं रखा जायेगा जहाँ वह सामान्यत: निवास करता है। तृतीय – उसे सिद्ध दोष व्यक्ति के साथ नहीं रखा जा सकता है। चतुर्थ – निरोध में रखे गये व्यक्ति को किसी भी प्रकार की शारीरिक यातना नहीं दी जायेगी और उसके

साथ मानवीय एवं गरिमापूर्ण तरीके से व्यवहार किया जायेगा।

करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने टाडा के क्षेत्र एवं विस्तार को बहुत सीमित कर दिया। न्यायालय ने कहा कि किसी भी व्यक्ति को टाडा के तहत तब तक आरोपित नहीं किया जा सकता जबतक कि उसका कार्य षुद्ध रूप से "आतंकवादी कार्य" की परिभाषा में न आये। यही दृष्टिकोण बनाये रखते हुए उच्चतम न्यायालय ने फरवरी 2011 में **अरूप भुयन बनाम आसाम राज्य** के मामले में अभिनिर्धारित किया कि प्रतिबन्धित संगठन का सदस्य मात्र होने से कोई व्यक्ति दोषी नहीं हो सकता है। न्यायालय ने कहा कि टाडा की धारा 3(5) का शाब्दिक निर्वचन नहीं किया जा सकता, अन्यथा यह संविधान के अनु0 19 एवं 21 का उल्लघंन होगा।

निष्कर्ष

भारत में पहला निवारक निरोध कानून संविधान के लागू होने के एक माह के भीतर ही संसद द्वारा बना दिया गया। तब से लेकर आज तक ऐसे कई कानून बने एवं समाप्त किये गये। देश की एकता एवं अखण्डता, सम्प्रभुता, लोक व्यवस्था आदि के नाम पर इन कानूनों को निष्चित रूप से न्यायोचित ठहराया जा सकता है किन्तु लोक व्यवस्था, देश की शान्ति एवं सुरक्षा के नाम पर इन अधिनियमों का किस प्रकार दुरूपयोग किया गया यह किसी से छिपा नहीं है। आपात काल के दौरान राजनैतिक स्वार्थो की पूर्ति के लिए इन कानूनों का सहारा लिया गया। व्यक्तिगत एवं राजनैतिक इच्छापूर्ति के साधन के रूप में कानूनों का उपयोग किया गया। मानवाधिकार के हनन एवं इसके दुरूपयोग के कारण ही टाडा एवं पोटा जैसे कानून को समाप्त करना पड़ा। किसी भी लोकतान्त्रिक देश में ऐसे अधिनियमों की मौजूदगी जो व्यक्ति के मानवाधिकार का हनन करे अच्छा संकेत नहीं है। निवारक निरोध कानून के नाम पर मनमानेपन की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है। आज ऐसे संन्तुलित नियमों की आवश्यकता है जो देष की एकता अखण्डता एवं शान्ति–सुरक्षा के साथ–साथ वहाँ रहने वाले व्यक्तियों के मानवाधिकारों का पालन भी सुनिश्चित करा सके।

***

लेख

मानव अधिकार का ईसाई दृष्टिकोण

• प्रो० डॉ० एम. डी. थॉमस

1. मानव अधिकार की धारणा के विविध आयाम

1.1 मानव अधिकार का संदर्भ

'विविधता' सृष्टि की बुनियादी विशेषता है। सृष्टि की यह विविधता ही व्यापक तौर पर मानव अधिकार के संदर्भ में भी भिन्न–भिन्न तत्त्व होने के साथ–साथ एक–दूसरे से 'गुणात्मक फ़र्क' लिए हुए हैं। खास तौर पर मनुष्य की संस्कृति में, व्यक्ति हो या समुदाय, संस्था हो या और कोई इकाई, हर एक की अपनी–अपनी 'अहमियत' है। इन्सान की ज़िन्दगी सुचारू रूप से चले, उसके लिए ज़रूरी है कि व्यक्ति और व्यक्ति तथा समुदाय और समुदाय के बीच 'आपसी तालमेल' रहे। जीवन के विभिन्न पहलुओं में मेल–जोल का 'सन्तुलन' बना रहे, यह जीवन की कामयाबी के लिए अहम है। मनुष्य के अलौकिक जीवन का असली आधार भी बस यही है। जब यह सन्तुलन बिगड़ जाता है, मानव अधिकार अपने आप में एक मुद्दा बन जाता है।

1.2 मानव अधिकार का आधार

मानव अधिकार का आधार असल में 'अनुशासन' है। सामाजिक तालमेल भी अनुशासन के बलबूते ही हासिल होता है। अपने पर 'खुद शासन' करना अनुशासन है। 'भीतरी संयम' अनुशासन की आत्मा है। हर चीज़ की एक कुदरती हद होती है। किसी भी इकाई की धारणा इसी से बनती है। 'अपनी हद' का ध्यान रखना जिंदगी को सुचारू रूप से चलाने के लिए जरूरी होती है। 'अपनी आज़ादी' और 'दूसरे की आजादी' के बीच मौजूद 'शराफ़त की रेखा' का लिहाज करते हुए जीना अनुशासन है।

• सर्व धर्म समन्वय आयोग के राष्ट्रीय निदेशक, दिल्ली

अनुशासित शख्स दूसरे का 'अतिक्रमण' कदापि नहीं करता। अनुशासन में ही सामाजिक जीवन का सन्तुलन और तालमेल है। अनुशासन में रहना समाज के हर सदस्य के लिए, देश के हर नागरिक के लिए अनिवार्य है। व्यक्ति और समुदाय के स्तर पर अनुशासन जीवन की एक सहज प्रक्रिया बनी रहे, इसी में मानव जीवन की सार्थकता है। 'अनुशासन की बुनियाद' पर ही मानव अधिकार की चर्चा प्रासंगिक लगती है।

1.3 मानव अधिकार की अवधारणा

यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि 'अधिकार' मनुष्य के जीवन की 'आधार–शिला' है। यह इन्सान को ज़िन्दगी में अपनी 'संभावनाओं' को विकसित करने के लिए सब कुछ कर सकने में समर्थ बनाता है। अधिकार इन्सान का 'स्वामित्व' है, जो उसकी अपनी ज़िन्दगी जीने के लिए जरूरी तमाम चीज़ों पर होता है, जैसे वस्तु और सम्पत्ति। उपर्युक्त चीज़ों को 'हासिल करने की प्रक्रिया' भी अधिकार के भीतर आती है। किसी विशिष्ट कार्य करने की 'शक्ति या योग्यता' भी अधिकार है। जो धर्म, न्याय आदि की दृष्टि से उचित या ठीक हो, असल में वही न्याय है। न्याय में ऐसे आचरण या व्यवहार का इन्तज़ाम है, जिसमें 'नैतिक दृष्टि' से किसी प्रकार का अनौचित्य, पक्षपात या बेईमानी नहीं है। न्यायपूर्ण व्यवहार में 'समता' का भाव है। संसार के सभी मनुष्यों का 'समान रूप से कल्याण' हो, सब को उन्नत, सन्तुष्ट और सुखी होने की व्यवस्था मिले, यही अधिकार का व्यापक मकसद है। मनुष्य के आदर्शों, स्वाभाविक गुणों, भावनाओं, आदि का प्रतीक है मानवता। 'मानवता की प्रतिष्ठा' का भाव मानव अधिकार की अवधारणा का मर्म है। जब इस पुनीत भाव का भंग होता है तब 'मानवता की मांग' एक चुनौतीपूर्ण 'प्रतिबद्धता' का रूप ले लेती है। ऐसी प्रतिबद्धता ही एक 'मिशन' के रूप में बुलन्द होती है, जो मंज़िल तक पहुँचने तक अपने सफर में डटकर कायम रहती है।

1.4 मानव अधिकार के साथ कर्त्तव्य का समन्वय

मानव अधिकार की अवधारणा 'कर्त्तव्य' की चर्चा से बिछुड़कर अधूरी रहती है। कर्त्तव्य के संदर्भ में ही अधिकार का विचार प्रांसगिक और कारगर है। 'अधिकार और कर्त्तव्य' 'एक सिक्के के दो पहलू' के समान 'एक दूसरे के पूरक' हैं। ये दो बातें 'गाड़ी के दो पहिये' के समान एक दूसरे के लिए अनिवार्य हैं। जीवन के 'तराजू' में अधिकार और कर्त्तव्य के पलड़े जब बराबर रहे, तभी समाज में तालमेल रहेगा। तभी मानव जीवन की परिभाषा पूरी होगी। इसलिए 'भारत के संविधान' में 'मौलिक अधिकारों' के साथ–साथ 'मौलिक कर्त्तव्यों' की चर्चा हुई है। इन पहलुओं में 'अनुपात' ठीक रखना जीवन की सार्थकता के लिए बेहद ज़रूरी है। कोई अपना 'हक़ हासिल' करने लायक तभी होगा

जब उसने अपना 'फर्ज निभाया' हो। एक अपने 'कर्त्तव्य का पालन' करे, तभी दूसरे को अपना 'अधिकार हासिल' होगा। हर कोई 'दूसरे का सम्मान' करे, उसके 'आत्म–सम्मान' को ठेस नहीं पहुँचाए और उसके व्यक्तिगत मामलों में 'हस्तक्षेप नहीं' करे ऐसा व्यवहार मूल कर्त्तव्य के मुताबिक जरूरी है। कोई किसी का 'शोषण नहीं' करे और कोई किसी को 'पीड़ा नहीं पहुँचाए', यह भी कर्त्तव्य–पालन के तरीके हैं। कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को अपने से छोटा नहीं समझे, कोई समुदाय दूसरे समुदाय को 'हीनभावना' से न देखे, कोई व्यक्ति या समुदाय दूसरे पर हमला न करे, ये बातें भी कर्त्तव्य के अंतर्गत आती हैं। यदि एक तरफ 'जीने का अधिकार' है तो दूसरी तरफ से 'समान व्यवहार प्राप्त होना हर नागरिक का हक' है। सबको सीखने, बढ़ने और सार्थक रूप से जीने के लिए 'समान अवसर प्राप्त होना हर नागरिक का हक' है। मानव अधिकार और मानव कर्त्तव्य के संतुलित तालमेल की नींव पर ही 'इन्सानियत' की इमारत खड़ी हो सकती है। सद्भाव और सहयोग से परिपूर्ण व्यवहार से 'अधिकार और कर्त्तव्य के बीच का पुल' बनता है, जिससे होकर इंसान एक दूसरे की ओर सफर तय करता है।

1.5 मानव अधिकार और धर्म

मानव अधिकार की रक्षा में 'धर्म' की अहम् भूमिका है। सामान्य अर्थ में, धर्म 'जुड़ने–जोड़ने' का नाम है। जुड़ने के लिए, चाहे ईश्वर से हो या इन्सान से, अधिकारों और कर्त्तव्यों का पक्का इंतज़ाम चाहिए। धर्म का खास तात्पर्य 'कर्त्तव्य' से है। राजधर्म, प्रजाधर्म, पितृधर्म, मातृधर्म, भ्रातृधर्म आदि शब्दों का इस्तेमाल इसी अर्थ में किया जाता है। सही मायने में, धर्म का मतलब 'धारण करना' है। कर्त्तव्यों और अधिकारों को एक साथ धारण किया जाता है। धारण करने का मतलब 'ज़िम्मेदारी लेना' है। धर्म–तंत्र की ज़िम्मेदारी है कि वह अपनी–अपनी परंपरा में आस्था रखने वालों को अपने 'कर्त्तव्यों और अधिकारों के प्रति सजग' करे। धर्म का फर्ज़ यह सुनिश्चित करना भी है कि अपने समुदाय के लोग दूसरों से अपनी 'अपेक्षाएं' रखने के साथ–साथ उनके प्रति अपनी 'जिम्मेदारियाँ' भी निभाएं। गहरे अर्थ में, धर्म 'स्वभाव' और 'अन्तःकरण' भी है। अपने–अपने कर्त्तव्य और अधिकार के बीच आपसी तालमेल रखना हर आस्थावान व्यक्ति का स्वभाव और 'अन्तःकरण' भी है। 'अधिकार–चेतना' और 'कर्त्तव्य–भावना' दोनों 'धर्म–बोध' की बुनियाद में एक संयुक्त इकाई के रूप में मौजूद है। असल में धर्म 'मानव अधिकारों की स्वीकृति एवं रक्षा की व्यवस्था' है। 'विविध धर्म–परंपराओं' से उभरे 'सार्वभौम मूल्यों' के बलबूते इंसान को अपनी जिंदगी में अधिकार और कर्त्तव्य के समायोजन में सहूलियत मिले, धर्म–परंपराओं की यही सार्थकता है। विविध धर्म–परंपराओं में मानव अधिकार की अवधारणा की चर्चा इसी विचार से ही तार्किक और प्रासंगिक लगती है।

2. मानव अधिकार का ईसाई दृष्टिकोण

2.1 'इन्सान में ईश्वर की सदृश्यता' मानव अधिकार की नींव

ईसाई धर्म में मानव अधिकार की अवधारणा की नींव जाहिर तौर पर बाइबिल में पायी जाती है। बाइबिल में इसकी चर्चा स्वतंत्र रूप से न होकर समग्र रूप से किया गया है। मानव अधिकार से संबंधित ईसाई दृष्टिकोण की चर्चा इस धारणा से शुरू होती है कि "ईश्वर ने मनुष्य को अपना प्रतिरूप बनाया" (पवित्र बाइबिल, पुराना विधान, उत्पत्ति 1.26–27 पृ. 5; 5.1, पृ. 9)। इंसान 'ईश्वर के सदृश बनाया गया है'। 'ईश्वर का स्वभाव उस पर छाया रहता' है। ईश्वर 'इन्सान में वास करता' है। साथ ही, ज़िन्दगी के सफ़र में ईश्वर भी इन्सान के 'साथ सदा सफर करता' है। (वही, नया विधान, मार्कुस 4.35 पृ. 61)। बाइबिल की कुछ पुस्तकों के लेखक पौलुस पूछते हैं, "क्या आप यह नहीं जानते है कि 'आप ईश्वर के मन्दिर हैं' और 'ईश्वर की आत्मा आप में निवास करती' है" (वही, 1 कुरिंथी 3.16, पृ. 255; 2 कुरिंथी 6.16, पृ. 279)? ईश्वर का प्रतिरूप और प्रतिनिधि होकर हर इन्सान 'इज़्जत और सम्मान का हकदार' है। खुदा को किसी की इबादत की ज़रूरत नहीं है। इंसान के साथ उसके गरिमा के लायक किए जाने वाले सद्व्यवहार में खुदा की असली इबादत सम्पन्न होती है। इसलिए ईसा कहते हैं कि "तुम मेरे इन भाइयों या बहनों के लिए, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, जो कुछ करते हो, वह तुम मेरे लिए ही करते हो" (वही, मत्ती 25.40, पृ0 45–46)। मतलब यह है, 'इन्सान की सेवा' 'ईश्वर की पूजा' के बराबर है। ज़रूरत इस बात की है इन्सान दूसरे इन्सान को 'ईश्वर का प्रतिरूप' माने, उसमें 'ईश्वर की सदृश्यता' देखे, 'ईश्वर की मौजूदगी' का एहसास करे उसका 'सम्मान करे और उसकी 'सेवा' करे। ऐसा व्यवहार, एक तरफ़, इन्सान का फर्ज़ है और दूसरी तरफ़, उसका हक भी है। ऐसी धारणा मानव अधिकार के ईसाई दृष्टिकोण की बुनियाद है।

2.2 'समभाव' मानव अधिकार की भित्ति

समभाव ईसाई जीवन दृष्टि का केन्द्रीय मूल्य है। ईसा ने ईश्वर को 'पिता' के रूप में महसूस किया और सब मनुष्यों को उस 'पिता की सन्तान' मानी। अपने आध्यात्मिक ज्ञान की कसौटी पर उन्होंने यह घोषित किया कि जैसे किसी भी बाप के लिए अपनी औलाद बराबर महत्त्व की है, ठीक वैसे ही सभी मनुष्य ईश्वर के सामने 'समान महत्त्व' के हैं। समभाव वास्तव में 'ईश्वरी गुण' है। ईसा ने अपने स्वर्गिक पिता के इस गुण को इन शब्दों में चित्रित किया कि "अपने स्वर्गिक पिता भले और बुरे दोनों पर अपना सूर्य उगाता तथा धर्मी और अधर्मी, दोनों पर पानी बरसाता है" (वही, मत्ती 5.45, पृ. 8)।

ईसा ने अपने आदर्श पिता की मानसिकता को पूरी तरह से अपनाया और पूर्ण समभाव की वकालत करते हुए अपने शिष्यों से कहा, "तुम पूर्ण बनो, जैसे तुम्हारा स्वर्गिक पिता पूर्ण है" (वही, मत्ती 5.48, पृ. 8)। समभावपूर्ण व्यवहार ही 'पूर्णता' की सही परिभाषा है। इसी में 'धर्म और आध्यात्मिकता की चरम सीमा' पायी जाती है। स्पष्ट है, समभाव में कर्त्तव्य–पालन और अधिकार–प्राप्ति का सुरक्षित इंतज़ाम है।

2.2 'प्रेमभाव' मानव अधिकार की आत्मा

'प्रेमभाव' मानव अधिकार की आत्मा है इसकी शुरुआत सद्भाव से होती है और यह समभाव में समाया रहता है। प्रेम ही ज़िन्दगी का मर्म है। यही 'जीवन का मुख्य नियम' भी है। यदि इस नियम का पालन सख्ती से होता है, तो ज़िन्दगी में दूसरे नियमों की ज़रूरत नहीं होती। पौलुस इस नियम को "हृदय पर अंकित नियति" और "अन्तःकरण का साक्ष्य" कहते हैं (वही, रोमी 2.15, पृ. 233)। प्रेम का नियम हर इन्सान के दिल के रुझान में पाया जाता है। अंतरात्मा हर पल इस बात का गवाह बनी रहती है। ईसा ने प्रेम की व्याख्या समर्पण के रूप में करते हुए कहा कि "इससे बड़ा प्रेम किसी का नहीं की कोई अपने मित्रों के लिए अपने प्राण अर्पित कर दे" (वही, योहन 15.13, पृ. 172)। ईसाई परंपरा की 'बुनियादी तालीम' के रूप में उन्होंने 'अपनी मिसाल' को ही पेश करते हुए कहा कि "जिस प्रकार मैंने तुम लोगों को प्यार किया, उसी प्रकार तुम भी एक दूसरे को प्यार करो" (वही, योहन 13.34, पृ. 169)। 'ईश्वर सबका पिता है' और 'सब मनुष्य अपने भाई और बहन हैं' ऐसा अहसास ही 'ईसाई की आस्था' है, यही उसकी 'पहचान' भी। इस नज़रिये में खून की जगह 'प्यार' इन्सान के 'आपसी रिश्ते और दोस्ती' का निर्णायक बन जाता है। 'अपनेपन और आत्मीयता' के ऐसे माहौल में दूसरे से जुड़ना और उसके लिए सब कुछ करना आसान ही नहीं, 'स्वाभाविक और सुखद' बन जाता है। प्रेमभाव से प्रेरित होकर कर्त्तव्य–पालन जब इन्सान का स्वभाव बन जाता है, सबको अपना अधिकार यों ही हासिल हो जाता है।

2.4 'आपसी व्यवहार' मानव अधिकार का रूप

समाज की अलग–अलग इकाइयों के 'आपस में जैसा व्यवहार' होता है ठीक वैसा ही रूप है मानव अधिकार का भी। इन्सान–इन्सान से, परिवार–परिवार से, समुदाय समुदाय से, संस्था संस्था से और कोई एक इकाई अन्य किसी इकाई से कैसे जुड़े और उसके साथ कैसा व्यवहार करे, उसी तर्ज पर मानव अधिकार के मुद्दे के भिन्न–भिन्न पहलू उभरकर सामने आएंगे। ईसा ने आपसी व्यवहार का एक ऐसा 'स्वर्णिम नियम' पेश किया है, जो कि इन्सानी ज़िंदगी को समग्र रूप से अपने में समेट लेता है। उनका कहना

है कि "दूसरों से अपने प्रति जैसा व्यवहार चाहते हो, तुम भी उनके प्रति वैसा ही किया करो" (वही, मत्ती 7.12, पृ. 10)। आपसी लेन–देन की यही बुनियादी नीति है। दूसरों के प्रति अपनी 'ज़िम्मेदारियाँ निभाने' के बाद ही उनसे 'उम्मीदें रखना' जायज है। ऐसा व्यवहार ही न्याय के मुताबिक है। यही 'नीतिशास्त्र' की सार्वभौम आधार भी है। इस स्वर्णिम नियम में 'हक और फर्ज़ के दरमियान तालमेल और संतुलन' भरपूर कायम है। साथ ही, फर्ज़ को निभाने की प्राथमिकता पर ज़ोर लगने से हक को हासिल करने की प्रक्रिया में सहज ही निश्चितता आती है। 'कर्त्तव्य का मूल्य' चुकाने पर ही 'अधिकार पर दावा' किया जा सकता है। व्यक्तियों और समुदायों की सम्मिलित जीवन की सफलता के लिए यह नियम बाकायदा स्वर्णिम है।

2.5 'एक शरीर, अनेक अंग' मानव अधिकार की मिसाल

पौलुस ज़िंदगी की बुनियाद को टटोलने के बाद उसके तह से एक ऐसा तर्क पेश करते हैं जो कि व्यावहारिक और लाजवाब ही नहीं, 'अधिकार और कर्त्तव्य के तालमेल के लिए सर्वोत्तम मिसाल' भी है। उनका कहना है कि हम "एक शरीर अनेक अंग" के समान हैं (1 कुरिंथी पत्र 12.12–13, पृ. 285–6)। इस बात की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि शरीर के बहुत से अंग होते हैं, लेकिन शरीर एक है। अंग शरीर नहीं, बल्कि सिर्फ अंग है। अनेक अंग एक ही अंग की बहुतायत नहीं है, वरन् अलग–अलग हैं। अंगों के भिन्न–भिन्न रूप हैं, आकार हैं, स्वभाव हैं, जगह हैं और भूमिकाएं हैं। उनमें मौजूद फ़र्क ही उसकी अपनी–अपनी 'खासियत' है। सभी अंग मिलकर शरीर बनते हैं। शरीर का कोई एक अंग दूसरे से कह नहीं सकता कि मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं। शरीर के किसी एक अंग की जीत या खुशी 'सभी अंगों की जीत या खुशी' है। ठीक उसी प्रकार शरीर के किसी एक अंग में होने वाला दर्द सभी अंगों में महसूस होता है। शरीर का कोई भी अंग बड़ा या छोटा नहीं है। सभी अंग 'बराबर आदर के पात्र' हैं। शरीर का कोई भी अंग कमज़ोर नहीं है। यदि कोई अंग अपने आपको दूसरे से ज़यादा ताकतवर समझता है, तो उसका फर्ज़ है, जो कमज़ोर समझा जाता है उसके लिए सहारा बनना। अंगों को 'एक दूसरे की सेवा' करनी चाहिए। अंगों की 'विविधिता और आपसी सहयोग' से ही शरीर की गतिविधियाँ सुचारू रूप से चल सकती है। 'शरीर की एकता में अंगों की प्रासंगिकता' निहित है। सबका अपना–अपना कर्त्तव्य और अपना–अपना अधिकार है। जैसे शरीर के विविध अंग आपस में पूरक हैं, ठीक वैसे ही अधिकार और कर्त्तव्य–पालन पर निर्भर है। इस संदर्भ में 'शरीर' की संरचना और गतिशीलता मानव अधिकार की रक्षा के लिए बेहद प्रेरणादायक है।

2.6 'दूसरे की ज़िम्मेदारी लेना' मानव अधिकार की व्यवस्था

अपने आपको 'दूसरे के लिए ज़िम्मेदार' महसूस करना मानवीय संवेदना और रिश्ते का पुख्ता सबूत है, जिसमें जीवन की 'सामाजिकता' की पहचान छिपी हुई है। दूसरे के अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए यह पुनीत भाव एक बहुत ही कारगर उपाय है। इस सिलसिले में बाइबिल के पुराने विधान का एक किस्सा बेहद प्रासंगिक प्रतीत होता है। आदम और हव्वा के दो पुत्र थे, 'काईन और हाबिल'। काईन खेती करता था और हाबिल भेड़–बकरियों को चराता था। खुदा हाबिल से ज्यादा प्रसन्न थे। इस पर काईन नाराज थे। जलन के मारे एक दिन काईन ने हाबिल पर वार किया और उसे मार डाला। खुदा ने काईन से पूछा, "तुम्हारा भाई हाबिल कहां है"? काईन ने खुदा के सवाल का जवाब नहीं दिया, बल्कि उल्टा सवाल किया, "क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ" (वही, पुराना विधान, उत्पत्ति 4.1–10, प० 7–8)? यह सवाल मानवीय ज़िन्दगी में बुनियादी तौर पर महत्त्व रखता है। बाइबिल के नये विधान में एक दूसरा किस्सा इस सवाल का जवाब पेश करता है। ईसा अपने शिष्य और माता मरियम के साथ 'काना नगर के एक विवाह–समारोह' में शरीक हुए। समारोह में अंगूरी परोसने की प्रथा थी। यकायक अंगूरी खत्म हो गयी और मेजबान परेशान हो गये। माता मरियम को इस बात का पता चला। उन्होंने मेजबान से चर्चा किए बगैर ही अपना बेटा ईसा से कुछ करने का आग्रह किया। ईसा ने अपनी अलौकिक ताकत से पानी को अंगूरी में बदल दिया। माता मरियम ने इस प्रकार उस मेजबान की लाज रखी। 'बगैर पूछे ही', सोच–समझकर और दूसरे को दिया। माता मरियम ने इस प्रकार उस मेजबान की लाज रखी। 'बगैर पूछे ही, सोच–समझकर और दूसरे को 'अपना भाई मानकर' उसकी 'जरूरत की पूर्ति' करते हुए माता मरियम ने यह साबित किया कि 'वह अपने भाई की रखवाली है' (वही, योहन, 2.1–11, पृ. 148)। ये दोनों किस्से प्रतीक के तौर पर 'सवाल' और 'जवाब' के रूप में आपस में मुखातिब हैं। पुराने विधान के सवाल का जवाब नए विधान ने शब्दों में नहीं बल्कि व्यवहार में दिया। दूसरे की ज़िम्मेदारी लेना और मौका आने पर उसकी मदद करना अपना कुदरती फर्ज़ है। ऐसी 'ज़िम्मेदारी की भावना' में 'दूसरे के अधिकारों की रक्षा' करने की असीम ताकत छिपी हुई है। अपने कर्त्तव्यों का पालन करने का सबसे कारगर तरीका यही है। असल में इन्सानियत और धर्मपरायणता की सम्मिलित पहचान जीवन की इस मान्यता में मौजूद है।

2.7 'असंतुलित सामाजिक हालत' में मानव अधिकार की चेतना

ईसा के समय पर यहूदी समाज ऐसे 'उथल–पुथल' से भरा हुआ था कि साधारण लोगों के लिए जीना ही दूभर हो गया था। समाज के भिन्न–भिन्न वर्गों के बीच 'अधिकार

और अधिकार का अनुपात पूरी तरह से बिगड़ गया था। धर्म के क्षेत्र में 'अधिकारों का उल्लंघन' सबसे अधिक था। यहूदी समाज के धर्म–नेता अपने आपको पुण्यात्मा और भला समझते थे और दूसरों को पापी और बुरा। 'धर्म के पाखंडी धुरंधरों' ने खुदा के नाम पर बेवजह ही कर्मकाण्डी बोझ उठाकर आम लोगों के कंधे पर रखा करते थे। 'खुदपरस्ती और ऊँच–नीच' के भाव से ग्रस्त उनके कलंकित मन में खुदा के लिए कोई जगह नहीं थी। 'भेदभावपूर्ण व्यवहार' के कारण ताकतहीनों के अधिकारों का हनन होता था। इन्सान–इन्सान के बीच फर्क करके अपने आपको ज्यादा महत्त्वपूर्ण साबित करने की यह होड़ असल में खुदा के अलौकिक स्वभाव के साथ गुस्ताखी नहीं तो क्या थी! 'दूसरों के जायज हिस्से का ऐसे खुल्लम–खुल्ला अतिक्रमण' देखकर ईसा ने उन पाखंडियों की पोल खोली और उन पर जमकर बरसे। और तो और उन्होंने बुनियादी मानव अधिकारों से वंचित उन तथा कथित पापियों को हकीकत में 'दिल का साफ' होने और 'खुदा के नज़दीक' होने का करार दिया। नाकेदार– जैसे समाज के निम्न वर्ग के लोगों तथा पापियों के साथ उठना–बैठना, खाना–पीना और दोस्ती करना जैसे 'ईश्वर–तुल्य व्यवहार' से ईसा ने 'कमज़ोरों के अधिकारों की रक्षा' की (वही, लूकस 19.1–10, प॰ 129)। सौ भेड़ों में से निन्यान्बे को छोड़कर एक 'खोये हुए की तलाश' में निकलने वाले 'भले गड़रिये' का जीवन्त रूप बनकर ईसा 'जीने के हक़ से वंचित लोगों की तरफ खड़े' हुए (वही, लूकस 15.1–7, प॰ 121–22)। साथ ही, ईसा ने 'गरीब, दीन–हीन, नम्र, दुखी, गुनहगार' आदि के 'अलौकिक बड़पन' को अजागर करके उन्हें 'ईश्वर–सदृश इज़्ज़त' दिलायी (वही, मत्ती 5.1–10, पृ. 5–6)।

2.7 'वंचित वर्ग के साथ होना' मानव अधिकार की रक्षा की दिशा

ईसा की मानव अधिकार चेतना वंचित और शोषित वर्ग के साथ, खास तौर पर 'महिला, बच्चे और नगण्य' लोगों पर होने वाले पक्षपातपूर्ण व्यवहार के खिलाफ डटकर खड़े होने में अभिव्यक्त हुई। 'महिलाओं' को न्याय दिलाने की दिशा में ईसा ने 'व्यभिचार में पकड़ी गयी स्त्री' को पत्थर से मार डालने जा रहे ढोंगी पुरुषों की व्यभिचार के साथ होने की असलियत को उजाले में लाकर पुरुषों के अन्यायपूर्ण हरकतों से उन्हें निजात दिलायी (वही, योहन 8.1–11, पृ. 157–58)। पश्चाताप करने वाली 'पापिनी स्त्री' को खुदा की माफी और स्वीकृति के योग्य बताकर ईसा ने पुरुषों की हुकूमत की मजबूरी भोग रही स्त्रियों को पुरुषों के बराबर का दर्जा दिलाया (वही, लूकस 7.36–50, पृ. 103)। 'बच्चों' को छोटा समझकर अपने आपको बड़ा मानने वाले वयस्कों को 'बच्चों में असली बड़प्पन' का अहसास करा कर ईसा ने बच्चों को अपने अधिकार से युक्त किया (वही, मत्ती 18.1–17, पृ. 30)। दुनिया की दृष्टि में 'मूर्ख, दुर्बल, तुच्छ और नगण्य' लोगों को

'खुदा के विशेष प्यारे' घोषित कर ज्ञानी, शक्तिशाली, कुलीन और गणमान्य लोगों की अपने घमण्ड और विशिष्ट अधिकार–भावना के लिए चुनौती देते हुए पौलुस ने अधिकारों में सन्तुलन स्थापित करने की ईसा की पहल को फैलाव भी दिया (वही, 1 कुरिंथी, 1. 26–31, पृ. 253)। इस प्रकार के अनगिनत घटनाओं द्वारा ईसा ने वंचितों और शोषितों पर बीत रहे 'अन्याय के दर्द को महसूस' किया और उनके मानव अधिकार की रक्षा की दिशा में एक नयी परंपरा ही चलायी।

2.8 'कमजोरों की तरजीही सेवा' मानव अधिकार का कारगर कदम

समाज के 'निचले या कमज़ोर तबके के लोगों की तरजीही सेवा' ही उन्हें अधिकारयुक्त करने का सबसे कारगर कदम है। ईसा ने मानव अधिकारों की रक्षा की अपनी मुहीम में 'गरीब, गुनहगार, विकलांग, रोगी, सेवा करने वाले', आदि के अधिकारों को भी बुलन्द किया। 'लाज़रज़' नामक गरीब के बुनियादी हक़ की ओर बेरहम रहे 'अमीर को दण्ड के लायक' बतलाकर ईसा ने 'धन–सम्पत्ति की असन्तुलित व्यवस्था में मौजूद हकतलफी' की निन्दा की (वही, लूकस 16.19–31, पृ. 124)। मन्दिर के खजाने में बहुत अधिक सिक्के डालने वाले अमीरों की तुलना में महज एक पैसा डालने वाली बहुत ही 'गरीब विधवा को सबसे अधिक डालने वाली' बताकर ईसा ने 'खुदा के सामने बड़प्पन की असली कसौटी' को उजागर किया ही नहीं, बड़े–छोटे की गलतफहमी पर जमकर तमाचा भी मारा (वही, मारकुस 12.41–44, पृ. 77)। 'गुनहगार भी क्षमा के अधिकारी हैं' इस बात को साबित करने के लिए ईसा ने अपने शिष्यों को "सत्तर गुना सात बार माफ़ करने" की नसीहत दी (वही, मत्ती 18.22, पृ. 31)। साथ ही, सलीब पर चढ़ाकर अपने साथ बेरहमी और हीनतम व्यवहार करने वालों के लिए "पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं", ऐसी प्रार्थना कर ईसा 'क्षमा की सबसे अनोखी मिसाल' खुद बनकर दिखाए। इस प्रकार उन्होंने 'गुनहगारों को पश्चाताप करके और मन–परिवर्तन कर एक नयी जिंदगी जीने के अधिकार' से युक्त किया (वही, लूकस 23. 24, पृ. 139)। भोज देते समय अपने मित्रों, कुटुम्बियों और धनी पड़ोसियों की जगह 'कंगालों, लूलों, लंगड़ों और अंधों को बुलाने' की तालीम देकर ईसा ने 'समाज के आधे–अधूरों को भी इज्ज़त के लायक' घोषित किया (वही, लूकस 14.12–14 पृ. 120)। विभिन्न कारणों से 'बीमार हुए लोगों को चंगा' कर और उन्हें 'नया जीवन प्रदान' कर ईसा ने उनके भी 'जीने के अधिकार' पर रोशनी फेरी (वही, मारकुस 5.1–43, पृ. 61–63)। 'पेशे से या स्वेच्छा से दूसरों की सेवा करने वालों को' निचले स्तर के समझने की गलतफहमी को दूर करने के लिए ईसा ने कहा, "जो तुम में बड़ा है वह सबसे छोटा–जैसा

बने और जो अधिकारी है, वह सेवक–जैसा बने। मैं तुम लोगों में सेवक–जैसा हूँ" (वही, लूक 22.24–27, पृ० 135)। इस प्रकार, किसी–न–किसी प्रकार से 'शोषण के शिकार' हुए और अपने 'अधिकारों से वंचित' हुए लोगों के प्रति 'तरजीही प्यार' दिखाया। इतना ही नहीं, उन्हें दूसरों से भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध करते हुए ईसा ने निचोड़ के रूप में कहा, "कारीगरों ने जिस पत्थर को बेकार समझकर निकाल दिया था, वही कोने का पत्थर बन गया है" (वही मारकुस 12.10, पृ० 76)। मानवमात्र के अधिकार की पुनर्स्थापना के लिए कमज़ोरों की तरफ ईसा द्वारा की गयी 'तरजीही प्यार–भरी सेवा' 'मानव अधिकार का एक बहुआयामी और समग्र अभियान' ही था।

2.9 'सामाजिक तालमेल' मानव अधिकार की मंजिल

मानव अधिकार का ईसाई दृष्टिकोण 'ईसा की जीवन–दृष्टि, जीवन–शैली और शिक्षा' का निचोड़ ही है। ईसा के 'जीवन–मिशन' का केंद्र 'सामाजिक तालमेल स्थापित करना' ही था। इन्सान ईश्वर सदृश बना हुआ है। ईश्वर उसमें वास करता है। इसलिए हर इंसान प्रतिष्ठा और सम्मान के लायक है।

• • •

लेख

मानवाधिकार एवं जनजातियों में मौताणा प्रथा

(दक्षिणी राजस्थान के सन्दर्भ में अध्ययन)

• डॉ0 एस. पी. मीणा

दक्षिणी राजस्थान जनजाति बहुल क्षेत्र है। इस क्षेत्र में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं जिसमें भील, मीणा, गरासिया, सांसी, गमेती, अहारी, भगोरा प्रमुख है। जनजातियां अपनी रूढ़ियों एवं परम्पराओं में विश्वास रखती हैं इनके विरुद्ध जाने पर समाज के जातीय पंचों द्वारा समाज से बदर (बहिष्कृत) कर दिया जाता है। भारत में आजादी से पूर्व समाज में जाति आधारित व्यवस्था भी समाज में झगड़ों का निपटारा आज की स्थानीय अदालत की बजाय जातीय पंचों द्वारा किया जाता था लेकिन राजस्थान के इस जनजातीय क्षेत्र में आज भी आपसी विवाद का निपटारा जातीय पंचायत के द्वारा ही किया जाता है। आज की न्यायिक व्यवस्था समय एवं धन के दृष्टिकोण से अत्यधिक खर्चीली एवं विलम्बकारी है परन्तु जनजातीय गरीबी के कारण न्यायालय में जाने के बजाय अपने जातीय पंचों के निर्णयों को ही महत्व देते हैं। पंचों द्वारा की गई प्रक्रिया काफी सस्ती, सरल तथा समय की बचत करने वाली होती है। अतः यह उनकी मजबूरी भी बन जाती है। जनजाति समाज में आज भी कुछ रूढ़ियाँ विद्यमान हैं इनमें से कुछ प्रथा सामाजिक बुराईयों के रूप में आज भी विद्यमान है जैसे नाता प्रथा, मौताणा प्रथा इत्यादि। उसमें से एक है मौताणा प्रथा यह आज भी विद्यमान है। इनका निपटारा जातीय पंचों के द्वारा किया जाता है। लेकिन जनजातियों में प्रचलित रूढ़ियां, प्रथाएं समाज के

• सहायक प्रोफेसर, जे.एन.वी. विश्वविद्यालय, जोधपुर।

विकास में बाधक बनी हुई हैं। जहां विश्व में सभी जातियां विकास की ओर अग्रसर हो रही हैं वहीं दक्षिणी राजस्थान में मौताणा प्रथा के कारण जनजातियों का विकास रूक गया है। अपने ही बनाए नियम जो रूढ़ियों के रूप में प्रचलित हैं उनके कारण स्वयं इन जनजातियों के लोगों में मानव अधिकारों का हनन हो रहा है। इसके लिए स्वयं जनजातियां जिम्मेदार है।

मौताणा प्रथा क्या है ?

साधारणतया मौताणे से तात्पर्य किसी आदिवासी जनजाति परिवार में किसी पुरुष या महिला की अप्राकृतिक मौत हो जाती है तो उसके लिए उत्तरदायी व्यक्ति को उस मौत के बदले हर्जाना देना पड़ता है। यदि वह हर्जाना नहीं देता है तो उसके परिवार के अन्य सदस्यों को व उसके गोत्र के स्थानीय लोगों को यह दण्ड भुगतना पड़ता है। यह राशि समाज के जातीय पंचों द्वारा नियत की जाती है। यदि किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है जैसे जीप ड्राइवर द्वारा दुर्घटना हो जाना या रोजगार गारन्टी योजना में महिला श्रमिक की मृत्यु हो जाना या किसी विवाहित महिला की ससुराल या मायके में मृत्यु हो जाती है आदि उदाहरण मौताणे प्रथा के हैं। इन दशाओं में मृतक परिवार के सदस्यों द्वारा उत्तरदायी व्यक्ति से मौताणा मांगा जाता है। जब तक मौताणे की राशि, मृतक के परिवार को अभियुक्त द्वारा अदा नहीं कर दी जाती तब तक मृतक व्यक्ति के शव दाह संस्कार नहीं किया जाता है। मौताणा प्रथा एक ऐसी बुराई है, जो दक्षिण राजस्थान के जनजाति क्षेत्र में आज प्रचलित है।

मौताणा प्रथा एवं मानवाधिकार :

मौताणा प्रथा का भंयकर परिणाम यह निकलता है कि यदि कोई व्यक्ति जातीय पंचों द्वारा निर्धारित मौताणें की राशि को अदा नहीं कर पाता है तो उस व्यक्ति को एवं उसके पत्नी व बच्चों, परिवार के सदस्यों को उसका परिणाम भुगतना पड़ता है। आरोपित व्यक्ति को समाज, जाति एवं गांव से बहिष्कृत कर दिया जाता है। औरतें व बच्चे असहाय हो जाते हैं एवं गरीबी व भुखमरी का जीवन जीते हैं। दूसरे गांवों में पलयान करना मजबूरी हो जाती है। जिससे औरतें व बच्चे शिक्षा से वंचित हो जाते हैं। शिक्षा के अभाव में कोई भी व्यक्ति या समाज तरक्की नहीं कर सकता है। बच्चे भीख मांगने को मजबूर हो जाते हैं।

जनजातीय क्षेत्र में कई घटनाएं ऐसी सामने आई जिसमें गरीबी के कारण महिलाओं व बच्चों को बेच दिया जाता है। राजस्थान में उदयपुर, डूंगरपुर, सिरोही, बांसवाड़ा जिले में इस प्रकार की घटनाएं ज्यादा हो रही है। मौताणें की राशि अदा नहीं करने पर आरोपित

व्यक्ति द्वारा अपने बच्चों जिसमें विशेषकर लड़कियों को दूसरे राज्यों में बेचने की घटनाएं सामने आई हैं और ऐसी महिलाओं का शारीरिक शोषण होता है। मौताणों के कारण बेघर हुए बच्चों को चुराकर उनको अंग–भंग कर भीख मंगवाई जाती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा पत्र के अनुच्छेद 3 "प्रत्येक व्यक्ति को जीने का, स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार है। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति को गुलाम नहीं बनाया जा सकता है।"[1] लेकिन जनजातीय क्षेत्र में मौताणा प्रथा के कारण आरोपित व्यक्ति द्वारा महिलाओं एवं बच्चों को दूसरे व्यक्ति को पैसा लेकर बेच दिया जाता है जो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 का उल्लंघन है।

हर व्यक्ति को न्यायपूर्ण तथा सार्वजनिक सुनवाई का बराबर का अधिकार है।[2]

लेकिन मौताणा प्रथा के अन्तर्गत आदिवासियों के अधिकांशतः रूढ़िवादिता के कारण मौताणा आज भी जातीय पंचों द्वारा निर्धारित किया जाता है एवं जातीय पंचों की मनमानी सामने आती है। मौताणे की राशि कई बार इतनी अधिक होती है जिसका भुगतान करना आरोपित व्यक्ति के द्वारा करना संभव नहीं होता है और गांव व समाज से बहिष्कृत होकर नारकीय जीवन जीने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता है। दूसरी ओर कोई भी व्यक्ति इन जातीय पंचों के विरुद्ध न्यायालय या पुलिस थाना में जाता है तो उससे उसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है।

इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोशणा में उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति को धारण करने का अधिकार है एवं किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति को बिना किसी वैध कार्यवाही के छीना नहीं जा सकता।[3]

लेकिन मौताणा प्रथा का खतरनाक प्रभाव यह है कि मौताणा नहीं चुकाने पर संबंधित व्यक्ति के घर व उसकी सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाया जाता है बल्कि कई बार पूरे गांव को भी नुकसान पहुंचा दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर 1 अगस्त, 2004 को चणावदा गांव (परसाद), जिला उदयपुर में मोतीलाल नामक व्यक्ति की हत्या हुई थी जिसमें आरोपित व्यक्तियों के घरों व सम्पत्ति को भारी नुकसान पहुंचाया गया था।[4]

प्रत्येक व्यक्ति को एक अच्छा जीवन–स्तर जीने का अधिकार है जिसमें वह स्वास्थ्य व अन्य चीजों की देखभाल कर सके। मातृत्व व बालपन विशेश देखरेख व सहायता के अधिकारी हैं।

यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को मौलिक मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का अधिकार है। उसे भोजन, वस्त्र, मकान, अन्य घरेलू जरूरतें जैसे–स्वच्छ जल,

साफ–सफाई, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि पाने का अधिकार है। विश्व के प्रसिद्ध दार्शनिक हेराल्ड लॉस्की ने कहा कि अधिकार एक ऐसी व्यवस्था है जिसके बिना सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता। मानव अधिकारों का महत्व भी इसी बात पर टिका हुआ है। रोटी, कपड़ा, मकान जहां तक मानव के लिए अपरिहार्य है, वहीं इनमें अतिरिक्त कुछ ऐसी चीजें भी हैं जो उसे गरिमामय जीवन व्यतीत करने में मदद करती हैं। लेकिन जनजातियों में मौताणा प्रथा के कारण उनके उन मानवाधिकारों का हनन का कड़वा सच यह है कि गर्भवती महिलाओं व मौताणें के कारण काफी परेशानी आती है। घर से बेदखली के कारण अच्छे जीवन–स्तर जीवन से वंचित हो जाते हैं। बच्चे, शिक्षा के अधिकार से वंचित हो जाते हैं। बुजुर्ग लोग भी भूखे, प्यासे एवं बीमारियों से ग्रस्त होने के कारण काफी कृट पाते हैं।

उदयपुर जिले की सलुम्बर तहसील के मोरेला गाँव में लगभग 20 साल पूर्व में एक युवक ने पड़ोस के गाँव के युवक की हत्या कर दी। इस पर पड़ोस के गाँव के आदिवासियों ने मोरेला पर चढ़ोतरा (हथियारबंद्ध होकर सामूहिक रूप से हमला करना) कर पूरे गाँव को जला दिया। इस हमले के दौरान पड़ोसी गाँव के आदिवासियों ने न केवल गाँव को लूटा वरन् पशुओं तथा खेत में खड़ी फसल को भी जला दिया। मोरेला गाँव के निवासी 20 वर्षों से उदयपुर जिले के खेरवाड़ा में रह रहे हैं। जिला प्रशासन द्वारा दोनों गाँवों के आदिवासियों को समझा कर लगभग 4–5 वर्षों पूर्व मोरेला गाँव से भागे हुए लागों को वापस लाकर बसाने का प्रयास किया था। किन्तु पड़ोसी गाँव के आदिवासियों ने मोरेला गाँव के आदिवासियों को मारपीट कर वापस भगा दिया।

इस प्रकार उदयपुर जिले की कोटड़ा तहसील में भी 2 वर्षों पूर्व एक आदिवासी युवक की हत्या कर देने पर मष्तक के गाँव वालों ने आरोपी युवक के घर पर मृतक की लाश को लाकर रख दिया। आरोपी युवक के परिवारजन भयभीत होकर जंगल में भाग गये। लगभग 6 माह तक मृतक युवक की लाश आरोपी युवक के घर के अन्दर पड़ी सड़ती रही और पुलिस प्रशासन लगातार मृतक के परिजनों और गाँव वालों को मृतक के दाह संस्कार करने के लिए समझाती रही।

इस प्रकार के प्रतिवर्ष कई घटनाएँ दक्षिणी राजस्थान में घटती रहती हैं जिसमें पुलिस–प्रशासन चाहते हुए भी आदिवासी समाज की रूढ़ि के नाम पर कुछ नहीं कर पाती है जो कि मानवाधिकार के खिलाफ है।

जनजातियों में मौताणें की राशि से बचने के लिए कई बार आरोपित व्यक्ति द्वारा साक्ष्यों को मिटा दिया जाता है। ऐसी ही एक घटना 22 जून, 2006 को उदयपुर के पहाड़ा

क्षेत्र में बलात्कार की चश्मदीद गवाह भाभी को देवर ने साक्ष्य मिटाने के उद्देश्य से जिंदा जला दिया।

अखिल भारतीय मीणा संघ ने सन् 2001 में मानवाधिकार आयोग में एक याचिका दायर की जिसमें मीणा संघ ने राज्य के विभिन्न जातियों के सैकड़ों गम्भीर फैसलों को संकलित किया और आरोप लगाया कि पंच–पटेलों द्वारा खुले में अदालतें लगाकर मनमाने फैसले सुनाना भारतीय संविधान के खिलाफ है। इन्होंने नाता प्रथा की आड़ में महिलाओं का शोषण करने वालों पर उचित कार्यवाही और नाता प्रथा तथा झगड़ा प्रथा पर रोक की मांग भी की थी। मानवाधिकार आयोग ने मामले को राजस्थान उच्च न्यायालय को सौंप दिया और राजस्थान हाईकोर्ट ने जाति पंचायतों के इस रवैये पर खेद प्रकट किया। राज्य सरकार को समुचित कार्यवाही के आदेश दिए।

मौताणों के संबंध में विधिक पहलू

विधिक दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय संविधान के अनु. 21 के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को प्राण व दैहिक स्वतन्त्रता का मूल अधिकार प्रदान किया गया है। प्राण व दैहिक स्वतन्त्रता के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार है। यदि किसी व्यक्ति की असामयिक मृत्यु हो जाती है तो समाज व उसमें परिवार से यह आशा की जाती है कि मरने के बाद उसके षव का सम्मानपूर्वक अंतिम संस्कार हो। कई बार दक्षिण राजस्थान में मौताणा की मांग को लेकर मष्तक व्यक्ति मृत षरीर का दाह संस्कार कई दिनों तक नहीं किया जाता। यह उसके मानवधिकार व संविधान प्रदत्त अनु. 21 के मूल अधिकार का उल्लंघन है। हांलाकि भारत सरकार के पंचायत उपबन्ध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम 1996 के अधिनियम संख्या 40 और राजस्थान पंचायत राज्य (उपबन्धों का अनुसूचित क्षेत्रों में उनके लागू होने के सम्बन्ध में उपान्तरण) अधिनियम–1999 के धारा संख्या 16 आदिवासी समाज के विवाद सुलझाने की इस परम्परागत प्रथा को मान्यता प्रदान करती है और इसे चुनौती नहीं दी जा सकती।

एक अन्य वाद डॉ. सुरजमणी स्टेलाकुजूर बनाम दुर्गा चरण हंसदा [6] के बाद में यह निर्धारित किया गया कि हिन्दु विवाह अधिनियम अनुसूचित जनजाति लोगों पर लागू नहीं होता इसलिए अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के बीच विवाह उनके बीच प्रचलित रूढ़ि एवं परम्पराओं के अनुसार ही होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान में कुछ कानून अनुसूचित जाति जनजातियों की रूढ़ियों परम्पराओं पर लागू नहीं होते और आज भी कुछ फैसले रूढ़ियों एवं परम्पराओं के अनुसार ही निर्धारित होते हैं।

बगतू प्रकरण 2008 में राजस्थान उच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश श्री एन. एन. माथुर व न्यायाधीश माणक मेहता की खण्डपीठ ने यह निर्णय दिया की जातीय पंचायतों के निर्णय संविधान के विपरीत हैं और जाति पंचायतों के निर्णयों पर अंकुश लगाने के लिए उचित वातावरण तैयार करना चाहिए। जातीय पंचायतों के निर्णय एकपक्षीय होते हैं जिससे पीड़ित पक्ष को राशि अदा करनी ही पड़ती है।

मौताणें की मांग को लेकर रास्ता जाम करते हुए आदिवासी

मौताणे से संबंधित प्रमुख घटनाएं –

1. 4 अप्रैल, 2008 को झाड़ोल क्षेत्र के ओड़ा गांव के रोहीमाला गांव की सुगना बाई पत्नी गुलाबसिंह गरासिया की राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना के तहत कार्य करते समय पहाड़ी से पत्थर गिरने से घटना स्थल पर ही मौत हो गई और मृतक महिला के पीहर पक्ष के लोग वहां पहुँच गए और मेट (सुपरवाइजर) की गलती बताते हुए मौताणें की मांग पर अड़ गए। बाद में तत्कालीन पुलिस उप अधीक्षक व विकास अधिकारी ने मृतिका के पीयर पक्ष के सरपंच को समझाया और राज्य सरकार की ओर से मृतिका के परिजनों से 25 हजार रुपये देने की घोषणा की तभी पोस्टमार्टम के बाद पुलिस की मौजूदगी में दाह संस्कार किया गया।[6]

2. 20 अप्रैल, 2008 को उदयपुर के पहाड़ा थाना क्षेत्र में मगरा निवासी मगन मीणा की पत्नी रंभा की मौत जहरीली दवा पीने से हो गई। मौत की खबर सुनकर रंभा के पीहर फलासिया थाना क्षेत्र के सड़ा गाँव के लोग तीर कमान व धारदार हथियार लेकर मगरा गाँव पहुँच गए। पीहर पक्ष वालों ने मगन पर रंभा की हत्या का आरोप लगाते हुए मौताणें की मांग की। इस दौरान दोनों पक्षों में तनाव की

स्थिति पैदा हो गई जिसे बाद में पुलिस द्वारा समझने के बाद मामले को निपटाया गया। एक अन्य घटना में पहाड़ा के विकवास गाँव में जीप की चपेट में आने से एक महिला की मौत के बाद ग्रामीणों ने मौताणें की मांग की। पुलिस द्वारा ग्रामीणों से लम्बे विचार विमर्श के बाद ही ग्रामीण माने।[7]

3. 17 अप्रैल, 2006 ऋषभदेव (उदयपुर) थाने के चणावदा में डेढ़ वर्श पहले हुई हत्या के मामले को लेकर तनाव हो गया। इस मामले में 1 अगस्त, 2004 को चणावदा निवासी मोतीलाल की हत्या हो गई थी। मष्तक के परिजनों ने गाँव के ही कुछ युवकों पर हत्या का आरोप लगाया। 1 अप्रैल को इस संबंध में समाज की बैठक हुई थी बाद में मृतक पक्ष के लोगों ने आरोपियों के घर पर धावा बोल दिया और 10–12 मकानों को आग लगा दी लेकिन पुलिस कहती है कि सिर्फ तीन मकान ही आग से क्षतिग्रस्त हुए। इस मामले में भारत की जनवादी नौजवान सभा पर भाजपा सरकार की तानाशाही व पुलिस की ज्यादती का भी आरोप लगाया गया।[8]

4. 24 मई, 2006 को डूंगरपुर जिले के विपाडी गाँव में टेम्पो पलटने से अधेड़ की मौत हो गई थी। मृतक के परिजनों ने मौताणें की मांग की। बाद में पुलिस की काफी मषक्कत के बाद ही समझौता हुआ।[9]

5. 26 मई, 2006 को बांसवाड़ा के बड़ोदिया कस्बे में सड़क दुर्घटना में एक वष्द्धा की मौत हो गई जिसमें आक्रोशित लोगों ने मौताणे की मांग को लेकर करती गाँव में जीप मालिक व उसके परिवार पर तलवारों से हमला कर दिया। बाद में पुलिस बल तैनाती से मामला शांत हुआ। यह मृतिका बांसवाड़ा के सांसद की काकी थी।[10]

6. डूंगरपुर के धमोला थाने में लांगटी (खाना बनाने वाला) आदिवासी की थाने की छत से गिरकर मौत हो गई, इस पर ग्रामीणों ने थाने को ही घेर कर वहीं डेरा डाल दिया और मौताणें की मांग की। इस पर पुलिसकर्मियों द्वारा ग्रामीणों के आक्रोश के सामने झुककर मौताणें की राशि अदा करनी पड़ी।

मौताणे का प्रभाव –

उपरोक्त घटनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मौताणे की माँग को लेकर दोनों पक्ष ही प्रभावित होते हैं। मौताणा प्रथा एक ऐसी सामाजिक बुराई है जिससे सामाजिक शांति भंग होती है। दूसरा मृतक परिजनों द्वारा आरोपित व्यक्ति से

मौताणे की राशि की माँग की जाती है वह राशि पंचों द्वारा तय की जाती है वह काफी अधिक होती है। आरोपित व्यक्ति का परिवार व उसके गोत्र के व्यक्ति या कभी–कभी पूरा गाँव भी प्रभावित होता है। मौताणे की माँग को लेकर समाज में मनमुटाव हिंसा का रूप ले लेता है जिससे आरोपित व्यक्तियों के पूरे घरों को जला दिया जाता है उनकी सम्पत्ति को काफी नुकसान पहुँचाया जाता है। इस प्रथा का सर्वाधिक प्रभाव कानून व्यवस्था पर पड़ता है। शांति बनाये रखने के लिए पुलिस प्रशासन को काफी मषक्कत करनी पड़ती है। कई बारआरोपित व्यक्ति द्वारा साक्ष्यों को मिटा दिया जाता है जिससे पुलिस स्वयं को न्यायालय में बिना साक्ष्य के आरोपित व्यक्ति को सजा दिलाने में असमर्थ पाती है जैसे 22 जून, 2008 को पहाड़ा थाना क्षेत्र में बलात्कार की चश्मदीद गवाह भाभी को देवर ने साक्ष्य मिटाने के उद्देश्य से जिंदा जला दिया। मौताणे के नाम पर गाँव के मुखिया या पंचों द्वारा गुंडागर्दी या तानाशाही सामने आती है। जैसे चणावदा मामले में गाँव के मुखियाओं पर आरोप लगाया गया था क्योंकि मौताणे का निर्धारण मुखिया या पंचों द्वारा किया जाता है क्योंकि इनका समाज में अस्तित्व सर्वोच्च होता है। इनके द्वारा सामाजिक मसलों पर लिए गए फैसले सर्वमान्य होते हैं। मौताणे का सर्वाधिक प्रभाव आरोपित व्यक्ति के बच्चों, आश्रितों एवं महिलाओं पर पड़ता है क्योंकि ये लोग जब तक मौताणे के सम्बन्ध में निर्णय या दण्ड निर्धारित नहीं होता है या मौताणे की राशि की अदायगी नहीं होती तब तक हमलों का सदैव भय रहता है। तब तक इन्हें अलग बेघर होकर भूखे–प्यासे भटकना पड़ता है। इस दौरान बच्चे शिक्षा से वंचित हो जाते हैं। व्यापार व व्यवसाय भी चौपट हो जाता है। जनजातियों का स्थानीय विकास अवरुद्ध हो जाता है। कई बार मौताणा प्रथा का परिणाम यह निकलता है कि सार्वजनिक व सरकारी सम्पत्ति को भारी नुकसान पहुँचा दिया जाता है। जैसे – चणावदा (परसाद) जिला उदयपुर में 1 अगस्त, 2004 को मोतीलाल नामक व्यक्ति की हत्या हुई थी। इसमें मृतक के परिजनों ने गाँव के ही कुछ युवकों पर हत्या का आरोप लगाया। और गाँव के पंचों ने समाज की बैठक बुलायी जिसमें पुलिस को अभियुक्तों के नाम बता दिये गये थे। और पुलिस ने कार्यवाही का आश्वासन दिया बाद में पुलिस द्वारा कार्यवाही नहीं करने पर मृतक के परिजनों ने अभियुक्तों पर हमला बोल दिया और इस घटना में 15 मकान व पुलिस की जीप व एक पुलिसकर्मी की मोटर साईकिल फूंक दी गई। इस प्रथा का प्रभाव कई बार यह देखने में आया है कि पुलिस द्वारा दमन कार्यवाही की जाती है। जैसे चणावदा प्रकरण मे आक्रोशित ग्रामीणों ने पुलिस पर हमला कर दिया था बाद मे पुलिस ने बदले की कार्यवाही करते हुए सूने मकानों को तोड़फोड़ कर व बेगूनाह लोगों को गिरफ्तार कर लिया।

वर्तमान में प्रासंगिकता एवं सुझाव –

वर्तमान में एक तरफ तो जनजातियाँ विकास की ओर अग्रसर हो रही हैं और स्वस्थ समाज की स्थापना कर रही हैं और जनजातियाँ एवं रूढ़िगत बंधनों से मुक्त होकर विकास की ओर अग्रसर हो रही हैं वहीं दूसरी ओर दक्षिणी राजस्थान में जनजातियाँ अपनी पुरानी रूढ़ियों से शासित हैं। वे न्याय भी पंचों के माध्यम से ही करती हैं अपने आपसी मामले अदालतों की बजाय पंचों के फैसलों को सर्वोच्च मानती हैं। कुछ रूढ़ियाँ जिसमें मौताणा प्रथा जैसी बुराईयों के रूप में समाज में विद्यमान है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी जनजातियाँ पंचों की गुलामी से अपने आपको स्वतंत्र नहीं कर सकीं। क्योंकि यदि कोई व्यक्ति पंचों के फैसलों को नहीं मानता है तो उसको जाति बाहर और सम्पत्ति का नुकसान भुगतना पड़ता है। पुलिस विभाग द्वारा 6–7 जुलाई, 2006 को उदयपुर में मौताणा प्रथा के सम्बंध में दो दिवसीय सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें राजस्थान सरकार के पूर्व जनजातीय मंत्री कनकमल कटारा ने कहा कि – "मौताणा खतरनाक है इसके लिए हम सभी दोशी हैं, इसके लिए प्रयास भी हमें ही करना चाहिए।" इसमें उदयपुर के तत्कालीन संभागीय आयुक्त रामरख ने कहा कि "मौताणा एक नहीं दो परिवार के लिए मौत लेकर आती है।" इसमें पूर्व बांसवाड़ा–डूंगरपुर सासंद धनसिंह राव ने कहा कि "मौत पर अब राजनीति बंद होनी चाहिए। मौताणा से आदिवासी समाज बदनाम हो गया है।"

मौताणा प्रथा जैसी बुराईयों को दूर करने के लिए निम्न सुझाव सही कारगर हो सकते हैं–

- जनजातियों में शिक्षा के माध्यम से बुराईयों को दूर किया जा सकता है।
- वर्तमान में सरकार द्वारा कानूनी क्लीनिक सेवा का उपयोग जनजातीय इलाके में निःशुल्क विधिक जानकारी प्रदान करने से हो सकता है।
- मौताणे जैसी प्रथाओं को जनसहभागिता के माध्यम से ही दूर किया जा सकता है।
- पुलिस के प्रति आज समाज में जो छवि बनी हुई है उसे सुधारने के लिए स्वयं पुलिस द्वारा जनसहयोग की नीति अपनानी चाहिए।
- पुलिस व प्रशासन दोनों द्वारा समाज, गाँवों से सम्पर्क होना चाहिए। आज प्रशासन द्वारा जनता से दूरियों की बजाय नजदीक जाकर उनकी समस्याएँ निपटायी जाए तभी पुलिस व प्रशासन के प्रति जनजातीय समाज का विश्वास बनेगा।
- समाज सुधार कार्यक्रमों को लागू किया जाना चाहिए। इसके लिए भगत प्रथा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए जिससे आदिवासी इलाकों में षराब पर रोक लगाई जा सके।

- गैर सरकारी संगठनों को समाज के बीच जाकर एक अच्छा संदेश देना चाहिए तथा जनजातीय समाज की समस्याओं को दूर किया जाना चाहिए।
- आज गाँवों में अध्यापक, पटवारी के प्रति जो आस्था है वह उन्हीं की बात मानते हैं। अतः अध्यापक, पटवारियों को ग्रामीण समस्याओं को समझकर सरकार द्वारा उनको दूर किया जाना चाहिए।

अन्त में, यही कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान में सामाजिक, आर्थिक, न्याय की संकल्पना संविधान निर्माताओं ने व्यक्त की वह तभी सार्थक सिद्ध हो सकती है जब भारत का प्रत्येक नागरिक शिक्षित व जनजातीय क्षेत्र समाज की मुख्य धारा में जुड़कर राष्ट्र निर्माण में सहयोग दे। यह तभी सार्थक हो सकता है जब मौताणा प्रथा जैसी बुराईयों को दूर किया जाए।

सन्दर्भ :

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा पत्र का अनुच्छेद 4
2. " " " " का अनुच्छेद 10
3. " " " " का अनुच्छेद 17
4. " " " " का अनुच्छेद 25
5. A.I.R. 2001 SC 938
6. राजस्थान पत्रिका : 04.04.2006
7. दैनिक भास्कर : 20.04.2006
8. दैनिक भास्कर : 17.04.2006
9. राजस्थान पत्रिका : 24.04.2006
10. राजस्थान पत्रिका : 25.04.2006

- के.सी. जोशी : मानव अधिकार
- प्रो. श्यामाचरण दुबे : मानवाधिकारों से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय विलेख
- ब्रज किशोर शर्मा : भारत का संविधान

• • •

मानव अधिकार बनाम भूमंडलीकरणः अंतर्सम्बन्ध की प्रासंगिक पड़ताल

• डॉ0 सरोज कुमार वर्मा

"मानव अधिकारों को समाज के सभी सदस्यों, विशेषकर सरकार और उसकी एजेंसियों के व्यवहार की उपलब्धियों और सिद्धांतों के मानक के तौर पर देखा जाता है। मानवाधिकारों को समाज की आधारशिला माना जाता है और यदि उसका अनुपालन न किया जाए तो समाज बिखर जाएगा। मानव जाति के सम्मान की रक्षा और उसके उन्नयन से ही समाज को बनाए रखा जा सकता है।"

— *न्यायमूर्ति श्री के. जी. बालाकृष्णन*

"भूमंडलीकरण की राजनीति ने पिछले तीन सौ साल से विकसित हो रही लोकतंत्र की प्रक्रिया को पूरी तरह उलटने का काम किया है। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर। जब हम राष्ट्रीय स्तर की बात करते हैं तो हमारा आशय यूरोप में 17वीं शताब्दी से विकसित हुई जनता की प्रभुसत्ता की उस अवधारणा से होता है जो आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था की जनक बनी। इसी का अंतरराष्ट्रीय पक्ष था राष्ट्रीय आजादी के आंदोलनों का जन्म और पश्चिमी देशों द्वारा गुलाम बनाए गए देशों में राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की स्थापना। भूमंडलीकरण जनता की दोनों तरह की प्रभुसत्ता को अप्रासंगिक बनाता जा रहा है।"

— *समाजवादी चिंतक सच्चिदानन्द सिन्हा*

मानव अधिकार मनुष्य के व्यक्तित्त्व एवं विकास से जुड़ी हुई संकल्पना है। इसलिए यह मनुष्य के जीने का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, समानता का अधिकार तथा

• उपाचार्य, दर्शन विभाग, बी. आर. अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

स्वतंत्रता का अधिकार जैसे उन अधिकारों की हिमायत करता है, जो उसे मनुष्य होने के नाते प्राप्त हैं। इसका उद्देश्य सभी देशों तथा वहां के नागरिकों को वह समान अवसर उपलब्ध कराना है, जिसके आधार पर वे अपना विकास कर सकें। डॉ० एस. सी. सिंघल के शब्दों में – "मानव अधिकारों का संबंध मनुष्यों के व्यक्तित्व व विकास से जुड़ा हुआ है। अतः इसका अभिप्राय विभिन्न राष्ट्रों को ऐसे अधिकार प्रदान करने से है जिसका कि उपयोग करके प्रत्येक राष्ट्र अपने विकास को गतिशील कर सकता है। वास्तविकता तो यह है कि मानव अधिकार प्राकृतिक अधिकार (Natural Rights) हैं।"[2]

यद्यपि तकनीकी तौर पर मानवाधिकार का व्यापक उद्घोष छः दशक पहले हुआ, परन्तु इसकी भावना के विकास का सूत्र 800 वर्ष पहले से जुड़ा हुआ है, ब्रिटेन के 'महान घोषणा–पत्र' में यह कहा गया कि 'किसी नागरिक को उस समय तक बंदी न बनाया जाए और न ही निर्वासित किया जाए, जब तक उसका अपराध सिद्ध न हो जाए।' यह घोषणा–पत्र 1215 में प्रकाशित हुआ और इसके साढ़े चार सौ साल बाद 1679 में ब्रिटेन में ही 'बंदी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम' पारित किया गया, जिसमें बिना अभियोग चलाए किसी भी व्यक्ति को नजरबंद नहीं रखने का प्रावधान किया गया। फिर इसके एक दशक बाद 1689 में जनता के प्रतिनिधियों को संसद में भाषण देने की स्वतंत्रता संबंधी 'अधिकार–पत्र' भी पारित कराया गया।

इसके लगभग एक शताब्दी बाद 1776 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी आजादी की घोषणा के साथ–साथ 'मानव अधिकारों की घोषणा' भी की और इसमें मानव अधिकारों का वर्णन करते हुए कहा – "हम इन सत्यों को स्वयं सिद्ध मानते हैं कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं, सभी मनुष्यों को ईश्वर ने कुछ ऐसे अधिकार प्रदान किए हैं जिन्हें छीना नहीं जा सकता और इन अधिकारों में जीवन, स्वतंत्रता तथा अपनी समृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहने के अधिकार भी सम्मिलित हैं।"[1]

फिर फ्रांस की क्रांति के बाद जब वहां गणतंत्र की स्थापना हुई तो व्यक्ति की आजादी के लिए स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व की घोषणा की गई, लोकतंत्र एवं लोक–प्रभुत्व के सिद्धांत का समर्थन किया गया, राष्ट्रीयता का सिद्धान्त दिया गया तथा संपत्ति की सुरक्षा, स्वतंत्रता, भाषण, लेख आदि नए अधिकारों की घोषणा की गई। इसके बाद बर्लिन कांग्रेस, ब्रुसेल्स सम्मेलन, हेग सम्मेलन आदि विभिन्न अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में सामूहिक रूप से मानव अधिकारों पर जोर दिया गया।

इसके बाद दूसरे महायुद्ध में जो भीषण संहार हुआ उसने भी मानवीय अधिकारों की अनिवार्यता प्रतिपादित की। इस अनिवार्यता को और अधिक शिद्दत से अटलांटिक

---

* बी. आर अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर के दर्शन विभाग में असोशिएट प्रोफेसर हैं।

चार्टर 1941 तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ घोषणा 1942 ने रेखांकित किया। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में समान अधिकारों तथा मानवीय मूल्यों आदि को मानव अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया। 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना में आए प्रतिनिधियों की मांग पर चार्टर में प्रस्तावना सहित अन्य पांच अनुच्छेदों – 1, 13, 55, 56, और 62 में मानव अधिकार संबंधी प्रावधानों का उल्लेख किया गया, परंतु चूंकि इन प्रावधानों में मानव अधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रताओं की व्याख्या किए बगैर संयुक्त राष्ट्र संघ का काम इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं को प्रोत्साहित करना तथा बढ़ाना मात्र माना गया, इसलिए इनके खिलाफ आवाज उठाने पर 'मानव–अधिकारों के लिए संयुक्त राष्ट्र आयोग' (United Nation Commission on Human Rights) को मानव अधिकार संधि–पत्र तथा सामान्य सिद्धांतों की घोषणा संबंधी दस्तावेज तैयार करने का दायित्त्व दिया गया। इस आयोग ने तीन सालों में मानव अधिकार संबंधी सार्वभौमिक घोषणा का मसौदा तैयार किया, जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में कुछ संशोधनों के साथ 10 दिसंबर 1948 को सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया।

इस प्रकार मानव अधिकार की अवधारणा का विकास ऐतिहासिक क्रम में विभिन्न घोषणा–पत्रों और अधिनियमों के द्वारा हुआ। लेकिन इसकी सार्वभौमिक घोषणा 10 दिसंबर 1948 को हुई। इस घोषणा–पत्र में मनुष्य के अधिकारों के लिए प्रस्तावना सहित 30 अनुच्छेदों वाला घोषणा–पत्र, जिसकी प्रस्तावना में 'मानव जाति की गरिमा और सम्मान तथा अधिकारों' पर जोर है, इसमें सामाजिक, राजनीतिक, नागरिक, आर्थिक, काम का अधिकार, समान वेतन का अधिकार, जीवन का अधिकार, ट्रेड यूनियनों, विचार, धर्म, शांतिपूर्ण सभाएँ करने एवं विश्राम, शिक्षा तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने जैसे अधिकारों के पालन हेतु नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों तथा सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित दो प्रसंविदायें भी तैयार करवाया, जिससे कि इन अधिकारों की और अधिक स्पष्ट व्याख्या एवं उनके पालन कराने की व्यवस्था हो सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा के दो दशक बाद 1968 में तेहरान में एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करते हुए इस वर्ष को अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार वर्ष घोषित किया तथा इसके ढाई दशक बाद 1993 में वियना में एक विश्व सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें समूची दुनिया में मानव अधिकार को बढ़ावा देने एवं उन्हें संरक्षण देने संबंधी महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव लिए गए। इसी वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने इसके लिए एक संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त के पद का गठन करके उसके जिम्मे सभी प्रकार के मानवाधिकारों को प्रोत्साहित करने एवं उन्हें संरक्षण देने का काम दिया।

इसके अतिरिक्त उच्चायुक्त का दायित्व मानव अधिकारों के क्रियान्वयन को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने हेतु संयुक्त राष्ट्र तंत्र द्वारा इन अधिकारों से संबंधित गतिविधियों को समान्वित करना और उसके अनुरूप व्यवस्थाएं निर्मित करना है। यह उच्चायुक्त महासचिव के निर्देशों के अनुसार कार्य करते हुए मानवाधिकार से जुड़ी हुई तमाम गतिविधियों पर अपनी दृष्टि रखता है।

मगर इतना कुछ होने के बावजूद सारी दुनिया में मानव अधिकार का व्यापक स्तर पर हनन हो रहा है, जिसकी पुष्टि एमनेस्टी इंटरनेशनल 1995 के रिपोर्ट से में किया है। पामर और पार्किन्स ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि संसार के कुछ ही हिस्सों में मानव अधिकार एवं आधारभूत स्वतंत्रताएं सुरक्षित हैं और ज्यादातर हिस्सों में अभी इनका कोई मतलब नहीं है। इसके पीछे एक तो किसी कानूनी एवं बाध्यकारी ताकत का नहीं होना है तो दूसरे कुछ अवधारणात्मक उपक्रमों का होना भी है। इसे प्रपंच ही कहा जाएगा कि मानवाधिकार की सुरक्षा के लिए जिन मुल्कों ने इतना कुछ किया, उन्हीं मुल्कों (ब्रिटेन आदि) ने सदियों दूसरे मुल्कों को गुलाम बनाए रखा और आज भी (अमेरिका) प्रकारान्तर से इस गुलामी को बनाए रखने का उपक्रम कर रहा है।

भूमंडलीकरण एक ऐसा ही उपक्रम है। यह निजी वजूद और वैयक्तिक गरिमा को अहमियत नहीं देने के कारण मानव अधिकार का हनन करने वाला है। इस 'भूमंडलीकरण' शब्द का पहला प्रयोग अमेरिकी पत्रिका 'इकॉनामिस्ट' के 04 अप्रैल, 1959 के अंक में इटली द्वारा आयोजित कारों के ग्लोब्लाइज्ड कोटा के लिए किया गया और बाद में सारे संसार पर प्रभाव डालने वाले किसी भी कार्य या घटना के रूप में इसकी व्याख्या की गई। इसलिए इस शब्द से यह मुगालता जरूर पैदा होता है कि यह समूची दुनिया के लिए कोई हितकारी व्यवस्था है; मगर वास्तव में ऐसा नहीं। इसकी दृष्टि पूरी तरह एक–आयामी है। यह मुकम्मल तौर पर एक आर्थिक प्रक्रिया है, जो व्यापार के लिए पूरी दुनिया को एक करना चाहती है और इसके पीछे उद्देश्य सिर्फ और सिर्फ मुनाफा कमाना है। डॉ0 एस. सी. सिंघल के शब्दों में – "वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण का अर्थ है – पूरे विश्व में एक केन्द्रीय व्यवस्था का होना। वैश्वीकरण विश्व में चारों ओर अर्थव्यवस्थाओं का बढ़ता हुआ एकीकरण है। यह एकीकरण प्रमुख रूप से व्यापार तथा वित्तीय प्रवाहों के माध्यम से होता है। घरेलू बाजार में जो बाजार शक्तियां क्रिया करती हैं, उन्हीं का राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर मुक्त रूप से विचरण करती हैं तथा अपने विस्तार के लिए सस्ते श्रम और सस्ते कच्चे माल की तलाश में रहती हैं।"

इस तलाश के पीछे पूंजीवाद है। पूंजीवाद शुरू से ही सारी दुनिया पर वर्चस्व

चाहता रहा है, लेकिन पूर्व की व्यापार–प्रणाली में देशी सरकारों का नियंत्रण होने के कारण यह संभव नहीं हो सका था। अब जबकि उन्मुक्त व्यापार के नाम पर यह नियंत्रण ढीला हो गया है, तब पूंजीवाद को अपना वर्चस्व जमाने का अनुकूल अवसर मिल गया है। इस अवसर के लिए प्रयास 19 वीं सदी से होता रहा है। एडम स्मिथ जैसे अर्थशास्त्रियों ने तभी बाजार, व्यापार, उद्योग तथा व्यवसाय आदि में सरकार को कोई हस्तक्षेप नहीं करने का विचार दिया था। उसी की नींव पर 20 वीं सदी में भूमंडलीकरण का महल खड़ा हुआ और उसकी ऊंची छत से ऐसा महाजाल फेंका गया कि 21 वीं सदी उसमें उलझ कर रह गयी है। यह महाजाल भूमंडलीकरण का है। अतः भूमंडलीकरण पूंजी वाद की सारे संसार पर वर्चस्व जमाने की योजना का कार्यान्वयन है।

इस कार्यान्वयन में तीन संस्थाएं – विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक तथा अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष लगी हुई हैं, जो अमेरिका के प्रयत्न से स्थापित होने के कारण, उसका हित साधने वाली हैं। अमेरिका ने इनकी स्थापना द्वितीय महायुद्ध के उपरांत अर्थव्यवस्थाओं के नष्ट हो जाने पर की। तब समाजवादी देश अपने अंतर्विरोधों के कारण कमजोर होकर इनकी खिलाफत करने की स्थिति में नहीं रहे थे। फलतः अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र संघ को भी अपने नियंत्रण में ले लिया। इन्हीं हालातों में पूंजीवाद को बगैर किसी प्रतिरोध के फैलने मा अवसर मिला और इसके लिए जो संरचना पैदा हुई वही भूमंडलीकरण कहलायी। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि भूमंडलीकरण अमेरिका के संरक्षण में चलने वाली पूंजीवादी फैलाव की परियोजना है। डॉ० प्रेमसिंह यह बात स्पष्ट शब्दों में कहते हैं – "विकसित देशों का अगुआ संयुक्त राज्य अमेरिका है, जो अपनी सरपरस्ती में चलने वाली विश्व बैंक व अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष जैसी वैश्विक आर्थिक संस्थाओं और बहुराष्ट्रीय कंपनियों (जिन्हें अब पार राष्ट्रीय कंपनियां भी कहा जाता है) की मार्फत वैश्वीकरण की मुहिम को अंजाम देता है।"

और यह अंजाम इसलिए सफल हुआ या हो रहा है क्योंकि पूंजीवाद ने भौतिकवादी विकास की एक एकांगी अवधारणा गढ़ दी है। इस अवधारणा के मुताबिक जो देश भौतिक रूप से अधिक समृद्ध है, भोग की वस्तुओं का अत्यधिक उत्पादन करता है। उनका अनियंत्रित उपभोग करता है वह देश विकसित है और जो ऐसा नहीं कर पाता वह विकासशील है और उसे भी विकसित होने के लिए विकसित देशों से कर्ज लेकर यही सब करना है। मगर जब कोई देश एक बार इस राह पर चले पड़ता है तो वह एक ऐसी उपभोक्तावादी संस्कृति की चपेट में आ जाता है जो भोग को ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य मानती है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसे फिर कर्ज लेना पड़ता है और इस प्रकार

वह विकसित देशों के चंगुल में फंस जाता है। फिर उसके लिए उससे निकलना असंभव हो जाता है। वह खोखला और जर्जर हो जाता है और उसकी आश्रितता विकसित देशों पर इतनी बढ़ जाती है कि वह प्रकारान्तर से गुलाम ही हो जाता है। इसीलिए सच्चिदानंद सिन्हा कहते हैं कि – "कुल मिलाकर भूमंडलीकरण की दिशा श्रमिकों की एकता के बिखराव, जनाधिकारों के क्षरण और लोक जीवन को विशाल बहुराष्ट्रीय कंपनियों के नियंत्रण में लाने की है।" यही बात प्रो० कमल नयन काबरा भी इस प्रकार कहते हैं – "बहुप्रचारित वैश्वीकरण किसी भी अर्थ में वैचारिक स्वतंत्रता, सृजनात्मकता तथा व्यापक जन भागीदारी पर आधारित लोकतंत्र–पोषक व्यवस्था नहीं है। वस्तुतः यह तो स्वयं एक खास किस्म की कूपमंडुकता, हठधर्मिता और वैचारिक दासता पर आधारित है, जो शोषण दोहन के अधिकार को महिमा मंडित तथा शाश्वत करने की मुहिम का हिस्सा है।[7]" इसी मुहिम के द्वारा अमीर देश गरीब देशों का शोषण करते हैं। वे अपने लाभ के लिए जो आर्थिक नीतियां तय करते हैं, उन्हें ही गरीब देशों को भी मानने के लिए बाध्य करते हैं। इस बाध्यता के कारण गरीब देशों और वहां के नागरिकों का निजी वजूद और वैयक्तिक गरिमा सुरक्षित तथा विकसित नहीं हो पाती। यह उनके मानवाधिकार का हनन है और यह हनन उन मुल्कों द्वारा किया जा रहा है जहां मानवाधिकार का केन्द्र है, जो मानवाधिकार के पुरजोर प्रवक्ता हैं, जिन्होंने मानव अधिकार का प्रसंविदा तैयार किया है।

इस प्रकार मानव अधिकार और भूमंडलीकरण के अंतर्संबंध की पड़ताल से यह साफ हो जाता है कि दोनों एक–दूसरे की विपरीत अवधारणाएं और उपक्रम हैं, इसलिए ये दोनों साथ–साथ नहीं चल सकते। यह तथ्य न्यायमूर्ति के. जी. बालाकष्णन के इस कथन से भी स्पष्ट होता है – वैश्वीकरण के कारण सरकारों और उनके नागरिकों के बीच संबंधों की पारंपरिक भूमिकाओं में बदलाव आ रहा है और यह सामाजिक–आर्थिक न्याय की प्राप्ति के लिए अनेक चुनौतियां पेश कर रहा है, चाहे वह विनाशकारी वित्तीय संकट के रूप में आवश्यक वस्तुओं के बढ़ते मूल्यों के रूप में हो या फिर विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय निकायों के बढ़ते प्रभाव के रूप में हो।[8] अतः मानवाधिकार और भूमंडलीकरण इन दोनों की एक साथ वकालत करने वाले मुल्कों अथवा व्यक्तियों को इस प्रपंच से मुक्त होना ही पड़ेगा। भूमंडलीकरण मानवाधिकार हनन की परियोजना है। इसलिए यदि इसका रथ यूं ही बेलगाम दौड़ता रहा तो मानवाधिकारों का हनन होता ही रहेगा।

संदर्भ :

1. लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश (संपादक – आचार्य रामचन्द्र वर्मा) पृ० – 542;

लोक भारती प्रकाशन, 15 – ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद – 1 : 1997

2. डॉ0 एस.सी. सिंघल; 'समकालीन राजनीतिक मुद्दे', पृ0 – 96; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, अनुपम प्लाजा, ब्लॉक नं0 50, संजय प्लेस, आगरा – 2; 2005–06

3. आजादी का घोषणा–पत्र; 04 जुलाई, 1776

4. वही, पृ0 – 85

5. डॉ0 प्रेम सिंह, "वैश्वीकरण का असली चेहरा," 'युवा संवाद, वर्ष–1, अंक 9, दिसंबर 2003, पृ0 – 10; 167–ए/जी.एच. – 2, पश्चिम विहार नई दिल्ली –63

6. सच्चिदानंद सिन्हा; 'भूमंडलीकरण की चुनौतियां', पृ0 –112; वाणी प्रकाशन 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली –110002; 2003

7. प्रो0 कमल नयन काबरा; 'बहुवचन', अंक–6,; महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, 16, दूसरी मंजिल, सीरीफोर्ट रोड, नई दिल्ली –110049

8. न्यायमूर्ति के. जी. बालाकृष्णन; "सपना समता मूलक समाज का", 'योजना', वर्ष – 55, अंक–4, अप्रैल 2011, पृ0 – 6; 538, योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली – 110001

***

लेख

अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं का स्वास्थ्य तथा मानव अधिकारों की रणनीति

• प्रो० (डॉ०) शिवदत्त शर्मा

प्रस्तावनाः– राष्ट्रपिता **महात्मा गाँधी** ने सुसंगत अभिव्यक्ति करते हुए कहा था, ''**सभी मानव प्राणी अविभाजित परिवार के समान सदस्य हैं, हम में से प्रत्येक, दूसरे व्यक्ति के प्रति अप्रिय कार्य किये जाने पर दायित्वाधीन हैं, मैं भी अपने को इस दुर्दम्य से दूर नहीं रख सकता हूँ।**''[1] इसी तरह शैक्षणिक दार्शनिक पद्धति में **बनार्ड** भी अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हुये कहते हैं, ''**हमारे सहयोगियों द्वारा अन्य सहयोगियों से घृणा करना गंभीरतम अपकार्य ही नहीं है, अपितु उनको पृथक समझना तथा पृथक करना, आवश्यक अमानवीय कार्य है।**''[2] विश्व के महान शैक्षिक दार्शनिकों की संबंधित अभिव्यक्ति का विवेचन विश्व की महिलाओं के स्वास्थ्य की प्रोन्नति और संरक्षा किये जाने के लिए किया जाना सम्यक प्रतीत होता है, क्योंकि पारस्परिक सहयोग, सहिष्णुता, वात्सल्य और प्रेम से ही प्रकृति में विचरण करने वाले विपरीत प्रभाव जटिलतम अन्याय है। समय के परिवर्तनोन्मुखी समय की मांग तथा अपेक्षा है कि समाज के सम्पूर्ण विकास के लिए महिलाओं का शारीरिक एवं मानसिक संरक्षा तथा उन्नति अति आवश्यक है।

मानव अधिकारों की वंचना ऐसे सांविधानिक प्रत्याभूतों से है जो ''दैहिक स्वतंत्रता और व्यक्ति की गरिमा को समाहित करते हैं, तथा इसको अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में स्थान प्राप्त है।'' विश्व राष्ट्रों के न्यायालयों द्वारा ऐसी प्रसंविदाओं को प्रवर्तनीय बनाया जाता है। स्वास्थ्य का अधिकार दैहिक संरक्षा और प्रोन्नति हेतु सर्वोच्च स्वरूप का महत्वपूर्ण संकल्पनात्मक मानव अधिकार है, क्योंकि मानव अधिकारों को विधिक उपबंधनों

• विधि संकाय, कुमाँऊ विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा, उत्तराखंड।

यंत्रों और उपकरणों तक सीमित तथा प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। ये अधिकार मानव को प्रकर्षति ने उपहार में प्रदान किए हैं, क्योंकि मानव प्रकृति की सन्तान होने के कारण प्रकर्षति का अंग है। इसलिए जनता के द्वारा निर्वाचित सरकारों का विधिक तथा प्राकर्षतिक दायित्त्व यह है कि, देश के निवासियों को उत्तम स्वास्थ्य उपलब्ध करायें। इस संबंध में **रवीन्द्रनाथ टैगोर** को उद्धृत किया जाना सम्यक तथा समीचीन प्रतीत होता है, उन्होंने कहा है, **''प्रकृति शिक्षक का भी गुरू है, यद्यपि प्रकृति व्याख्यान नहीं देती है, श्यामपट पर लिख नहीं सकती है, तथापि प्रकृति मानव के शरीर तथा विचारों को चौबीसों घण्टे प्रभावित करती है''।** परिणामतः प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः यह अपेक्षा करता है, कि उसका स्वास्थ्य उत्तम तथा संरक्षित किया जाना प्रत्येक मानव प्राणी का दायित्व है।

विधि के शासन में सांविधानिक लोकतन्त्र सर्वोच्च और प्रभुसम्पन्नात्मक होता है, इसीलिए विधि के अनुसार ही शासन संचालित किया जाता है। स्वास्थ्य संरक्षा और प्रोन्नति के लिए विधि के उपबंधों की आवश्यकता होती है क्योंकि विधि ही सर्वोच्च है, इस संबंध में **डॉ0 थॉमस फुलर** का मत सही प्रतीत होता है कि **''कोई भी व्यक्ति कितना ही बड़ा क्यों न हो, विधि उस व्यक्ति से भी उच्च है''।**[3] इस मत से यह अभिप्राय लगाना सम्यक प्रतीत होता है कि स्वास्थ्य संरक्षा के लिए प्राकृतिक उपायों को विधि में समाहित किया जाना चाहिए। **स्वामी विवेकानन्द** ने भी व्यक्ति के दायित्त्व को प्रकृति के नियमों पर आधारित मानते हुये लोकोपयोगी कार्य किये जाने की ओर संकेत करते हुए कहा है, **''प्रकृति में जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है कि वह मानवता के कल्याण के लिए कार्य करें।** महिलाओं के स्वास्थ्य संरक्षा प्राकृतिक तथा सामाजिक मर्यादाओं और व्यवहारिकता के अनुसार सम्पूर्ण परिवार के लिए आवश्यक है। इसलिए स्वास्थ्य संरक्षा मानव अधिकारों को विशिष्ट भाग है। इस संदर्भ में **माइकिल डोगल्स** ने कहा है, **''प्रत्येक के लिए मानव अधिकार अति आवश्यक है, इन्हीं नींव पर हम विश्व को खड़ा कर सकते हैं,** जहाँ पर **प्रत्येक व्यक्ति शान्ति, सुख, समृद्धि और स्वच्छन्दता से निवास कर सकता है।''**

महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी दार्शनिक पहलुओं की पृष्टभूमि :- महिलाओं का स्वास्थ्य का अधिकार मानव अधिकार होने के कारण महिला के अन्तर्निहित गरिमा, समता और अहस्तान्तरणीय अधिकार है। इस अधिकार की उपयोगिता ''मूलभूत स्वतंत्रताओं के रूप में समाज की प्रोन्नति और उत्तम जीवन के लिए आवश्यक है। महिला स्वास्थ्य का मानव अधिकार आर्थिक, सांस्कृतिक, भोजन, आवास, शुद्ध वातावरण और उचित कार्य के लिए अनिवार्य है''। इन सभी अधिकारों को सुदृढ़ एवं संरक्षित किए जाने

के लिए स्वास्थ्य की देख–भाल अति आवश्यक है। इससे महिला की आयु में बढ़ोत्तरी होगी। महिला का उत्तम स्वास्थ्य, सुदृढ़ और स्वस्थ शिशु के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह कहने में भी अतिश्योक्ति नहीं होगी कि महिला के उत्तम स्वास्थ्य के कारण ही न्याय, साम्या और बन्धुता की नींव प्रबल होती है।

महिला के स्वास्थ्य अधिकार को मानव अधिकार के रूप में मान्यता दिया जाना महिला की गरिमा, विकास, भौतिक योगिता, स्वतंत्रता, शान्ति और न्याय हेतु सराहनीय कार्य है। इसके लिए विधि का सृजन किए जाने का दायित्व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ का है। इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव **बान की मून** को उद्धृत किया जाना सार्थक प्रतीत होता है, उन्होंने कहा है, "**मानव अधिकार स्वतंत्रता, शान्ति, विकास और न्याय के आधार स्तम्भ हैं। विधि के द्वारा मानव अधिकारों को संरक्षित और सुरक्षित किया जाना चाहिए।**"[4] उन्होंने महिलाओं के मानव अधिकारों पर विशेष बल देते हुए कहा है, महिलाओं के कार्य जोखिम युक्त हैं, उन्हें कार्यस्थलों पर कठिनाई होती है, कुछ देशों में उन्हें कष्ट पहुँचाया जाता है, पीटा जाता है और हत्या भी कर दी जाती है। उनके परिवार के सदस्यों, मित्रों का भी उत्पीड़न और अपमान होता है। महिला मानव अधिकारों का बचाव करने वालों को अतिरिक्त खतरा है, इसलिए उन्हें अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता है"।[5]

स्वास्थ्य का संकल्पनात्मक विचार :– स्वास्थ्य का अर्थ व्यक्ति के शरीर तथा मानसिकता का स्वस्थ होना है। इसके लिए स्वच्छ वातावरण की आवश्यकता होती है। स्वस्थ स्वास्थ्य का भावार्थ समस्त बीमारियों अथवा उपहतियों से उन्मुक्त रहना है।[6] स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) के द्वारा दी गई परिभाषा का उद्धरण उचित प्रतीत होता है। इसमें कहा गया है, "स्वास्थ्य का संबंध सम्पूर्ण रूप से शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ रहने से है, स्वास्थ्य केवल शारीरिक असमर्थता अथवा रोग मुक्त से ही संबंधित नहीं है। स्वास्थ्य का वास्तविक अर्थ "स्वास्थ्य के सर्वोच्च मापदण्डों का उपभोग किए जाने से है, स्वास्थ्य प्रत्येक मानव प्राणी का मानव अधिकार है, इसका उपयोग जाति, राजनैतिक विश्वास, आर्थिक और सामाजिक दशाओं के भेद–भाव के बिना किया जाना चाहिए।"[7] मानसिक और शारीरिक स्वरूप के उत्तम स्वास्थ्य की अनिवार्यता व्यक्तित्व के विकास के लिए अपरिहार्य है।

स्वस्थ और उत्तम स्वास्थ्य, आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक जीविकोपार्जन, भवन निर्माण, भोजन ग्रहण, स्वच्छ वातावरण, समुचित कार्य की शर्तें और विभिन्न स्वतंत्रताओं का उपभोग उदाहरणार्थ–प्रसन्न रहने का अधिकार, समता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, संरक्षा का अधिकार, किसी भी धर्म का अनुपालन और संघ का गठन,

सामाजिक संरक्षा, मानवीय तथा उपयुक्त व्यवहार का अधिकार, अभिरक्षा और कारावास में सभ्यता का अधिकार, निष्पक्ष और त्वरित न्याय अधिकार और समाज में किसी भी परिस्थितियों में मानव अधिकारों की संरक्षा के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करता है। स्वस्थ स्वास्थ्य सदैव स्वस्थ विचारों का सज्जन करता है। इसलिए यह कहना उचित और सम्यक प्रतीत होता है कि विशेषतः महिलाओं का उत्तम स्वास्थ्य समाज की समृद्धि है। उत्तम स्वास्थ्य से प्रचुर धन, सम्पत्ति, शिक्षा, बुद्धि, जीवन महानतम अनुभव और रोजगार प्राप्त होता है।

उत्तम स्वास्थ्य को बनाना प्रत्येक व्यक्ति को बाल्यावस्था से ही प्रारम्भ करना चाहिए। इसके लिए शारीरिक सक्रियता की आवश्यकता होती है, यदि शारीरिक सक्रियता में किसी भी प्रकार की कमी आ जाती है, तो शारीरिक मोटापे में बढ़ोत्तरी हो जाती है, जो शरीर के लिए घातक सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार की समस्या केवल एशिया में ही नहीं है, अपितु यह समस्या यूरोप, उत्तरी अमेरिका में भी है, परन्तु ऐसी समस्या चीन और जापान में विकराल नहीं है। फलतः उत्तम स्वास्थ्य के लिए शारीरिक व्यायाम एवं सक्रियता अति आवश्यक है।

महिलाओं के स्वास्थ्य संरक्षा में अन्तरराष्ट्रीय विधिक उपकरण :– अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के स्वास्थ्य संरक्षा और प्रोन्नति के लिए विधिक उपबंधों का उल्लेख प्रसंविदाओं, घोषणाओं, संधियों, अभिसमयों और करारों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा सृजित की गई नीतियों, कार्यक्रमों और निर्देशों में मिलता है। इनका समुचित उल्लेख निम्नानुसार किया जा सकता है।

(क) मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा :– महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी मानव अधिकारों के उपबंधों का उल्लेख करने से पूर्व यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर 10 दिसम्बर, 1948 को घोषित मानव अधिकार सभी मानवों के उन्नति, समृद्धि, गरिमा, समता, शिक्षा, सहयोग, सौहार्द, संरक्षा और अन्याय के लिए समान अवसर प्रदान किए जाने के साधन हैं। यद्यपि मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणाओं में उल्लिखित उपादान मात्र निदेशात्मक हैं, तथापि इनका अनुपालन विश्व के समस्त देशों द्वारा जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म राजनैतिक अथवा अन्य विचारधारा राष्ट्रीय अथवा सामाजिक उद्भव, संपत्ति, जन्म या अन्य प्रास्थिति के भेद–भाव के बिना किया जाता है। अनुच्छेद 2 में उल्लेख किया गया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता के बिना कोई भी राष्ट्र चाहे वह स्वतंत्र हो अथवा परतंत्र या किसी भी संप्रभु के अधीन हो, उस राष्ट्र की कोई भी विचारधारा हो, अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उसकी कोई भी प्रास्थिति हो और उसका किसी भी प्रकार का क्षेत्राधिकार हो, वह मानव अधिकारों के

सार्वभौमिक घोषणाओं का अनुपालन अथवा उनको प्रवर्तन कर सकता है।[8] ऐसे देश जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य हैं, यदि उनके द्वारा संबंधित घोषणाओं का अनुपालन नहीं किया जाता है, तो संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में अनुच्छेद 15(1) के प्रावधान के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा को पर्यवेक्षक की शक्ति प्राप्त है। जिसके अर्न्तगत संबंधित सदस्य देशों की वार्षिक रिपोर्ट तैयार की जाती है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणाओं के अनुपालन हेतु सशक्त शक्ति का प्रयोग भी अप्रत्यक्षतः करता है।[9] इस प्रकार मानव अधिकारों से संबंधित संयुक्त राष्ट्र की घोषणायें सरल, सुगम और समाजोत्थान संबंधी लोककल्याणकारी बहुमुखी घोषणायें हैं। इन घोषणाओं की सार्थकता के संबंध में **जॉनसन** के दर्शन का उल्लेख तर्कसंगत प्रतीत होता है, उन्होंने कहा है, विधि सामाजिक संस्था है, समाज व्यक्तियों का स्थाई संगठन है। समाज का सृजन– (अ) क्षेत्र (ब) शाश्वतता (स) स्वतंत्रता (द) समाज की संस्कृति कला, दर्शन, विधि, नैतिकता, धर्म, साजसज्जा और विचारधारा से होता है।[10] इसी तरह **लार्ड राइट** ने भी कहा है, **''विधि का उद्देश्य बाह्य वस्तुओं के साथ व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करना है''।**[11]

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 25 (1) में कहा गया है, ''प्रत्येक व्यक्ति को अपने तथा अपने परिवार की भलाई के लिए और समुचित स्वास्थ्य के माप दण्डों में रहने, जिसमें भोजन, कपड़ा, मकान, चिकित्सा संरक्षा और बेरोजगारी की स्थिति में, बीमारी में, निःशक्तता में, विधवा होने पर, वृद्धावस्था या नियंत्रण से बाह्य जीविकोपार्जन की कमी में सामाजिक संरक्षा का अधिकार प्राप्त है''। यह उपबंध प्रत्यक्षतः समस्त मानवों को निरोग्य रहने तथा स्वास्थ्य संरक्षा का अधिकार प्रदत्त करता है। यह उपबंध महिलाओं को भी स्वास्थ्य संरक्षा का अधिकार देता है, क्योंकि मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणायें जाति, भाषा, लिंग, जन्मस्थान, राजनैतिक विचारधारा के मतभेद के भेद–भाव के बिना सभी को समान रूप से प्राप्त हैं।[12]

उपरोक्त प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य के अधिकार के अतिरिक्त महिलाओं संबंधी मातृत्व का स्वास्थ्य का अधिकार का उल्लेख अनुच्छेद 25 (2) में स्पष्टतः किया गया है, इसमें कहा गया है, मातृत्व और शैशवावस्था विशेष देखभाल और सहायता के लिए अधिकृत है। सभी बच्चे जो औरस अथवा अविधिक विवाह के माता–पिता से पैदा हुए हों, बराबर रूप से सामाजिक संरक्षा प्राप्त करेंगे।'' संबंधित अन्तरराष्ट्रीय विधि का उपबंध महिला को प्रजनन स्वास्थ्य संरक्षा संबंधी मानव अधिकार प्रदान करता है। इसमें महिला के गर्भवती रहने तथा प्रसव काल की समाप्ति के पश्चात स्वयं तथा शिशु की देख–रेख करने के लिए सामाजिक संरक्षा का अधिकार प्रदत्त करता है।

(ख) सिविल और राजनैतिक अन्तरराश्ट्रीय प्रसंविदा में महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी अधिकार :— प्रसंविदा में उपबंधित मानव स्वतंत्रतायें और अधिकार मानव के परिवार के सदस्यों को अन्तर्निहित गरिमा, समता और अहस्तान्तरणीय अधिकार प्रदान करते हैं। ये विश्व शान्ति और न्याय की नींव हैं। इन अधिकारों को मानव की गरिमा से लिया गया है, संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अन्तर्गत इनकी प्रतिपूर्ति करने का दायित्व सार्वभौमिक सम्मान, मानव अधिकारों और स्वतंत्रताओं का अनुपालन किये जाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का है। प्रसंविदा में एक व्यक्ति का कर्त्तव्य दूसरे व्यक्ति और समाज के अन्य व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं की प्रौन्नति तथा संरक्षा करने का है।[13] प्रसंविदा के समस्त उपबंध सभी मानव प्राणियों को किसी भी प्रकार के भेदभाव, उदाहरणार्थ जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक और अन्य विचार राष्ट्रीय अथवा सामाजिक उद्‌भव, सम्पत्ति, जन्म और अन्य प्रास्थिति के प्राप्त हैं।[14] इस उपबंध की साधारण व्याख्या यह है कि समस्त उपबंध महिला और पुरुषों को समान रूप से प्राप्त हैं। इस प्रकार की व्यवस्था अनुच्छेद 3 में भी की गई है।

प्रसंविदा में प्रत्यक्षतः स्वास्थ्य संरक्षा और सुरक्षा के लिए प्रत्यक्षतः कोई उपबंध नहीं है, लेकिन स्वास्थ्य सुरक्षा और संरक्षा दैहिक जीवन के लिए आवश्यक है, इसलिए अनुच्छेद 6 (1) में कहा गया है "प्रत्येक व्यक्ति को दैहिकता का अन्तर्निहित अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार की संरक्षा विधि द्वारा की जायेगी, किसी को भी मनमानी तरीके से इस अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा।" मानव के दैहिक संरक्षा के लिए चिकित्सा सहायता, स्वास्थ्य सुविधा, पौष्टिक आहार स्वच्छ और अनुकूल वातावरण और आवास परम आवश्यक है। फलतः अनुच्छेद 6 (1) में उल्लिखित दैहिक अधिकार स्वास्थ्य के अधिकार को भी सम्मिलित करता है।

(ग) महिलाओं के स्वास्थ्य अधिकार का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा में व्याप्ति :— प्रसंविदा में उल्लिखित समस्त अधिकार महिला तथा पुरुष दोनों को समान रूप से प्राप्त हैं।[15] अनुच्छेद 12 में उपबंधित किया गया है "प्रसंविदा के राज्य पक्षकार प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के सर्वोच्च लाभ प्राप्ति के मापदण्ड का उपभोग करने के अधिकार को मान्यता देंगे।" अनुच्छेद 12 (2) में उल्लेख किया गया है राज्य पक्षकार स्वास्थ्य के अधिकार को लागू करने के लिए कार्यवाही सुनिश्चित करेंगे, जिसमें जन्म दर और शिशु मृत्युदर को कम करना, पर्यावरण और औद्योगिक स्वास्थ्य में सुधार महामारी, स्थानिकमारी, व्यवसायिक तथा अन्य बीमारी का उपचार और प्रतिषेध सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त राज्य पक्षकारों का यह भी दायित्व है कि बीमारी की घटना में चिकित्सा सेवा उपलब्ध कराएँगे।

उपरोक्त उपबंध महिलाओं के प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य संरक्षा का विधिक उपादान है क्योंकि इसमें उपबंधित किया गया है कि राज्य पक्षकारों का दायित्व होगा वह जन्मदर तथा शिशु मृत्युदर को कम करेंगे, जिससे महिला तथा शिशु का उत्तम स्वास्थ्य रहेगा और उत्तम स्वास्थ्य सुदृढ़ समाज का सष्जन करेगा।

(घ) महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव का समापन संबंधी अभिसमय में महिलाओं के स्वास्थ्य संरक्षा संबंधी उपबंध :– विशेषतः संबंधित अभिसमय द्वारा महिलाओं की उन्नति में बाधक सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करना है। अभिसमय की प्रस्तावना में कहा गया है महिला और पुरुषों को पूर्ण समानता प्रदान करने के सहयोग के लिए अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा, अंतरराष्ट्रीय तनाव को कम करना, पूर्ण रूप से निःशस्त्रीकरण, न्याय, समानता और देशों के पारस्परिक संबंधों का लाभ, देशों की स्वतंत्रता और सम्प्रभुता का सम्मान, सामाजिक उन्नति और विकास का प्रसार करना सभी राज्यों का दायित्व है।[6]

अभिसमय का अनुच्छेद 11 (1) (च) और अनुच्छेद 12 प्रत्यक्षतः महिलाओं के स्वास्थ्य से संबंधित है। अनुच्छेद 11 (1) उपबंधित किया गया है, राज्य पक्षकार महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिए जाने के लिए नियोजन में महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने के समुचित उपाय करेंगे। अनुच्छेद 11 (1) (च) में कहा गया है "महिलाओं का कार्यस्थल में संरक्षा, स्वास्थ्य के समुचित उपाय, प्रजनन के संबंधी उपादानों की व्यवस्था का दायित्व राज्य पक्षकारों का होगा। अनुच्छेद 11 (2) में स्पष्टतः बताया गया है कि "महिलाओं के विरूद्ध विवाह अथवा प्रसव के आधार पर विभेद समाप्त करने के लिए राज्य पक्षकार समुचित उपाय करेंगे – (क) गर्भवती प्रसूति अवकाश और विवाह की प्रास्थिति के आधार पर दण्ड देने का प्रतिषेध, (ख) वरिष्ठता, नियोजन का लाभ, वेतन, भत्ते और सामाजिक लाभ को प्रभावित किए बिना प्रसूति अवकाश को लागू करना, (ग) सामाजिक दायित्व, पारिवारिक दायित्व और कार्य का निर्वहन करने के लिए शिशु के विकास हेतु शिशु देखभाल सुविधा की व्यवस्था, (घ) कार्यस्थल में गर्भवती महिलाओं को होने वाले हानि के लिए उपयुक्त सुरक्षा की व्यवस्था आदि। अनुच्छेद 11 (3) में उपबंध किया गया है उपरोक्त उपायों के विधिक प्रावधानों में वैज्ञानिक और तकनीकि ज्ञान के सापेक्ष समय–समय पर आवश्यकतानुसार पुनरीक्षण, निरसन अथवा विस्तार किया जाएगा।"

(ङ) बाल अधिकार अभिसमय में महिलाओं के स्वास्थ्य संरक्षा की व्यवस्था :– यद्यपि बाल अधिकार अभिसमय में बालकों के विभिन्न अधिकारों का उपबंध किया गया है, तथापि बालकों के स्वास्थ्य संबंधी अधिकार की संरक्षा के साथ ही शिशु के

स्वास्थ्य की भी व्यवस्था की गयी है तथा बालिकाओं के अधिकारों की संरक्षा का भी विवेचन संबंधित अभिसमय में किया गया है।[17] अभिसमय की उद्देशिका में कहा गया है, "संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में मान्यता प्राप्त स्वतंत्रताएं, न्याय और शक्ति के लक्ष्य की प्राप्ति, मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, सिविल और राजनैतिक अधिकार अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा तथा आर्थक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा में उल्लिखित बच्चों की विशेष देखभाल सहायता, विकास, गरिमा, शांति, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, समता और एकान्तता और जनेवा घोषणा 1924 तथा बालकों के अधिकारों की घोषणा 1959 के अनुपालन में प्रत्येक देश में विशेषकर विकासशील देश में बच्चों के रहन–सहन की स्थिति में सुधार के लिए सभी पक्षकार राज्य अभिसमय में उल्लेखित अधिकारों के अनुपालन का करार है।[18]"

अभिसमय का अनुच्छेद 24 बच्चों तथा माता के स्वास्थ्य संबंधी व्यवस्था का उल्लेख करता है।[19] इसमें कहा गया है, राज्य पक्षकार स्वास्थ्य का अधिकार प्रदत्त करने का प्रयास करेंगे। बालकों के स्वास्थ्य के लिए पोषाहार प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, बच्चों के जन्म के पूर्व और बाद में माताओं की नियमित स्वास्थ्य जांच, हानिकारक परंपराओं की समाप्ति, भ्रूण हत्या और शिशु मृत्युदर को समाप्त करने की कार्यवाही पक्षकार सुनिश्चित करेंगे।[20] विशेषतः अनुच्छेद 24 (2) (घ) महिलाओं को माता के रूप में स्वास्थ्य देखभाल की व्यवस्था की गई है। संबंधित विधिक व्यवस्था में उपबंधित है "माता के प्रसव से पूर्व तथा प्रसव के पश्चात् समुचित स्वास्थ्य देखभाल सुनिश्चित किया जाएगा।"[21] अनुच्छेद 25 में यह उपबंध है कि जहां किसी सक्षम प्राधिकारी को बालकों अथवा बालिकाओं के देखभाल, संरक्षा या उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की देखभाल के लिए रखा हुआ है, वहाँ राज्य पक्षकार उनकी पाक्षिक जांच करायेंगे।

अधिगम, निष्कर्ष और सुझाव :– समाज का समग्र विकास महिलाओं के सभी प्रकार के विकास पर आधारित है जिसमें महिलाओं का शारीरिक तथा मानसिक तंदुरूस्ती भी सम्मिलित है। इसके लिए बाल विवाह प्रतिषेध, गर्भ जांच प्रतिषेध, समुचित चिकित्सा और महिलाओं की सभी प्रकार की देखभाल की आवश्यकता है। महिला स्वास्थ्य संरक्षा के लिए बाल विवाहों पर संपूर्ण प्रतिबंध लगाना चाहिए। बाल विवाह को विधि में संशोधन करके शून्य घोषित किया जाना चाहिए।

महिलाओं के विरूद्ध होने वाले समस्त अपराधों की रोकथाम के लिए सजगता से कार्य किया जाना चाहिए, क्योंकि अपराध महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रभाव तो डालते हैं, साथ ही अपराध के कारण महिलाओं की संरक्षा को भी खतरा होता है। महिलाओं के विरूद्ध होने वाले आंकड़ों में प्रतिवर्ष बढ़ोत्तरी हो रही है, एक सर्वे के अनुसार बलात्कार

के मामले 22,000, अपहरण के मामले 28,000, दहेज हत्या 9,000, छेड़छाड़ के मामले 39,000 और घरेलू हिंसा के 90,000 मामले प्रकाश में आए हैं।[2]

यह भी पाया गया है कि वेश्यावृति में रत् कर्मकारों के स्वास्थ्य में गंभीर गिरावट आ रही है, एच. आई. वी. के सकारात्मक मामले प्रकाश में आ रहे हैं, इसलिए वेश्यावृत्ति के कर्मकारों की संरक्षा परम आवश्यक है। प्रो0 प्रभा देसाई सनमित्रा न्यास मुम्बई में वेश्यावृत्ति के कर्मकारों की स्थिति पर कार्य कर रही हैं। उन्होंने कहा, वेश्यावृत्ति में लगी हुई महिलाओं की स्थिति की सुधार के लिए सरकार द्वारा विशेष नीति निर्धारित की जानी चाहिए, जिससे उनकी दशा में सुधार होगा और बच्चों को वेश्यावृत्ति के व्यवसाय में नहीं लगाएंगे।[3]

निःशक्त महिलाओं की कठिनाई को विशेष रूप से दृष्टि में रखते हुए उनके स्वास्थ्य सुधार की कार्यवाही सुनिश्चित की जानी चाहिए। मानसिक रूप से विकृत महिलाएं सहजभेद की श्रेणी में आती हैं, क्योंकि उनकी सीमित समझ के कारण समाज उनके साथ भेदभाव की नीति, हिंसा और गरीबी के लिए प्रयासरत रहता है। जिसके कारण ऐसी महिलाएं सामाजिक संरक्षा से वंचित हो जाती है। इसलिए निःशक्त महिलाओं के स्वास्थ्य संरक्षा के लिए विशेष उपाय किए जाने चाहिए। उनकी गरिमा और अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिए।

गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य को उत्तम बनाए रखने तथा गर्भ में पल रहे भ्रूण के सर्वोच्च विकास के लिए महिलाओं को पौष्टिक आहार दिया जाना चाहिए। यदि गर्भवती महिला को पौष्टिक आहार प्राप्त नहीं हो पाता है, तो समय से पूर्व बच्चे के जन्म की संभावना बढ़ जाती है। समय पूर्व बच्चे का जन्म माता तथा बच्चे दोनों के लिए अत्यधिक हानिकारक है। इस संबंध में चिकित्सीय राय यह है कि यदि शिशु का जन्म समय पूर्व होता है तो उसकी बढ़ोतरी नहीं हो पाती है तथा उसमें अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए स्वस्थ एवं समय पर शिशु के जन्म के लिए माता के स्वास्थ्य की समय–समय पर जांच की जानी चाहिए। महिला के रक्तचाप को नियंत्रित रखना चाहिए, क्योंकि उच्च रक्तचाप गर्भ में पल रहे बच्चे के साथ माता के लिए भी खतरनाक होता है। इसके अतिरिक्त गर्भवती महिला को आइरन, कैलसियम, विटामिन ए तथा अन्य प्रकार के पौष्टिक आहार नियमित रूप से दिए जाने चाहिए। प्रसव के उपरांत भी माता के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जाना परम आवश्यक है।

यह भी कहना उपयुक्त, समीचीन और उचित प्रतीत होता है कि महिलाओं को स्वास्थ्यवर्द्धक संतुलित आहार ही ग्रहण करना चाहिए, हानिकारक "त्वरित आहार" (फास्ट

फूड) ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति चाहे महिला अथवा पुरूष द्वारा तम्बाकू अथवा किसी भी प्रकार के नशीली वस्तुओं का सेवन किया जाता है, तो वह स्वास्थ्य के लिए गंभीर रूप से हानिकारक होती हैं, जिससे रक्तचाप में बढ़ोत्तरी हो जाती है, जिससे ह्रदय रोग का खतरा बढ़ जाता है। इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार नशीले पदार्थों के उपभोग से शत–प्रतिशत ह्रदय धमनी संबंधी रोग होते हैं। विकसित देशों में एक तिहाई रोग नशीले पदार्थों के कारण हैं। विकासशील देशों उदाहरणार्थ चीन और अफ्रीका आदि में इस प्रकार का खतरा अत्यधिक है। इन देशों में उक्त रक्तचाप, ह्रदय धमनी की बीमारी का खतरा तम्बाकू तथा नशीले पदार्थों के सेवन के कारण अत्यधिक है। इस प्रकार के उच्च खतरे को धुम्रपान निषेध, रक्तचाप में नियंत्रित करके और चर्बी आदि में कमी करके ही किया जा सकता है। इसके लिए संतुलित पौष्टिक आहार और शारीरिक सक्रियता के रूप में व्यायाम अत्यधिक आवश्यक है। बाल्यावस्था से ही खानपान मेंअत्यधिक ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। शारीरिक व्यायाम के अभाव में विशेषतः बालिकाओं में मोटापे की वृद्धि होने लगती है, जिससे यौवनावस्था की की प्राप्ति होते ही अनेक प्रकार के स्वास्थ्य संबंधी खतरों में बढ़ोत्तरी हो जाती है। इस प्रकार की स्थिति यूरोप, उत्तरी अमेरिका, चीन और जापान में विशेष रूप से देखने को मिलती है।[24]

विश्व स्वास्थ्य संगठन का भी सुझाव है कि बचपन से ही बच्चों को स्वास्थ्यवर्द्धक जीवन शैली के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए, इस प्रकार की शैली के अंतर्गत आहार और व्यायाम सम्मिलित हैं, जिससे किसी भी प्रकार की खतरनाक बीमारी से बचा जा सकता है।[25]

महिला कर्मकारों के स्वास्थ्य संरक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के कारगार उपायों की आवश्यकता है। समय–समय पर चिकित्सा जाँच के अतिरिक्त उत्तम स्वास्थ्य के लिए चिकित्सा उपचार, दिन के समय में खाने हेतु उचित व्यवस्था तथा भोजनावकाश आदि अनेक प्रकार की सुविधाओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इस संबंध में महात्मा गांधी की उक्ति को उद्धृत करना सम्यक होगा। उन्होंने कहा है **"मेरा विश्वास है स्वतंत्र भारत, विश्व में बढ़ते हुए अत्याचारों में अपने कर्त्तव्य का निष्पादन साधारण लेकिन उदात्त जीवनशैली के द्वारा कर सकता है, इसके लिए उसे अपने हजारों कुटीर उद्योगों का सृजन करते हुए विश्व शांति की कामना करनी होगी। सभी प्रकार की शालीनता आदर्श रहन–सहन से ही संभव है।"** इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की जीवनशैली उच्च और समुचित स्वास्थ्य के लिए सर्वोच्च आधार है।

मानव अधिकार के परिप्रेक्ष्य में मानसिक स्वास्थ्य

• प्रोफेसर यादे लाल टेखरे

मानसिक स्वास्थ्य किसी भी व्यक्ति के पूर्ण स्वास्थ्य का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। प्राचीन काल से ही इस बात का अनुभव किया जाता रहा है कि चिकित्सकीय आयाम के अतिरिक्त दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक और सदाचार के आधार भी नितांत आवश्यक है। सन् 1948 की सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा में मूल मानव अधिकार के रूप में सभी व्यक्तियों को जीवन जीने के समान अधिकार प्राप्त हैं, जिसमें किसी भी प्रकार की अशक्तता को भी शामिल किया गया है। आज हम नाना प्रकार के मानसिक विकारों से ग्रसित हो रहे हैं, इसके अनेक कारण हो सकते हैं– घर का वातावरण, अन्यान्य प्रकार की हिंसा, भेदभाव, अत्यंत महत्त्वाकांक्षी होना, घोर निराशा, मानसिक आघात, व्यापार और सामाजिक सफलता में विफल होना, इत्यादि। मानसिक अस्वस्थता लोक स्वास्थ्य की मुख्य समस्या है, मानसिक स्वास्थ्य नहीं है। मानसिक रुग्णता आर्थिक उत्पादन, स्वस्थ सामाजिक संबंध और समग्र जीवन को बुरी तरह प्रभावित करती है। जेनेटिक–वंश परम्परा और भौतिक सामाजिक वातावरण मानसिक बीमारी को गंभीर बनाते हैं। गंभीर मानसिक विकारों में मुख्य रूप से सिजोफ्रेनिया, बाईपोलर विकार, आर्गेनिक साइकोशिस और गहन अवसाद से हमारे देश में एक हजार की जनसंख्या में लगभग 20 व्यक्ति पीड़ित होते हैं। समग्र जनसंख्या में यह आंकड़ा 5 करोड़ के आसपास है, इनमें से 5 प्रतिशत को तो तत्काल मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता है। परन्तु यह भी सच है कि 80 प्रतिशत जिलों में एक भी मनोचिकित्सक नहीं है। इस विशाल जनसंख्या के लिए निरन्तर इलाज और नियमित अनुवर्ती ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारे देश में बहुतायत लोग मानसिक रोगी हैं, जिनमें महिलाओं की संख्या अधिक है, इसी प्रकार बच्चों की मानसिक दशा भी एक गंभीर समस्या है। घरेलू हिंसा और परिजनों का तिरस्कार महिलाओं और बच्चों में मानसिक रोगों को जन्म देने में काफी हद तक जिम्मेदार हैं।

• पूर्व निदेशक (अनुसंधान), राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

जिन महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार की घरेलू हिंसा होती है उनमें आत्महत्या करने की संभावना लगभग 5 गुना बढ़ जाती है।

अभी तक की जानकारी है कि चिकित्सा विज्ञान के अनुसंधान संतोषजनक नहीं हैं। हमारा यह भी अनुभव है कि मानसिक रोगों के इलाज और प्रबंधन की ओर समुचित ध्यान नहीं दे पा रहे हैं। कदाचित, इसके लिए सरकार समाज और हम सभी उत्तरदायी हैं। हमारे देश में जितने भी बड़े–बड़े मानसिक रोगों के संस्थान है, वे प्रारंम्भ में Mental Asylum अर्थात् आश्रय स्थल या मानसिक अरोग्यशाला के नाम से ही जाने जाते थे। जिन्हें परिमार्जित कर आज अस्पताल का स्वरुप दिया जा रहा है।

- मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान और सामान्य स्वास्थ्य देखभाल में कुशलता और सामाजिक विकास में बढ़ावा देना। और
- मानसिक स्वास्थ्य सेवा विकास में सामुदायिक भागीदारी और समुदाय में स्वयं–मदद (Self Help) को बढ़ावा देना।

यह बात सराहनीय है कि पिछले दो दशकों से और हाल ही के कुछ वर्षों में देश भर के मानसिक चिकित्सालयों की दशा और गुणवत्ता में आंशिक सुधार देखने को मिला है। इसका श्रेय न्यायपालिका और जनहित याचिकाओं से संबंधित सर्वोच्च न्यायालय तथा अनेक उच्च न्यायालयों के आदेशों के अनुपालन को जाता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की पहल की शुरुआत सर्वोच्च न्यायालय के 1997 के आदेश के साथ हुई जिसमें कहा गया था कि रांची, आगरा और ग्वालियर के मानसिक अस्पतालों की निगरानी की जाए तब से निरन्तर आयोग एक कदम और आगे चलकर देशभर के मानसिक अस्पतालों की कार्यप्रणाली और रखरखाव की दिशा में कार्यरत है। निमहन्स, जानी–मानी संस्था बंगलुरु भी इस प्रक्रिया में स्टाफ सदस्यों जैसे डॉक्टर और नर्सों के प्रशिक्षण, अनुसंधान और ज्ञान वृद्धि के अनूठे एवं प्रभावकारी कार्यक्रम चला रहे हैं।

मानसिक रोगियों के प्रति समग्र समाज आज भी अपेक्षाकृत पर्याप्त जागरुक और संवेदनशील नहीं है, हम इनके प्रति समुचित ध्यान नहीं दे पा रहे हैं। अध्ययनों से पता चला है कि बहुत से अस्पतालों में जो रोगी पूरी तरह स्वस्थ हो जाते हैं, उन्हें संबंधित रोगियों के परिजन लेने नहीं आते और परिवार के साथ आत्मसात् नहीं करते। यह विडंबना ही है, कई बार तो ऐसे रोगियों को अस्पताल में भर्ती के समय ही गलत पता लिखा दिया जाता है और तो और पत्नी या अन्य परिजनों से छुटकारा पाने के लिए सताने के लिए जबरदस्ती मेंटल अस्पताल में भरती कराते हैं। यह भी देखा गया है कि विचाराधीन कैदी कई सालों से मानसिक अस्पतालों के मूल निवासी बन गए हैं, उनकी खोज़–खबर लेने वाला कोई नहीं।

हमारा प्रयत्न हो कि जितने भी मानसिक रोगी अस्पताल में आएं और स्वस्थ होकर जब वापस जाएं तो उनको भी उसी दर्ष्टि से देखा जाए जैसा अन्य रोगियों को देखा जाता है। कोशिश हो कि मानसिक रोग का सामाजिक धब्बा मिटे और उनका समन्वित इलाज हो, इसमें कोई कोताही न बर्ती जाए चाहे वह ढांचागत हो या फिर सेवाओं के किसी भी पक्ष से संबंधित हो। संभवतः इसीलिए मानसिक स्वास्थ्य के कार्यक्रम के क्रियान्वयन में स्वयंसेवी संस्थाओं और सार्वजनिक निजी भागीदारी को सुनिश्चित करने की पहल का उल्लेख मिलता है। निःसन्देह इससे जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के अंतर्गत सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य कारगर सिद्ध होगा। जैसा कि आज की सोच भी है कि ज्यादा चिकित्सालय न बनाकर एक (Community Based Approach) अर्थात् समुदाय आधारित पहल अपनाएं। रोगियों को उनके स्थान पर जाकर सम्पर्क, निगरानी, परामर्श सेवाएं, रेफरल और प्रबंधन को शामिल करें। इन्डोर मरीज तभी रखें जब (Community Based Approach) से उपचार नहीं हो सकता।

मानसिक स्वास्थ्य का एक महत्त्वपूर्ण पहलू कैदियों के साथ जुड़ा हुआ है। भारत ही नहीं दुनियाभर में औसतन 32 प्रतिशत सभी तरह के कैदियों को मनोवैज्ञानिक सहायता की नितान्त आवश्यकता है। आप सभी अवगत होंगे कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने इस विषय पर यथोचित हस्तक्षेप किया है। खैर हालात संकेत देते हैं कि जेल अस्पताल में एक मनोचिकित्सक का होना जरूरी है, यदि ऐसा एकदम मुमकिन नहीं है तो सप्ताह में एक दिन के चिकित्सा का प्रावधान अवश्य हो जिससे कैदियों की मानसिक विकर्षतियों और बीमारियों का त्वरित इलाज हो सके।

एक रिपोर्ट के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की हालत बेहद खराब है जहाँ रोगियों को न केवल मूलभूत चिकित्सा की कमी है अपितु वहाँ उपलब्ध भौतिक संसाधनों जैसे पलंग, पानी, बिजली, रहने का स्थान, शौचालय, आदि की अपर्याप्तता थी। निष्कर्ष बताते हैं कि इन केन्द्रों को अस्पताल कहना भी तर्कसंगत नहीं होगा, वे केवल डंपिंग ग्राउण्ड की भाँति है जहाँ मानसिक रोगियों को न तो रहने की ठीक दशाएं मिल रही हैं और न ही मानव होने के नाते प्रतिष्ठापूर्ण आवास एवं भोजन ही उपलब्ध है, वे वहां पर बंदियों की तरह रह रहे हैं।

मानसिक रोगियों का एक वर्ग जो बेसहारा, बेघर, निष्कासित और उपेक्षित है उन पर ध्यान देना भी हमारी जिम्मेदारी बनती है। हमारा सरोकार यह भी है कि राज्य स्तर पर पुनर्वास परिषद का गठन हुआ है कि नहीं और हुआ है तो कितना काम हुआ है कितनी प्रगति है?

वस्तुतः हमारे समाज के परम्परागत स्वरूप में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने की प्रवृत्ति बहुत शिथिल है। जीवन शैली से जुड़े अनेक पक्ष जैसे शरीर और मन का तादात्म्य बहुत आवश्यक है, जिसमें भोजन की पर्याप्त और उचित खुराक, आवश्यकतानुसार नींद और व्यायाम की अवहेलना बहुधा होती है, इसे हमारे शरीर और मन को भी झेलना पड़ता है। इन परिस्थितियों में पड़ोस, परिवार, मित्रगण, संगी–साथी, नाते रिश्तेदार, शिक्षक और शुभचिंतकों का सहयोग व वैचारिक आदान–प्रदान निश्चित रूप से हमें अच्छे शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य की ओर अग्रसर करेगा। सभी समुदायों, संस्थाओं और इकाइयों द्वारा विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस का आयोजन प्रतिवर्ष 10 अक्टूबर को किया जाता है, वर्ष 2009 में 'प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या में मानसिक स्वास्थ्य' पर विशेष बल दिया गया। इन सभी मनोविकास रोगियों को उचित इलाज नहीं मिलता। वस्तुतः आधे से अधिक का कभी इलाज ही नहीं होता। इस दिशा में इलाज की उपलब्धता और इलाज के फायदे की समुचित जानकारी न होना महत्त्वपूर्ण कारण है। यह भी एक सत्य है कि एक तरफ देश की विशाल जनसंख्या और दूसरी तरफ मनोचिकित्सकों की कम संख्या है, अनुमान है कि हर तीन लाख जनसंख्या पर एक मनोचिकित्सक उपलब्ध है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां लगभग 70 प्रतिशत आबादी रहती है, मनोचिकित्सक / जनसंख्या का अनुपात दस लाख पर एक चिकित्सक से भी कम हो सकता है, जबकि तीन–चौथाई मानसिक रोगी ग्रामीण क्षेत्रों में हैं।

सन् 1982 में राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम प्रारंभ किया गया जिसके मुख्यतः तीन उद्देश्य हैं :– 1. निकट भविष्य में न्यूनतम मानसिक स्वास्थ्य देखभाल सभी विशेषकर समाज के सबसे असुरक्षित वर्गों को उपलब्ध कराना जहां वह सेवाएं प्राप्त कर सके। 2. मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान और सामान्य स्वास्थ्य देखभाल में कुशलता और सामाजिक विकास में बढ़ावा देना। 3. मानसिक स्वस्थ्य सेवा विकास में सामुदायिक भागीदारी और समुदाय में स्व–मदद को बढ़ावा देना।

नया अधिनियम 'मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम–1987' लागू होने से मानसिक रोगियों के लिए आशा की किरण जगी है। इस अधिनियम का मूल उद्देश्य मानसिक चिकित्सालयों और नर्सिंग होम की स्थापना और उनके कामकाज पर आवश्यक नियंत्रण रखना है। पिछले दो दशकों से मानसिक चिकित्सालयों की दशा में आंशिक सुधार आया है इसका श्रेय न्यायपालिका और जनहित याचिकाओं से संबंधित सर्वोच्च न्यायालय तथा अनेक उच्च न्यायालय के आदेशों के अनुपालन को जाता है। तथापि मानसिक स्वास्थ्य के प्रति समग्र समाज अभी भी अपेक्षाकृत अधिक जागरूक और संवेदनशील नहीं है। बहुधा मानसिक रोगी दोहरी मानसिकता का शिकार होता है – एक बीमारी और दूसरे सामाजिक

कलंक। ऐसी स्थिति में परिजन और नाते–रिश्तेदार मदद करने में कतराते हैं।

आज अनेक औषधि और वैज्ञानिक उपचार की उपलब्धता ने मानसिक रोगियों को स्वस्थ होने की आशा जगा दी है, किन्तु मानसिक रोगियों की देखभाल और समाज के दर्ष्टिकोण में अपेक्षाकृत बदलाव दृष्टिगोचर नहीं होता। अध्ययनों से पता चला है कि बहुत से अस्पतालों में जो रोगी पूरी तरह स्वस्थ्य हो जाते हैं, उन्हें संबंधित रोगियों के परिजन लेने नहीं आते, कई बार तो ऐसे रोगियों को अस्पताल में भर्ती के समय ही गलत पता लिखा दिया जाता है। विचाराधीन कैदी कई सालों से अस्पतालों के मूल निवासी बन गए हैं, उनकी खोज–खबर लेने वाला कोई नहीं है। इन परिस्थितियों में हमारे देश में पुनर्वास केन्द्रों का अभाव है। वास्तव में प्रत्येक मानसिक अस्पताल के साथ एक पुनर्वास केन्द्र होना चाहिए, क्योंकि इससे उनका जीवन सफल हो सकता है। ये मानसिक रोगी जब ठीक हो जाते है तो देखा गया है कि वे रोजगार के लिए लालायित रहते हैं और समाज के विकास में अपना योगदान देना चाहते हैं। इस दिशा में जनता, सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं के समन्वित प्रयास पुनर्वास को साकार रूप दे सकते हैं। हमारे देश में मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित विविध कानूनों का योगदान आवश्यक प्रतीत होता है जिनमें नारकोटिक ड्रग्स एवं साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1985' रिहेबिलिटेसन काउन्सिल ऑफ इंडिया एक्ट, 1992; पर्सन विद डिसेबिलिटीस इक्वल ऑपोरचुनिटीज, प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स एण्ड फुल पार्टिसिपेशन एक्ट, 1995 और प्रोटेक्शन ऑफ वीमेन फ्रॉम डोमेस्टिक वायलेंस एक्ट, 2005 प्रमुख है। इन सभी कानूनों ने गौरवपूर्ण जीवन की दिशा में मार्ग प्रशस्त किया है। 9 वीं पंचवर्षीय योजना में जिला स्तर पर आधारित्त मॉडल मानसिक स्वास्थ्य देखभाल विकसित किया गया। इसे 1988–95 के मध्य 'निमहन्स' द्वारा कर्नाटक के बेल्लारी जिले में परखा गया और इसे अन्य जिलों में मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के रूप में अपनाया गया। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत 123 जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम चल रहे हैं, देशभर के मेडिकल कॉलेजों में 83 मनोचिकित्सक वार्ड अस्तित्व में हैं और कुल 43 मनोचिकित्सालय क्रियाशील हैं। 29 मानसिक स्वास्थ्य अस्पतालों को विशेष राशि उपलब्ध करायी गई है, प्रस्ताव है कि 11 केन्द्रों को 'सैंटर फॉर एक्सीलैंस' बनाएंगे जिसमें टर्सियरी स्तर पर सेवाएं प्रदान की जायेंगी, प्रत्येक केन्द्र को 30 करोड़ रुपए प्रदान करने का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष 40 मेडिकल कॉलेजों को पर्याप्त राशि उपलब्ध कराने की योजना है जो विशेषकर मनोचिकित्सा और समाज कार्य में एम. फिल. के कार्यक्रमों को बढ़ावा देंगे, इसके अतिरिक्त मनोचिकित्सा में डिप्लोमा और नर्सिंग मनोचिकित्सा को भी शुरू करने की योजना है। सन् 2008–09 में राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु 70 करोड़ रुपये उपलब्ध कराए गए हैं। प्रत्येक मेडिकल कॉलेज में एक मनोचिकित्सा विभाग

जिसमें न्यूनतम तीन संकाय सदस्य, मापदण्डों के अनुसार 30 बिस्तर अंतरंग रोगियों हेतु, बहिरंग रोगियों की चिकित्सा का प्रावधान तथा थेरेपी की सुविधा सुनिश्चित करने की पेशकश की गई है। इन सबके बावजूद वर्तमान में एक–तिहाई मेडिकल कॉलेजों में पर्याप्त मनोचिकित्सा सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं। मानसिक अस्पतालों का आधुनिकीकरण, सरकारी मेडिकल कॉलेजों और सामान्य अस्पतालों के मनोचिकित्सा विभाग का उन्नयन, सेवा में सुधार के लिए मानसिक स्वास्थ्य प्रशिक्षण आदि शामिल हैं। इस ग्यारहवीं योजना (2007–12) में एक हजार करोड़ रुपये का आबंटन किया गया है और इसका विकेन्द्रीकरण राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के साथ मिला है ताकि अधिकतम परिणाम प्राप्त हो सकें।

भारत की जनसंख्या में मानसिक रोगों की व्यापकता लगभग 10 प्रतिशत है जिसके अनुसार देश में लगभग 11.15 करोड़ तथा अकेले उत्तर प्रदेश में लगभग 1.8 करोड़ व्यक्ति मानसिक रोग से पीड़ित हैं। इस व्यापकता के होते हुए देश भर में मनोचिकित्सकों का नितान्त अभाव है, आंकड़े बताते हैं कि इस समय 8500 मनोचिकित्सक, 15750 चिकित्सा मनोविज्ञानिक, 22600 मनोचिकित्सकीय समाज कार्य कार्यकर्त्ता और 210 मनोचिकित्सकीय उपचारिका की कमी है। मानव संसाधन की यह भारी कमी का आकलन मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम – 1987 के मानकों के अनुसार किया गया है जिसमें प्रत्येक 10 बिस्तर के लिए एक–एक मनोचिकित्सक, चिकित्सा मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्त्ता और मनोचिकित्सकीय उपचारिका का प्रावधान है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा सन् 1999 में मानसिक अस्पतालों का इम्पीरिकल अध्ययन पर आधारित एक रिपोर्ट के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं की हालत बेहद खराब है, जहां रोगियों को न केवल चिकित्सा की कमी है अपितु वहां उपलब्ध भौतिक संसाधनों जैसे पलंग, पानी, बिजली, रहने के स्थान आदि की अपर्याप्तता थी। निष्कर्ष बताते हैं कि इन केन्द्रों को 'अस्पताल' कहना भी तर्कसंगत नहीं होगा, वे 'केवल डंपिंग ग्राउंड' की भांति हैं, जहां मानसिक रोगियों को न तो रहने की ठीक दशाएं मिल रही हैं और न ही मानव होने के नाते प्रतिष्ठापूर्ण आवास एवं भोजन ही उपलब्ध हैं, वे वहां पर बंदियों की भांति रह रहे हैं।

मानसिक स्वास्थ्य का एक महत्त्वपूर्ण पहलू कैदियों के साथ जुड़ा हुआ है, दुनियाभर में औसतन 32 प्रतिशत, सभी तरह के कैदियों को मनोवैज्ञानिक सहायता की नितान्त आवश्यकता है। यदि हम उनके प्रताड़ना की बात करें तो यह आंकड़ा 80 प्रतिशत के पार हो जाएगा, तत्पश्चात् मानसिक स्वास्थ्य पर बल देना और भी मायने रखता है, इन कैदियों में मानसिक बीमारियों से ग्रसित लोगों की पहचान करना और उन्हें यथोचित

सेवाएं प्रदान करना बहुत जरूरी है। इससे जुड़े आंकड़ों का समुचित ब्यौरा अभी उपलब्ध नहीं है, न तो इनके इलाज, पुनर्परीक्षण, डिस्चार्ज और रिफरल आदि का लेखा–जोखा ही मिलता है, इस दिशा में कारगर कदम उठाने की जरूरत है। जेल अस्पताल में एक मनोचिकित्सक का होना जरूरी है, यदि ऐसा एकदम मुमकिन नहीं है तो सप्ताह में एक दिन का प्रावधान कदाचित अवश्य हो जिससे कैदियों की की मानसिक विकृतियों और बीमारियों का त्वरित इलाज हो सके। वस्तुतः इन मानसिक रोगी कैदियों की चिकित्सा जेल में नहीं बल्कि अलग अस्पताल में होनी चाहिए क्योंकि इलाज के दौरान मौजूदा सामाजिक वातावरण का स्वस्थ होना नितांत आवश्यक है।

संदर्भ

1. मेंटल हैल्थ केयर एण्ड ह्यूमन राइट्सः नेशनल ह्यूमन राइट्स कमीशनः एडीटर्स डी. नागराजा एण्ड प्रतिमा मूर्ति, प्रथम संस्करण : 2008

2. भारत, 2009 वार्षिक संदर्भ ग्रंथ, गवेषणा, संदर्भ और प्रशिक्षण प्रभाग द्वारा संकलित : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।

3. मानवाधिकार : नई दिशाएं : वार्षिक पत्रिका, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, फरीदकोट हाउस, कॉपरनिक्स मार्ग, नई दिल्ली, 2006।

• • •

सुशासन, भ्रष्टाचार एवम् मानव अधिकार

• प्रो. (डॉ.) सरोज व्यास

सुशासन की नींव कानून के राज पर आधारित है। सुशासन में सत्ता के द्वारा अधिकारों का निरंकुश उपयोग वर्जित है। प्रशासन में अधिकारों का उपयोग राष्ट्र के आर्थिक एवं सामाजिक संसाधनों के विकास का कुशलता पूर्वक प्रबन्धन में होना आवश्यक है। एक प्रजातांत्रिक राज्य में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र लोकतांत्रिक मूल्यों के द्वारा परिभाषित होते हैं तथा राज्य की भूमिका अंततः सेवा प्रदान करने वाले संस्थान के समान होती है। सत्ता का अधिकार आम जनता में निहित होता है, जिसका संचालन षासन के विकेन्द्रीकरण पर आधारित होता है। सुशासन का वास्तविक तात्पर्य स्व–राज से है तथा इसकी वैधता का आंकलन मानव अधिकारों की सुनिश्चितता से होता है। सुशासन में मानव अधिकारों की परिकल्पना नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की समग्रता पर आधारित होती है, तथा इसका मूल मन्त्र इन समग्र मानव अधिकारों का आदर एवं संरक्षण है। सुशासन की परिकल्पना में आमजनों की नागरिक एवं राजनैतिक आजादी, उनके आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय, रोजगार की उपलब्धता एवं बहुलता तथा आर्थिक संसाधनों का कुशल प्रबंधन समाहित है। सुशासन के द्वारा यह तय होता है, कि सत्ता का संचालन एवं अधिकारों का प्रयोग तथा राजकीय निर्णय इस प्रकार से हों, जिससे कि नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। इस प्रकार से सत्ता का संचालन होने से शासन न केवल पारदर्शी होता है, अपितु जनता के प्रति उत्तरदायी भी होता है।

सुशासन में संवैधानिक वैधता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, निष्पक्ष आम चुनाव, पारदर्शिता, कानून का राज, भ्रष्टाचार रहित शासनतंत्र, राजनैतिक खुलापन, जागरुक जीवन्त निष्पक्ष सजग मीडिया, सूचना का अधिकार, कानूनी प्रावधानों की स्पष्टता तथा उनका स्थायीकरण, प्रशासकीय दक्षता एवं कुशलता, प्रशासकीय निरपेक्षता, सहनशीलता,

• प्रचार्य बी. एल. एस. इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलोजी मैनेजमेंट, (संबद्ध गु. गो. सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली)

बराबरी एवं समानता की भावना, नागरिकों की सतत् भागीदारी एवं सकारात्मक तथा रचनात्मक भूमिका, राजकोश का उपयोग एवं उपभोग आमजन के हित में करना अन्तर्निहित है। ऐसा होने से मानव अधिकारों का समग्ररूप से विकास, सुरक्षा एवं संवर्धन सुनिश्चित हो जाता है। सुशासन के इस स्वरूप को हम राम राज्य की परिकल्पना के समान समझ सकते हैं। इस प्रकार सुशासन का लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति की विकास की प्रक्रिया में भागीदारी को इस प्रकार से सुनिश्चित करना होता है, जिससे वह राष्ट्र के विकास का न केवल वाहक ही होता है, अपितु इसका लाभार्थी भी होता है।

सुशासन के द्वारा नागरिकों की भूमिका निर्णय लेने, नीतियाँ बनाने तथा उनके क्रियान्वयन में भी होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सुशासन में किसी व्यक्ति विशेश के राज का कोई स्थान नहीं होता, इसमें मात्र और मात्र कानून का राज होता है। इसकी प्रमाणिकता इस तथ्य से ही स्पश्ट हो जाती है कि कानून का राज (Rule of Law) भारतीय संविधान के मूलभूत ढांचे का एक अभिन्न अंग है, और इसे किसी भी परिस्थिति में बदला या छीना नहीं जा सकता, ऐसा कथन भारत के सर्वोच्च न्यायालय का है।

भ्रष्टाचार हमारे देश में सुरसा राक्षसी के मुख के समान फैलता जा रहा है। शासन का कोई भी तंत्र आज इससे अछूता नहीं रहा। भ्रष्टाचार की मार सबसे अधिक गरीब व्यक्ति पर पड़ती है, तथा इसकी सीधी चोट मानव अधिकारों पर होती है। ऐसे में सुशासन की कल्पना करना बेमानी हो जाता है। आज समाचार पत्रों एवं मीडिया के समाचार पढ़ने एवं सुनने तथा देखने से मन खिन्न हो जाता है। भ्रष्टाचार एवं घोटाले इतने बड़े एवं व्यापक पैमाने पर हो रहे हैं, कि करोड़ों अरबों की राशि की गणना करना अब आमजन के वर्ष मे नहीं रहा। बार–बार मन कचोटता है कि हम कैसे समाज में जी रहे हैं? भ्रष्ट व्यक्ति इस अपार एवं अगाध काली कमाई से अंततः क्या प्राप्त करना चाहते हैं? क्यों वे देश को खोखला बना रहे हैं? आखिर भावी पीढ़ी को वे क्या संदेश देना चाहते हैं? आजादी के इतने वर्षों के बाद हमने यह कैसा भारत बना दिया है? इन सभी यक्ष प्रश्नों के उपरान्त एक ही बात मन को कौंधती है, आखिर अंधेरे के ये काले बादल कब छटेंगे? कब सुशासन पर आधारित मानव अधिकारों से सुरक्षित भ्रष्टाचार मुक्त भारत का पुनर्निर्माण प्रारम्भ होगा?

सूचना के अधिकाररूपी कानून से एक आशा जागी है। इस देश ने विगत महीनों में भ्रष्टाचार के विरुद्ध जन–आंदोलन एवं जन आक्रोश को देखा एवं समझा है। भ्रष्टाचाररूपी जिन्न से आम आदमी त्रस्त एवं परेशान है। शासन के दरवाजे खटखटाने के पश्चात् भी वह खाली हाथ लौटता है या लुटता है या ठगा सा महसूस करता है।

विदेशी शासन के दौरान हमारा पैसा विदेशों में चला जाता था तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भी यह क्रम या सिलसिला रुका या ठहरा नहीं है। भौतिकवाद की इस चकाचौंध एवं अंधी दौड़ ने शासनतंत्र को प्रदूशित एवं कलुशित कर दिया है। भ्रष्टाचार के कारण आज आमजन का कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका पर विश्वास कम होता जा रहा है। इन संस्थाओं पर विश्वास का उठना या कम होना विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के लिये अत्यन्त चिंतनीय एवं विचारणीय बिन्दु है। सच्चाई एवं वास्तविकता से मानव अधिकारों के प्रहरियों को जूझना ही पड़ेगा।

भूमंडलीकरण के इस दौर में भ्रष्टाचार ओर भी बढ़ता जा रहा है, इसका स्वरुप भी व्यापक हो गया है तथा जड़ें भी गहरी होती जा रही हैं। यह समस्या ऐसी नहीं है, कि भारत तक ही सीमित है, अपितु विश्वव्यापी समस्या बन गयी है, तथा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय भी इससे त्रस्त एवं चिंतित है। भौगोलिक सीमाओं के आर और पार बाजार खुलते जा रहे हैं, तथा इन आर्थिक प्रक्रियाओं के कारण पूंजी का प्रवाह अबाध गति से हो रहा है, जिसका नियंत्रण पूर्णतः आर्थिक ताकतों के पास है। यह युग आपसी होड़, जोड़ तोड़ तथा परस्पर रस्सा कस्सी एवं प्रति–द्वन्दिता का है, जहाँ मानव अधिकारों का स्थान नीचे के पायदान पर सीमित रह गया है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार 1980 के दशक में समाजवाद के पतन एवं 1990 के दशक में पूंजीवाद की उत्तरोतर गति के कारण राज्य की संप्रभुता प्रभावित हुई है। राष्ट्र के संशाधनों पर नियंत्रण राज्य के हाथों से निकलकर आर्थिक शक्तियों के हाथों में जाने से भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है। इन सबके कारण व्यापारिक लाभ या नफा (Profit) ही मानों अंतिम लक्ष्य बन गया है। आम आदमी का लक्ष्य दो वक्त की रोटी पर केन्द्रित हो गया है। आम आदमी का भोजन (रोटी), स्वास्थ्य सेवायें, कपड़ा, मकान और यहाँ तक की पीने का पानी, पर्यावरण, सामाजिक सुरक्षा तथा शिक्षा के क्षेत्र इन आर्थिक शक्तियों की कैद में समाहित हो गये हैं, तथा राज्य की भूमिका गौण एवं नगण्य होती जा रही है। इन सबके कारण ऐसा लगता है, मानों पश्चिम का साम्राज्य अभी भी यथावत् जारी है। नीतियों का निर्धारण तथा संस्थाओं का प्रबंधन अब बाजारी शक्तियों के हाथ में चला गया है। इन शक्तियों की नीतियों के कारण गरीब देश और गरीब होते जा रहे हैं, तथा इन देशों से वस्तुओं के निर्यात पर अनेकों शर्तों एवं बाधाओं के कारण आर्थिक स्थिति दयनीय होती जा रही है। भारतीय संदर्भ में यदि भ्रष्टाचार की बात करें तो इन आर्थिक शक्तियों की परोक्ष एवं अपरोक्ष भूमिका स्पष्टरुप से परिलक्षित होती है। राजनेताओं के साथ साथ इन आर्थिक शक्तियों के केन्द्र में रहे विभिन्न व्यक्ति आज दिल्ली की तिहाड़ जेल में भ्रष्टाचार के आरोपों के कारण सलाखों के पीछे कैद है। भ्रष्टाचार के विरुद्ध इस युद्ध का आगाज वर्तमान परिपेक्ष्य में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने किया है, जिससे आम नागरिकों के मन में एक विश्वास उत्पन्न हुआ है।

इसमें कोई संदेह नहीं है, कि शासन के तीनों स्तंभ भ्रष्टाचार की बीमारी से ग्रस्त हैं। यहाँ यह कहना उचित ही होगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सुशासन की स्थापना, मानव अधिकारों की सुरक्षा एवं भ्रष्टाचार से मुक्त समाज के लिए हमारी विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका ने अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। इन तीनों अंगों में भ्रष्टाचार पहले अपवाद या अपभ्रंश के रूप में यदाकदा समाचार पत्रों के माध्यम से आम जनता के संज्ञान में आता था, परन्तु वर्तमान युग में भ्रष्टाचार अपवाद या अपभ्रंश की सीमाओं को लांघकर आम होता जा रहा है, तथा यह स्थिति चिंतनीय एवं शोचनीय है। भारतीय लोकतंत्र में जब चुनावों में कालेधन का प्रयोग होता है, अथवा औद्योगिक घराने कतिपय राजनेताओं के चुनावों को प्रायोजित करने का उपक्रम करते हैं, अथवा संसद में प्रश्न पूछने के लिये सांसद धन अर्जित करते हैं, अथवा मानव दुर्व्यापार (कबूतरबाजी) में संलिप्त होते हैं, तथा जब सांसदों की खरीद परोक्ष के आरोपों के मध्य संसद में सरेआम नोटों की गड्डियां लहरायी जाती हैं, तो हमारा सिर शर्म से झुक जाता है। कार्यपालिका के जनसेवकों द्वारा आम जनता से जन कार्य के लिये जब रिश्वत ली जाती है, अथवा विवश नागरिकों के कार्य बिना रिश्वत दिये होते ही नहीं है, जब जनसेवक सत्ताधीश या निरंकुश शासक के अनुरूप व्यवहार करते हैं, उस समय सुशासन एवं मानव अधिकारों की परिकल्पना बेमानी हो जाती है।

न्यायपालिका में व्याप्त भ्रष्टाचार को लेकर आज आम जनता में बहस हो रही है। दिल्ली उच्च न्यायालय के एक न्यायमूर्ति भ्रष्टाचार के आरोपों के चलते जेल गये। राजस्थान के एक न्यायाधीश न्याय देने के बदले अपनी यौन इच्छाओं की संतुष्टि करना चाहते थे। कतिपय न्यायाधीशों पर बलात्कार अथवा मुंबई के अंडर वर्ल्ड से संबंधों के मामले भी उजागर हुए हैं। कुछ न्यायाधीशों के विरुद्ध भविष्यनिधि के पैसों के गबन के तो कुछ के विरुद्ध महा अभियोग की कार्यवाहियों की प्रक्रिया चिंताजनक एवं निंदनीय है। न्यायमूर्ति श्री एस.पी. भरुचा की माने तो 25 प्रतिशत न्यायाधीश भ्रष्ट हैं, वहीं प्रसिद्ध विधिवेत्ता फाली एस.नरीमन के अनुसार न्यायपालिका में कुछ तो सड़ांध व्याप्त है, स्थिति की भयावहता को स्पष्ट करती है। दूसरे विधिवेत्ता श्री पी.पी. राव ने उचित ही कहा है कि भ्रष्टाचार निरोधक कानून भारत में भ्रष्टाचार को मिटाने में सफल नहीं रहा है। भ्रष्टाचार के निर्मूलन के लिये एक ठोस इच्छा शक्ति की आवश्यकता है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने विगत में विधायिका के सदस्यों द्वारा पेट्रोल पंप आवंटन, राजकीय आवासों के आवंटन, हवाला केस आदि में अपने अभूतपूर्व ऐतिहासिक निर्णयों से इस देश को गौरवान्वित किया है। हमारी न्यायपालिका को यह श्रेय देना ही होगा कि भ्रष्ट न्यायाधीशों के विरुद्ध कार्यवाही भी इसी ने की है। वर्तमान में भ्रष्टाचार, सुशासन एवं मानव अधिकारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के साथ जिस तरह भारत का सर्वोच्च न्यायालय

अपनी अग्रणी भूमिका अदा कर रहा है, यह इस देश के लिये, एक अच्छे कल के लिये शुभ संकेत है।

भ्रष्टाचार से आम जनता में असंतोष एंव आक्रोश की चिंगारी फूटती है तथा इसकी परिणिति हिंसा या नागरिक युद्ध (Civil War) के रूप में हो सकती है। जहाँ सुशासन एवं कानून का राज हो वहाँ ऐसी संभावनायें नगण्य होती हैं। भ्रष्टाचार का प्रारंभ वहाँ होता है जहाँ अथाह निजी धन सम्पदा एवं सत्ता के असीमित अधिकार परस्पर आमने सामने आ जाते हैं। भ्रष्टाचार के कारण राष्ट्र की उत्पादन शक्ति कम हो जाती है, एवं व्यापार परिधि के बाहर से कानून के विपरीत संचालित होता है, तथा सरकारी करों की खुले आम चोरी होती है। ऐसे वातावरण में विदेशी निवेश में कमी आती है, तथा अर्थव्यवस्था के खोखला होने की मार सबसे ज्यादा गरीब पर पड़ती है। भ्रष्टाचार आज परंपरागत बाजार तक ही सीमित नहीं रहा, इसका व्यापक स्वरुप जीवन के अन्य अंगों एवं क्षेत्रों को भी अपनी चपेट में ले चुका है।

शिक्षा का क्षेत्र अब व्यवसाय बनता जा रहा है, गरीब तबके या वर्ग के लिए शिक्षा प्राप्त करना एक बड़ी चुनौती बनती जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में लिफाफारुपी संस्कृति का प्रचलन बढ़ना एक गहन चिन्तन का विषय तथा इस क्षेत्र में मानव अधिकारों का हनन खुले आम हो रहा है। काले धन की कमाई से बने शिक्षण संस्थान काले धन की कमाई का साधन बनते जा रहे हैं जहाँ नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों की शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती है तथा मीडिया के द्वारा आये दिन सनसनीखेज खुलासों से इसकी पुष्टि भी हो रही है। चिकित्सा का क्षेत्र जो सेवा की भावना से ओत प्रोत था, आज निजीकरण की आंधी से इसका भी पूर्ण व्यवसायीकरण हो गया है। हर तरह की बीमारियों के उपचार हेतु अब पैकेज बन गये हैं, एवं स्वास्थ्य का अधिकार जो कि मूलभूत मानव अधिकारों के अन्तर्गत् आता है, अपनी दिशा व दशा से व्यथित है। गरीब व्यक्ति इस क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण तथा गलत नीतियों के फलस्वरुप अपना उपचार कराने में असफल होता जा रहा है।

सुशासन प्रजातंत्र या लोकतंत्र का एक अभिन्न अंग है तथा समाज के लिए जरुरी है। इसकी चर्चा विश्वपटल पर 1989 में विश्व बैंक की अफ्रीका पर रिपोर्ट जारी होने के उपरान्त व्यापकरुप से होना प्रारंभ हुई है। प्रसिद्ध सामाजिक लेखक एड्रियान लेफटविच ने सुशासन को परिभाषित एक ऐसी राजनैतिक सत्ता के रुप में किया है, जो कि लचीले लोकतांत्रिक ढांचे पर आधारित है, जो मानव अधिकारों की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के साथ–साथ एक कुशल, भ्रष्टाचार रहित एवं उत्तरदायी जन प्रशासन प्रदान करती है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सुशासन एवं मानव अधिकारों की व्यापक चर्चा संयुक्त रॉष्ट्र संघ

के अधीन मानव अधिकार परिशिद की 40वीं मीटिंग में पारित 7 / 11 प्रस्ताव में दिनाँक 27 मार्च 2008 को संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार उच्चायोग द्वारा की गयी है। इसमें दिनाँक 8 एवं 9 नवंबर 2008 को आयोजित संयुक्त राष्ट्रसंघ के भ्रष्टाचार के विरुद्ध, सुशासन एवं मानव अधिकारों के हेतु आयोजित सम्मेलन की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया।

इस सम्मेलन में भ्रष्टाचार का मानव अधिकारों पर प्रभाव तथा सुशासन एवं मानव अधिकारों हेतु भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान, नागरिक संगठनों की भूमिका, निजी क्षेत्र एवं मीडिया तथा मानव अधिकारों की सुरक्षा हेतु भ्रष्टाचार के विरुद्ध संग्राम का आगाज हुआ। इस अभियान में अग्रणी पहल करने वाले 41 राष्ट्रों में भारत भी शामिल था, अंततः इस अभियान के फलस्वरुप भ्रष्टाचार के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा (Convention) जिसका जन्म 31.10.2003 को हुआ था, को व्यापक समर्थन मिला तथा इसका प्रभावीकरण 14.12.2005 से हो गया।

इस प्रकार हम देख सकते हैं, कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा समूचे विश्व में हो गयी है, यह युद्ध या अभियान कितना सफल होगा, इसका उत्तर तो भविष्य के गर्भ में ही छिपा हुआ है। इतना तो सत्य है, कि इस अभियान में अब विलम्ब मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिये घातक सिद्ध होगा। भ्रष्टाचार के कारण गरीबी, भुखमरी, रोजगार आवास, चिकित्सा, एवं शिक्षा का सहज अनुमान इसी से लगाया जा सकता है, कि विश्व के सबसे 10 प्रतिशत धनी व्यक्ति संसार के 33.5 प्रतिशत संसाधनों का उपभोग कर रहे हैं, तथा सर्वाधिक 10 प्रतिशत गरीब व्यक्ति मात्र 3.5 प्रतिशत संसाधनों का उपभोग कर रहे हैं। आज भी हमारे देश के 233 मिलियन व्यक्तियों को भरपेट भोजन नहीं मिलता तथा गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या 28 प्रतिशत से बढ़कर 37 प्रतिशत होने का अनुमान है। इस दुर्दशा के पीछे हमारे देश में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं सुशासन की कमी है, ऐसी स्थिति में मानव की गरिमा की बात करना बेमानी होता जा रहा है।

आज आवश्यकता इस बात की है, कि विकास के अधिकार को मानव अधिकार सभी के लिए एवं सहस्त्राब्दी विकास के लक्ष्य (MDGs) को प्राप्त करने के लिए सकारात्मक पहल हो, जिससे मानव अधिकारों का समग्र विकास एवं सम्मान हो। हमें यह सदैव स्मरण रखना होगा कि भ्रष्टाचार कानून के राज की उपेक्षा करता है, राष्ट्र के विकास की गति को बाधित करता है, यह मानव मात्र की सुरक्षा के लिए ऐसा खतरा है, जो सामाजिक ताने बाने को विखंडित एवं तहस नहस कर देता है। इसका लाभ मात्र और मात्र केवल धनी लोगों को प्राप्त होता है, तथा गरीबों का संकट बढ़ाता है। आज भ्रष्टाचार को समाज में जो झूठा सम्मान एवं स्वीकार्यता मिली हुई है, इस धारणा को

बदलने की आवश्यकता है। राजनीति के होते अपराधीकरण पर लगाम लगानी है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत् होने के कारण मेरा यह स्पष्ट मत है कि ईमानदारी एवं निष्ठा की भावना को हम शिक्षणकार्य में पूरे जोर के साथ लागू करें तथा प्रभावी बनाने का व्रत लें, जिससे कि भ्रष्टाचार रहित समाज से सुशासन को प्रोत्साहन मिले तथा मानव अधिकारों को सम्मान प्राप्त हो। आइये इस अभियान में हम सभी मिलकर अपनी अग्रणी भूमिका के साथ इन चुनौतियों का डट कर मुकाबला करें।

• • •

साहित्य, समाज तथा मानव अधिकार

• अंजू वर्मा

मानव सभ्यता के विकास में साहित्य का अद्‌भुत योगदान है। साहित्य ने मानव को परिष्कृत किया और मनुष्य में साभ्यतिक स्तर पर जीने की जिजीविषा पैदा की। साहित्य का इतिहास मनुष्य—समाज की अवसंरचना व संस्कृति को संचित करके रखे हुए है। हमारे ज्ञान कितने गहरे साहित्य को समझ पाते हैं, इस पर निर्भर करता है हमारी सामाजिक समझ। हमारा समाज भी वैविध्यता का पिटारा है। साहित्य हमारे समाज को सिर्फ प्रस्तुत नहीं करता है बल्कि समाज के सौन्दर्य और लालित्य को भी वर्णित करता है। भारतीय वाङ्‌गमय में हमारे समाज का अद्‌भुत दर्शन है।

नवजागरण काल में साहित्य ने सती प्रथा उन्मूलन व छुआछूत जैसी समस्या से निजात दिलाने में पर्याप्त योगदान किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द से लेकर प्रेमचन्द ने सामाजिक धारा को बदलने का कार्य किया। 'भारत दुर्दशा' हो या 'ठाकुर का कुंआ' ऐसे सृजनात्मक कृतियों ने समाज में किस प्रकार क्रांति की, यह पूरा भारतीय समाज जानता है। होरी के जरिए प्रेमचन्द ने गोदान में जिन किसानों के दुर्दशा व संघर्ष को उभारा, उससे साहित्य की नई संवेदना एवं प्रस्फुटित हुई।

साहित्य सजीव होता है, जीवन की संपूर्णता को व्यक्त करने में। साहित्यकार जीवन में संभावना देखता है। भविष्य के सपने बुनता है, अनुभव के लिए रास्ता दिखाता है, मार्ग प्रशस्त करता है। अंधकार और कुहासे से भरा जीवन एक बुरा स्वप्न है, दुःस्वप्न है। उससे उबरने का, एक नये सपने संजोने का, जीवन के लिए ऊष्मा, साहस और उत्साह देने का माध्यम है साहित्य में जीवन का अभिषेक दिखाई पड़ता है। साहित्य द्रष्टा ही नहीं है स्रष्टा भी है। वह रचता भी है। वह अपनी सृजनात्मक क्षमता से कच्चे माल को कोई सा भी रूप दे देता है। दिशा तय करता है। उसकी जिम्मेदारी बनती है कि वह समाज को आगे ले जाये और उसकी समग्र उन्नति का मार्ग दिखाए। परिवर्तन लाना

• समीक्षक एवं लेखिका, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

एक कठिन काम है क्योंकि आमतौर पर हम अपनी पुरानी आदतों के गुलाम होते हैं। इसीलिए लोग हर परिवर्तन का, चाहे वह अच्छा हो या बुरा विरोध करते हैं। परिवर्तन से भय लगता है और जानी–पहचानी राह पर चलना सरल है।

इसमें संदेह नहीं कि साहित्य और विचार ही हर सामाजिक परिवर्तन की पष्ठभूमि में रहे हैं। इतिहास गवाह है कि विचार में बदलाव ही जीवन में बदलाव लाते हैं पर दोनों के बीच का रिश्ता दोतरफा है। आप सभी हमारे इस बात से सहमत होंगे कि हैं कि यह एक बड़ी जिम्मेदारी है और इसमें सबकी हिस्सेदारी होनी चाहिए; तभी हम अपने लक्ष्य को पा सकेंगे। साहित्य से संवाद करते हुए हमें उसकी प्रेरणा से अपने लक्ष्य को पाने के लिए यत्न करना होगा।

भारत की प्राचीन परंपरा में अलग ढंग से, शायद व्यापक ढंग से, मानव अधिकारों की चर्चा मिलती है पर आज की परिस्थिति में हम सब अभी भी काफी पीछे हैं। भूमंडलीकरण का दबाव, गरीबी, पूर्वाग्रह, अमीरी व प्रकृति का कोप, भ्रष्टाचार ने समाज के चेहरे को बदलने की जी तोड़ कोशिश की है। हम सबको इन सबसे लड़ना है, उबरना है, आगे बढ़ना है। इन सब चुनौतियों, के बीच मानव अधिकारों की पहल 'नक्कारखाने में तूती की आवाज' जैसी बात लगती है। ये सारे सरोकार हमारे लिए ज्यादा महत्त्व के हो जाते हैं और एक को हम चुनते हैं और दूसरों को बिसरा देते हैं। फल होता है कि सब कुछ आधा–अधूरा रह जाता है।

मानव अधिकार का दर्शन मनुष्य की समता, समानता, पारस्परिकता और परस्परनिर्भरता पर निर्भर है। इन लक्ष्यों का महत्त्व सर्वविदित है। इनका उल्लेख अलग–अलग ढंग से, अलग शैलियों में धर्म ग्रंथों में मिलता है, संविधान में है और सामान्यतः हर जगह स्वीकृत है। पर हमारे जीवन का यथार्थ बड़ा कड़वा है। मनुष्य–मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन भी सिद्ध हो रहा है। आयोग के पास पहुंचने वाली हजारों लाखों शिकायतों का विश्लेषण करें तो नई 'महाभारत' रच जाए। अपराध, भ्रष्टाचार, अत्याचार भेदभाव आदि के इतने रूप सामने आते हैं कि रोंगटे खड़े हो जाते हैं। रिश्ते भरोसे के नहीं रहे, 'विश्वास' बीते दिनों की बात बनता जा रहा है। छोटे–छोटे स्वार्थ को साधने के लिए लोभ बड़े–बड़े अपराध करने लगते हैं।

मेरी दृष्टि से मानव अधिकारों पर सोच हर क्षेत्र में सोच की पृष्ठभूमि होनी चाहिए। यह लक्ष्य नहीं माध्यम होना चाहिए। इसकी कसौटी पर जो बात खरी न उतरे वह कभी हमारे हित में नहीं हो सकती। हर योजना और कार्यवाही की कसौटी मानव अधिकार ही हो सकते हैं। इस आवाज की प्रतिध्वनि सबसे ज्यादा हमें साहित्य में मिलती है।

साहित्यकार आगे की भी देखता है। वह कल्पना के सहारे अनागत भविष्य में जा पहुंचता है और हमें हर चीज से आगाह कराता है, हमारा उत्साहवर्धन करता है, हमारा मार्गदर्शन करता है, हमें चेतावनी देता है। वह, वह सब करता है जो मनुष्य के हित में हो – तभी तो वह 'साहित्य' होता है।

साहित्य में निहित मानवीय हित की भाषा मानव अधिकार के मुहावरों से समृद्ध होनी चाहिए। मनुष्यता पर संकट के बादल छाये हैं और भविष्यवक्ता कोई बड़ी अच्छी भविष्यवाणी नहीं करने वाले, पर भविष्य कुछ निश्चित तो होता नहीं, उसे बनाया बिगाड़ा जा सकता है – इस काम में साहित्यकार लोग माहिर होते हैं। मेरी गुजारिश है कि साहित्य की संवेदना और सहानुभूति मानव अधिकारों पर हो रही सोच को भी मिले। सुप्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने एक भूमिका में पाब्लो नेरुदा का जिक्र करते हुए लिखा है, "नेरुदा की कविताओं में पृथ्वी पर आवास। एक कविता है – ठहरो, ओ पृथ्वी फिर एक और कविता है 'तुम में पृथ्वी' शीर्षक से, जिसके अन्त की ये पंक्तियां मन की गहराई को छू लेती हैं :–

"नापती हैं बमुश्किल मेरी आंखें आकाश के और अधिक विस्तार और मैं झुकता हूँ अपने आपको तुम्हारे होठों को पर पृथ्वी चूमने।"

यह है साहित्य। साहित्य पृथ्वी, आकाश और सम्पूर्ण सभ्यता को चंद शब्दों में अभिव्यक्त कर देता है और मनुष्य के भीतर नई उम्मीदों का संचार कर जाता है।

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं है वह समाज का, समय का और देश का निर्माता भी है। उसकी उर्वरा शक्ति प्रचंड है और वह अपूर्व अर्थात् जो न हुआ हो, अघटित हो उसे घटित कर दिखाए। यही साहित्य की कारयित्री शक्ति है।

• • •

स्त्री सशक्तिकरण तथा मानवाधिकार

• डॉ0 अनीता सिंह

भारत के लिये 1947 का वर्ष दीर्घदासता की मुक्ति के कारण तो महत्त्वपूर्ण था ही साथ ही यह आने वाले सुनहरे कल का संकेतक भी था। यह संयोग ही रहा कि भारत के आजादी प्राप्त करने के एक वर्ष बाद ही सयुंक्त राष्ट्र संघ ने 1948 में पूरे विश्व में मानवाधिकारों की घोषणा की। अर्थात् भारत की आजादी तथा मानवाधिकारों की सर्वकौमिक लगभग साथ–साथ की घटना है।

10 दिसम्बर 1948 में मानवाधिकारों की घोषणा के पारित होने के पक्ष में भारत ने भी मतदान किया। ज्ञातव्य है कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित 'हम भारत के लोग' समानता, न्याय, बन्धुत्व, गरिमा आदि शब्दों में मानवाधिकार की गूंज ही प्रतिध्वनित होती है। उपरोक्त शब्दों पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि समानता, न्याय, गरिमापूर्ण जीवन के लिए किसी विशेष जाति, धर्म, राष्ट्र प्रान्त या रंग का होना आवश्यक नहीं है। चूँकि सभी मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र और समान होते हैं तो यह कहा जा सकता है कि, मानवाधिकार वह अधिकार और स्वतन्त्रता हैं जिन पर सभी मनुष्यों का हक है अर्थात् ये वे अधिकार है जो किसी मानव को मात्र मानव होने के कारण मिलने ही चाहिए। परिभाषा के तौर पर यदि कहा जाय तो ''मानवाधिकार बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक मनुष्य के जन्मजात अधिकार है– वह चाहे किसी देश निवास–स्थान का हो और चाहे स्त्री हो या पुरुष ये सभी अधिकार एक–दूसरे से सम्बद्ध है– एक–दूसरे पर निर्भर और अविभाज्य है।''(1) और संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित शब्द 'हम भारत के लोग' ......पर ध्यान दें तो पाएंगे कि 'हम भारत के लोग' में भारत की आधी आबादी भी शामिल है अर्थात स्त्रियां। स्त्रियों के सन्दर्भ में मानवाधिकार की भूमिका और भी विशिष्ट हो जाती है। आजादी एक स्थिति है, अधिकार एक सुविधा। किशन पटनायक का मानना है कि

• समीक्षक एवं युवा लेखिका, पांडिचेरी

"आधुनिक राज्य में सत्ता का केन्द्रीकरण इतना अधिक है कि नागरिक अधिकारों के अभाव में मनुष्य के लिये आत्मसम्मान पूर्ण जीवन जीना नामुमकिन है।" (2) स्त्री सशक्तिकरण और मानवाधिकार के सम्बन्ध एक दूसरे पर निर्भर हैं। समाज में स्त्रियों के विकास एवं उन्नति में मानवाधिकार एक औजार की तरह है। अब यह समझना जरूरी हो जाता है कि इसकी आवश्यकता क्यों पड़ी? क्या स्त्रियों को मनुष्यों में शामिल नही किया जाता? क्या हमारे समाज में इनकी स्थिति दोयम दर्जे की नहीं है? देवी स्वरूपा की स्थिति बनाकर भी स्त्रियों के साथ क्या क्रूरतापूर्ण व्यवहार नहीं होता? रोहिणी अग्रवाल कहती हैं कि "मनुष्य होने का स्वाद स्त्री ने कभी चखा ही नहीं उसके अनुभव जगत में हीन–पराधीन होने के जो दंष और अपमान हैं, वे दूसरे पलड़े पर बैठे पुरुष के अनुभव जगत के दर्प अहं और स्वामित्व भाव से मेल नहीं खाते।" (3) किसी भी देश और समाज में विकास तभी प्रभावी होता है जब उसे बिना किसी भेदभाव के सभी वर्गों के लिये लागू किया जाय। जीवन को समुन्नत बनाने के सभी अवसर समानरूप से बिना किसी पूर्वाग्रह के प्रदान किए जाए।

वास्तविकता यह है कि लैंगिक भेदभाव विकसित–अविकसित सभी प्रकार के समाज में स्थूल या सूक्ष्म रूप में विद्यमान है। और जब तक समान अवसरों को स्त्रियों के लिये व्यापक स्तर पर उपलब्ध नहीं कराया जाता तब तक कोई सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक उपलब्धि, राजनैतिक सत्ता समाज में विकास का मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकती। "1995 में बीजिंग में महिलाओं के चौथे विश्व सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र महासचिव बुतरस घाली ने आग्रह किया कि विश्व को महिला की दृश्टि से देखो। महिला एवं पुरुष वर्तमान में असमान विश्व में रह रहे हैं। एक भी राष्ट्र ऐसा नहीं है जहाँ महिला एवं पुरुष पूर्ण समानता की स्थितियों का उपभोग करते हों। विश्व के सभी हिस्सों में महिलाओं के प्रति भेदभाव के दृष्टिकोण, व्यवहार एवं प्रवृतियां जनजीवन में व्यापक स्तर पर प्रचलित है। महासचिव की यह टिप्पणी सभी देशों के वास्तविक स्वरूप को उजागर करती है।" (4)

इस परिप्रेक्ष्य में स्त्री के जीवन को समुन्नत करने के लिये मानवाधिकारों की अनिवार्यता भी महसूस होती है। इन अधिकारों की सहायता से स्त्री सशक्तिकरण की प्रक्रिया तेज हो सकती है पर चूंकि स्त्री विकास के नाम पर हमारे देश में ढेरों कानून बने ही हैं तो यह सशक्तिकरण क्यों और किस लिये ? 1985 में पहली बार 'डेवलपमेन्ट अल्टरनेटिव विद वीमेन' ने यह दृष्टिकोण नयी सदी की महिलाओं के लिये रखा। 90 के दशक में पश्चिमी देशों में इसे बड़े पैमाने पर समर्थन मिला। भारत में केन्द्र सरकार ने 1997–2002 की 9वीं पंचवर्षीय योजना में अपने कल्याणकारी कार्यक्रमों में सशक्तिकरण कार्यक्रम को स्थान दिया तथा 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया। वास्तव

में "महिला सशक्तिकरण की संकल्पना उन महत्वपूर्ण बहसों का प्रतिफल है, जो खासकर तीसरी दुनिया की स्त्रीवादियों ने पूरे विश्व में महिला आन्दोलनों द्वारा की। .... यह एक प्रक्रिया भी है और प्रक्रिया का परिणाम भी।"(5)

सशक्तिकरण को समझने के लिये कोई विशिष्ट मानक तैयार नहीं किया गया है, इसको समझने के लिये वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजकीय बदलाव के संकेतों का सहारा लिया जाता हैं। इसके दो स्तर है– पहला वैयक्तिक तथा दूसरा सामूहिक। वैयक्तिक सशक्तिकरण आत्मसम्मान, स्वाभिमान तथा आत्म–चिन्तन के माध्यम से सम्भव है जबकि सामूहिक सशक्तिकरण का उद्देश्य सामूहिक चेतना, मूल्यों तथा व्यवहार में बदलाव लाना है। तो इस तरह समाज के पूर्ण विकास के लिये स्त्री सशक्तिकरण के मुद्दे को हाशिये पर डालना ठीक नहीं होगा क्योंकि शोशित, वंचित स्त्री को नगरों में भी देखकर ग्रामों में निवास करने वाली स्त्रियों की स्थिति का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। यह तो सर्वविदित है कि गाँवों के खोते जाने का प्रमुख कारण औद्योगीकरण है। यह बढ़ता औद्योगीकरण तथा पूँजीवाद स्त्रीजगत को भी प्रभावित कर रहा है। आज के इस बदलते हुए माहौल में स्त्रियों की विषेशकर ग्रामीण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति विरोधाभासी दशाओं से गुजरती हुई दिखायी देती है।

कारपोरेट, बैंकिंग, राजनीति, शिक्षा जगत व अभिनय जगत आदि में बड़ी संख्या में स्त्रियों को देखा जा सकता है। इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से ये स्त्री छवि घर–घर दस्तक भी दे चुकी है परन्तु ध्यान से देखें तो ये समस्त छवियाँ मध्यवर्ग या उच्चवर्ग से सम्बन्धित है। इनमें ग्रामीण नारी तो कहीं दृष्टिगत नहीं होती जबकि संख्या में ये ज्यादा हैं। देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने में इस वर्ग का ज्यादा योगदान है। भारत की जनगणना 2001 के अनुसार महिला श्रमिकों की संख्या देश की कुल महिलाओं का 25.6 है। ग्रामीण क्षेत्रों की महिला श्रमिकों में से 87 प्रतिशत खेतिहर मजदूर हैं। सच्चाई यह है कि महिला श्रमिकों को पुरुष की तुलना में कम पारिश्रमिक मिलता है वहीं कार्यक्षेत्र में छेड़छाड़ की घटनाएं भी होती हैं।

"भारत में सबसे अधिक मुसीबत कृषि क्षेत्र में ग्रामीण स्त्रियों को झेलनी पड़ती है।औरतों की भलाई के लिये जो भी कानून बने हैं उसकी जानकारी इन्हें होती ही नहीं हालांकि पचायतों में औरतों की पहुँच सम्भव हो सकी है फिर भी बड़ी संख्या में वे शिक्षा, स्वास्थ्य तथा पोषण से वंचित हैं।" (6)

अतः महिलाओं को विकास, पर्यावरण व स्वास्थ्य आदि के सवालों पर भी जागृत एवं सगंठित किया जाना चाहिए। व्यापक हित के सवालों पर इन दिनों स्त्री–संगठनों

एवं स्वयंसेवी संगठनों के बीच तालमेल बढ़ा है। स्त्रियों में जागरूकता आयी है पर अभी भी स्त्री–सशक्तिकरण का मसला भारत में आन्दोलन का रूप नहीं ले पा रहा है।

आज तो स्त्रियों के प्रति किये गये अपराध चरम–सीमा पर हैं। तीन महीने की बच्ची से लेकर साठ वर्ष की वृद्धा तक बलात्कार की शिकार होती हैं। महिला से जुड़े अपराधों में बलात्कार तथा दहेज हत्या तो है ही तमाम और भी मसले हैं जिन्हें यह समाज नजरअन्दाज कर स्त्री के मानवाधिकारों के हनन में सहयोग देता है। काश, उसे पहले पूर्ण इन्सान होने का पुरुषों के बराबर बचपन जीने या पढ़ने, अपनी मर्जी के कपड़े पहनने, वर चुनने, नौकरी करने या न करने, बच्चे पैदा करने या न करने का घर के बाहर बिना किसी डर या भय के चलने का अधिकार दे दिया जाता तो आज स्त्री सशक्तिकरण जैसे मुद्‌दे उत्पन्न ही नहीं होते। "ट्रेन में सफर करते वक्त सहयात्रियों के बीच स्वयं को अकेली स्त्री यात्री पाकर असुरक्षा बोध से सनसना उठना दरअसल पूरी सामाजिक व्यवस्था पर एक सवाल है।" (7)

परम्पराएं समाज आधारित होती हैं जबकि भारत का समाज जाति और धर्म पर आधारित है पितृसत्तात्मक भी है। यह समाज कानून भी ऐसा बनाता है जिससे स्त्रियां ज्यादा लाभान्वित न हो सके । 2005 में पारित घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम के तहत स्त्री पुलिस स्टेशन जाकर पति या घर के अन्य सदस्यों के खिलाफ रिपोर्ट कर सकती है, पर सोचने वाली बात यह है कि इस कदम के बाद स्त्री के सामने अन्य विकल्प क्या होगा? व्यभिचारी व्यक्ति की पत्नी को पति पर मुकदमा करने का अधिकार नहीं है, वह सिर्फ अलग होकर गुजारा भत्ता माँग सकती है, या तलाक ले सकती है। जबकि ऐसे सैकड़ों मुकदमे हैं, जिनमें पति ने पत्नी के अनैतिक सम्बन्ध के सन्देह के आधार पर या ठोस सबुतों के आधार पर पत्नी की हत्या कर दी। बहुत से मुकदमें ऐसे भी हैं जिनमें पति खुद व्यभिचार में लिप्त है पर विरोध करने पर वह पत्नी की हत्या कर देता है। दहेज हत्याएं सामाजिक संरचना में अन्याय की द्योतक हैं जो प्रतिवर्ष अपनी संख्या में वृद्धि पा रही हैं।

हमारे समाज का बड़ा हिस्सा इस सकंट से आँख मूंदे हुये है। हमारे मुहल्ले–पड़ोस और घर–कुटुम्ब में स्त्रियां जलती रहती हैं और हम इसे 'व्यक्तिगत मामला' समझते हैं। समाज को यह समझना चाहिये कि स्त्रियां मानव जाति का लगभग आधा हिस्सा है और पूरे वर्ग पूरी जाति के मसले 'व्यक्तिगत' नहीं होते। "ये हत्यायें परिवार में मानवीय सम्बन्धों के चिंताजनक विघटन और मानवता में भारी गिरावट के चिन्ह है।" (8)

महिला सशक्तिकरण में एक और बाधक तत्व है– भ्रूण हत्या। स्त्री को जन्म न

लेने देने के लिये समाज वैज्ञानिक तकनीक का सहारा ले रहा है। ''लिंग पता करके बेटियों को कोख में मार देने की वैज्ञानिक प्रथा हमारे सांस्कृतिक देश हिन्दुस्तान में इन दिनों जोरों पर है। हालांकि इसे रोकने के लिये कानून बने हैं, मगर चिकित्सकों और पालकों की सांठ–गांठ से सब सम्भव है।'' (9) जाहिर है कि धर्म, परम्पराओं के नाम पर हम कानून और स्त्री के मानवाधिकारों का हनन कर रहे हैं। जबकि स्त्री सशक्तिकरण हेतु एक जरूरी तत्व है– लैंगिक सन्तुलन। भ्रूण हत्या से हमारे समाज में लैंगिक विषमता पनप रही है। लैंगिक समता के संवर्धन की परियोजना के तहत भारत सरकार ने 2007 में लैंगिक विकास सूचकांक और लैंगिक सशक्तिकरण मापक की गतिविधि को अपनाया। लैंगिक विकास सूचकांक स्त्री और पुरुष के बीच व्याप्त विषमताओं को परिलक्षित करने हेतु औसत उपलब्धि को समायोजित करता है।

''वर्ष 1998 से 2008 की तुलना करने पर पाया गया कि समूचे भारत में लैंगिक विकास सूचकांक 1998 में 0.514 था जो 2008 में बढ़कर 0.59 हो गया, अर्थात् स्त्री–पुरुष विशमता थोड़ी घटी।'' (10)

स्त्रियों में जागरूकता शिक्षा के प्रचार–प्रसार से ही आयेगी। ऐसे कई उदाहरण है, जिनमें स्त्री ने हिम्मत करके मुष्किलों का सामना किया। राजस्थान के नागौर जिले की चावली गाँव में साठ वर्षीय जमना स्त्री सशक्तिकरण की मिसाल बन गयी है। गाँव के सरकारी स्कूल में पोशाहार बनाने वाली जमना को छुआ–छूत का षिकार होना पड़ा। जमना ने जातीय भेदभाव की शिकायत राष्ट्रीय महिला आयोग से की तो विरोधी परास्त हो गये। अमरपाल सिंह वर्मा लिखते है कि ''वह चौदह साल की उम्र में ब्याही गयी और चालीस की उम्र में विधवा हो गयी। गाँव के झोपड़े में अकेली रहती है। जमना के प्रयासों से करीब दो सौ विधवाओं की पेंशन मंजूर हुई है। लड़कियाँ स्कूल जाने लगी हैं।'' (11) हालांकि ऐसे उदाहरण गिने चुने है पर इनसे प्रेरणा पाकर बाकी स्त्रियों में आत्मविश्वास तो बढ़ता ही है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग तथा राष्ट्रीय महिला आयोग इस क्षेत्र में अपना सहयोग दे रहे हैं पर भारत के दूर–दराज के आदिवासी क्षेत्रों में अभी–भी घनघोर अंधेरा है। ''उड़ीसा के एक आदिवासी इलाके में ऐसा रिवाज है कि आठ साल के लड़के की शादी अठारह–बीस साल की लड़की से कर दी जाती है, क्योंकि वहाँ खेतों में काम करने और घर का काम करने के लिये उन्हें जवान लड़की चाहिए। मध्य प्रदेश के सिद्दी जिले में छोटी आयु में लड़के–लड़की की शादी हो जाती है, पर योग्यता ससुर की परखी जाती है। दोनों ही मामलों में शादी के बाद उस बहू से ससुर शारीरिक सम्बन्ध रखता है।'' (12)

जबकि विवाह प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला होता है। अपने विवाह का निर्णय स्वयं लेना यह तो अन्तराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त मानवाधिकार है। ज्ञातव्य है, कि "मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा–1948 मानवाधिकारों के सम्बन्ध में प्रथम अन्तराष्ट्रीय दस्तावेज है जिसका घोशणा–पत्र सभी व्यस्क स्त्री–पुरुषों को बिना किसी जाति, धर्म या राष्ट्रीयता की रुकावटों के आपस में स्वतन्त्र सहमति से विवाह करने तथा परिवार स्थापित करने का अधिकार प्रदत्त करता है।" (13) उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, पजांब, दिल्ली आदि राज्यों में बढ़ रही 'आनर किलिंग या सम्मान हेतु हत्या' स्त्री के इस मानवाधिकार का हनन नहीं तो और क्या है ? सम्मान के लिये हत्याओं एवं प्रताड़नाओं के मामलो के वास्तविक आकड़े प्राप्त नहीं होते है, क्योंकि अधिकतर मामले सामान्य दुर्घटना अथवा आत्महत्या के रूप में वर्गीकृत कर दिये जाते है। "हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश के गावों में लड़कियों के प्रेम–विवाह करने पर की जाने वाली 'ऑनर किलिंग' के पीछे 'जाति' ही प्रमुख है। दूसरी जाति के लड़के से प्रेम हो गया तो पंचायत फैसला देती है, दोनों को मार दो।" (14)

भ्रूण हत्या, सम्मान की रक्षा हेतु हत्या, दहेज हत्या, यह सभी पितृ सत्तात्मक तथा सामन्तवादी विचारधारा के कारण पनपी समस्याएं है। स्त्री–सशक्तिकरण का लक्ष्य इसी विचारधारा को चुनौती देना है जो लिंगभेद तथा सामाजिक विषमता को बढ़ाकर स्त्री के मानवधिकारों का उल्लंघन करती है। "पहले लोग जाति तोड़ने पर या जाति के बाहर विवाह करने पर ज्यादा से ज्यादा परिवार से बाहर कर देते थे। आज शिक्षित होने के बाद वे हत्यायें करने लगे हैं। क्यों? दरअसल कानून बनाने वाले उनका पालन कराने वाले सभी के सभी पितृसत्ता जाति व धर्म के पोशक हैं।" (15)

इस यथास्थिति को भंग करने के लिये सरकार भी प्रयासरत है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तथा राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा हर सम्भव प्रयास किये जा रहे है। इसके लिये महिलाओं के विरुद्ध सर्वभेदभाव समापन समझौता जिसे 'सीडा' के नाम से जाना जाता है, भारत सरकार ने 25 जून, 1993 को कुछ संषोधनों के साथ लागू कर दिया। अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर 8 मार्च, 2010 को राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण मिशन की स्थापना की गयी। जिसका लक्ष्य यह है कि महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक सशक्तिकरण में बाधक तत्वों को पूर्णरूपेण मिटाया जाए। इसी तरह भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मत्रांलय की दृष्टि है, सषक्त महिलाएं सम्मान से जियें और हिंसा मुक्त वातावरण में देश के विकास में समान सहभागी के रूप में अपना योगदान दें। इसके अतिरिक्त सरकार ने दो नये और प्रयास भी किये है। पहली है, 'सबला', राजीव गाँधी किशोरी सशक्तिकरण योजना, जो 11–18 वर्ष की किशोरियों के

पोशाहार और स्वास्थ्य पर ध्यान केन्द्रित है इससे उन्हें जीवन कौशल, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण आदि देकर सशक्त बनाती है। दूसरी है, 'पहल', इन्दिरा गाँधी मातष्त्व सहयोग योजना।

कुछ दिनों पहले एक कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए श्रीमती सोनिया गाँधी ने भी स्त्री सशक्तिकरण पर ही बल देते हुए कहा कि ''मैं इस बात से वाकिफ हूँ, शिक्षा और सामाजिक जागरूकता नहीं होने के कारण महिलाओं का जीवन संघर्ष से भरा है। हमें इसे समाप्त करना होगा और महिलाओं की पूर्ण क्षमता और सृजनात्मकता का इस्तेमाल करना होगा।'' (16)

देश में कानूनों की कमी नहीं है, परन्तु प्रश्न तो मानसिकता का है। जरूरत है, कानूनों का पालन करने वाले तथा करवाने वालों का निष्ठापूर्वक काम करना। 'अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजै' जैसे लोकगीत गाने वाले समाज के लोग महज कानूनों के बन जाने से बदलने वाले नहीं हैं। यह ठीक है, कि ''आधुनिक समाज में पहले की अपेक्षा स्त्री के लिए अधिक अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं, किन्तु अब भी उसको अपना पहला कदम सामाजिक विद्वेश के बीच ही उठाना पड़ता है।''(17) इन परिस्थितियों से बाहर आने के लिए उन्हें मदद की आवश्यकता है। स्त्रियों को तब तक उनके अधिकार प्राप्त नहीं होंगे जब तक वे स्वयं अपनी स्थिति मजबूत नहीं करेंगी। स्त्रियों को शिक्षित तथा प्रशिक्षित होना होगा। दहेज प्रथा, सती–प्रथा, बाल–विवाह, भ्रूण हत्या, सम्मान की रक्षा हेतु हत्या, घरेलू हिंसा आदि के खिलाफ एकजुट होना होगा। सचेत तथा जागरूक स्त्री ही अपने मानवाधिकारों को प्राप्त करके सशक्त हो सकेगी क्योंकि समाज और देश की तरक्की का रास्ता स्त्री सशक्तिकरण से होकर गुजरता है।

सन्दर्भसूची:–

- डा0 बिन्देश्वर पाठक, मानव अधिकार और नई दिशायें, पृष्ठ नं0 14 अंक– 2010
- किशन पटनायक, विकल्प नहीं है दुनिया पृष्ठ– 73 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- रोहिणी अग्रवाल, हंस, फरवरी 2009 पृष्ठ– 54
- लालाराम जाट, कुरुक्षेत्र, पृष्ठ– 25, मार्च– 2006
- जी0संध्या रानी, स्त्रीकाल, पृष्ठ– 44 अप्रैल– 2010

- क्षमा शर्मा, हंस, पृष्ठ– 67 मार्च– 2007
- रोहिणी अग्रवाल, हंस पृष्ठ– 53 फरवरी– 2009
- जगदीश्वर चर्तुवेदी / सुधा सिंह स्त्री अस्मिता, साहित्य विचारधारा, आनन्द प्रकाशन कोलकाता पृष्ठ– 432 2004
- निर्मला भुराड़िया, हंस पृष्ठ– 69, सितम्बर– 2005
- डा0 सुभाष शर्मा, मानव अधिकार नई दिशायें, पृष्ठ– 25 अंक– 2010
- अमरपाल सिंह वर्मा, राजस्थान पत्रिका पृष्ठ– 3,24 अक्टूबर– 2010

S रमणिका गुप्ता, अन्यथा, पृष्ठ– 201, जून– 2008

S डा0 प्रीति सक्सेना, मानव अधिकार नई दिशायें–पृष्ठ– 74 अंक– 2010

S रमणिका गुप्ता, अन्यथा जून 2008 पृष्ठ– 201

S रमणिका गुप्ता, अन्यथा जून 2008 पृष्ठ– 202

S नवभारत टाइम्स, 12 मई 2011 पृष्ठ– 11

S डा0 प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता (सीमोन द बोउवार की द सेकेण्ड सेक्स का अनुवाद) हिन्द पाकेट बुक्स दिल्ली– 2002 पृष्ठ– 384

• • •

लेख

भ्रष्टाचार, मीडिया और मानव अधिकार

• अंजली सिन्हा *

बात बीती गर्मियों की है। दिल्ली के जंतर–मंतर, रामलीला मैदान और देशभर में टेलीविजन के पर्दे पर एक साथ अगस्त क्रांति और दूसरी आजादी का हल्ला था। राजधानी के हाशिए पर स्थित एक उपनगर के मेरे फ्लैट में कुछ मरम्मत का काम चल रहा था जिसके लिए हार्डवेयर का सामान लेने हेतु मुझे स्थानीय बाजार में जाना पड़ा। बाजार में प्रवेश के ऐन नुक्कड़ पर पचास–एक लोग जमा थे करीब हाथ में बैनर लिए, सिर पर टोपी पहने, अन्ना–अन्ना के नारे लगाते लोग दुकानदारों के कब्जे से सड़क पहले से ही तंग थी जिसे वहां भीड़ की वजह से बंद होना ही था। किसी तरह हम वापस मुड़कर आगे के लोगों का अनुसरण करते काफी घूम कर दूसरे संकरे गलियारे से घमते हुए बाजार तक पहुंच पाए। एक–दो दुकान छोड़ने के बाद एक जो थोड़ी ठीक–ठाक दुकान दिखी उसमें मैं और मेरे पति दोनों घुस गए। काउंटर के पीछे बैठे सज्जन, दुकान के मालिक, माथे पर लंबा तिलक लगाए फोन पर जोर–जोर से बड़े जोश के साथ सभा के बेहद सफल होने और लोगों में आक्रोश भरा होने की कहीं जानकारी दे रहे थे। संभवतः नुक्कर पर चल रही सभी के कर्ताधर्ताओं में से वह एक थे और उनकी बातों से प्रकट होता था कि सभी अब तक समाप्त हो चुकी थी। दुकानदार महोदय जब फोन से निवृत्त हुए तो हमने उनसे अपनी जरूरत के सामान की कीमतों और गुणवत्ता की जानकारी ली। उन्होंने आश्वस्त किया कि उनकी कीमतें पूरे बाजार से कम हैं और उनकी दुकान में एक बार आने वाला ग्राहक बार–बार वहीं पहुंचता है। सब तय हो जाने के बाद मैंने उनसे रसीद देने को कहा। उन्होंने हंसते हुए टालने की कोशिश की कि आप रसीद लेकर क्या करेंगे जब हमने जिद की तब उन्होंने गंभीर होकर कहा कि तब कीमत बढ़ जाएगी साढ़े तेरह प्रतिशत जयादा लगेंगे। हमने पूछा 'क्यों?' उनका उत्तर था वैट और

* स्वतंत्र पत्रकार एवं समीक्षक, नोएडा

सरचार्ज मिलकर 13.5 प्रतिशत। आपने पहले जोड़कर क्यों नहीं बताया?' 'अरे बहन जी, आपके फायदे के लिए कह रहा हूं। इसीलिए तो कह रहा हूं कि रसीद के लिए जिद न करें बेकार के पैसे बर्बाद होंगे। न मेरा फायदा होगा न आपका, सब सरकारी खाते में चले जाएंगे। अब तक मेरा मन बहुत खिन्न हो चुका था। फिर भी मैंने शांत रहने की कोशिश करते हुए कहा, बंधु आपने सामान की कीमत में सब कुछ शामिल किया। उसकी लागत, भाड़ा, दुकान केखर्चे, अपना मुनाफा। तो फिर आपने टैक्स शामिल करके कीमत क्यों नहीं बताई अभी तो आप फोन पर भ्रष्टाचार को दूर करने की बात कर रहे थे।' 'अब तक उसके चेहरे का रंग बदल चुका था। अरे मेम, कैसी बात करती हैं आप, टैक्स नहीं जोड़ा आपके फायदे के लिए आप इल्जाम मेरे ऊपर ठोक रही हैं। भ्रष्टाचार ....। भ्रष्टाचार हम करते हैं कि वे लोग ....।'

इस निजी प्रकरण के साथ अपनी बात शुरू करने का औचित्य केवल भ्रष्टाचार के मुद्दे को सही परिप्रेक्ष्य देने की कोशिश है। आखिर भ्रष्टाचार है क्या और भ्रष्टाचार करता कौन है? इसकी उत्पत्ति कैसे होती है? सर्वमान्य बात यह है कि सत्ता और ताकत जिनके पास होती है वे उनका दुरूपयोग ओर भगष्टाचार करने में समर्थ होते हैं। इक्कीसवीं सदी के आज के भारत में उदारीकरण के दो दशकों के उपरांत सत्ता के कई नए ठीहे पैदा हो गए हैं। इसलिए यह मान्यता कि सत्ता और ताकत केवल राजनेताओं, सरकारी निकायों ओर कर्मचारियों तक सीमित है, बहुत पुरानी पड़ चुकी है। अब उसे नए तरीके से परिभाषित करने की जरूरत है। यदि केवल सत्ता अथवा ताकत के दुरूपायोग की बात करें तो ताकत सरकारी निकायों से निकल कर अब व्यापारियों और पूंजीपतियों, जनमत को प्रभावित करने वाली मीडिया और एनजीओ जैसे निजी निकायों–उपक्रमों तक फैल चुकी है। यादि भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में नवउदारवाद के इन उपकरणों का भी बड़ा योगदान है। इसलिए जब सरकार यह कहती है कि व्यावसायिक जगहों पर फैले भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना जरूरी है तो उसकी बात को सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता। लेखिका का उपरोक्त अनुभव वस्तुतः हर उस नागरिक का अनुभव वस्तुतः हर उस नागरिक का अनुभव होगा जिसका बाजार से कभी न कभी वास्ता पड़ा हो। प्रायः हम ऐसे मामलों की अनदेखी कर जाते हैं अथवा उसमें अंतर्निहित तुच्छ लाभ पर भीतर ही भीतर मुदित होते हैं। उपरोक्त उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करने के लिए पर्याप्त है कि भ्रष्टाचार के ठिकाने केवल सरकारी दफ्तरों का सीमित नहीं हैं। उनका विस्तार अनेक नए क्षेत्रों में हो चुका है।

यह कहना कि भ्रष्टाचार एक नयी प्रवृत्ति है सर्वथा गलत है। दुनिया भर के ज्ञात इतिहास में यह किसी न किसी रूप में सदैव मौजूद रहा है। वस्तुतः यह मनुष्य के

आचार–विचार को अनुशासित करने के लिए अलग–अलग समाजों में स्थान और काल सापेक्ष नियम, कायदे उन समाजों के चिंतन और मननशील लोगों द्वारा बनाए गए जिन्हें आगे चलकर धार्मिक संहिताओं का रूप दे दिया गया। इसलिए देशकाल के अनुसार भ्रष्ट आचरण के अर्थ भिन्न–भिन्न रहे। उदाहरण के लिए भारत जैसे समाज के संदर्भ में वर्णाश्रम व्यवस्था के बाहर जाकर आचरण करना और वर्ण की कथित मर्यादाओं को तोड़ना भ्रष्टाचार मानता जा रहा। इक्कीसवीं सदी के मौजूदा आधुनिक दौर में भी उत्तर भारत के अनेक इलाकों में खाप पंचायतों के फतवे कानूनशासित जनतांत्रिक भारत के भीतर विभिन्न समाजों के भ्रष्टाचार या भ्रष्ट आचरण संबंधी अलहदा और बर्बर मानदंड के द्योतक हैं। इस तरह भ्रष्टाचारा संबंधी अवधारणा परिवेश–सापेक्ष होती है। इसलिए ऊपर यह का गया कि मौजूदा बदले हुए परिवेश में भ्रष्टाचार के केन्द्रों अथवा ताकत का दुरूपयोग करने वाले केन्द्रों को और विसतृत करके देखने की जरूरत है।

भ्रष्टाचार की उत्पत्ति जहां शासन व्यवस्था के दोषों और कमियों की वजह से होती है वहीं इसका एक बड़ा कारण समाज में व्याप्त गैर–बराबरी और असमानता है। बीते दो दशकों के वैशीकरण और नव उदारवाद के दौर में यह आर्थिक गैर–बराबरी और असमानता लगातार बढ़ी है। गरीब और गरीब होते जा रहे हैं। अमीर तुलानात्मक रूप से और अमीर। बाजार रोज–बरोज नए–नए उत्पादों से लोगों को ललचाता है। यहां रेखांकित करना होगा कि जैसे–जैसे असमानता बढ़ती जाती है और उपभोक्तावाद हावी होता जाता है, पीछे छूट रहे लोग येन–केन–प्रकारेण उन उपभोक्ता वस्तुओं तक पहुंचने की आपा–धापी में शामिल हो जाते हैं। इससे भ्रष्टाचार को गति मिलती है। और यहां भ्रष्टाचारा की गुंजाइश नहीं होती वहां अपराध बढ़ते हैं, भ्रष्टाचार को गति देने वाले अन्य बड़े कारणों में राजनीतिक भ्रष्टाचार भी एक रहा है। लेकिन बीते दशक मे राजनीतिक भ्रष्टाचार भी एक रहा है। लेकिन बीते दशक में राजनीतिक भ्रष्टाचार ने अपने कई नये साथी, सहयोगी ढूंढ लिए हैं। इसलिए इसकी चर्चा हम आगे तब करेंगे जब विमर्श केन्द्र में पेड न्यूज होगा।

टीम अन्ना द्वारा संचालित भ्रष्टाचार विरोधी ताजा मुहिम में शहरी मध्य वर्ग ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। इस आंदेलन को समर्थक और जनाधार यही वर्ग था। समाज का पढ़ा–लिखा और मुखर तबका होने के कारण यह किसी मुछ्दे पर राय बनाने में आमतौर पर सर्वाधिक प्रभावी भूमिका निभाता है। टेलीविजन चैनल जब भी किसी विचारा पर मत संग्रह करते हैं। यह बहसें आयोजित करते हैं तो ये मध्यवर्ग अथवा सिविल सोसायटी की ही राय लेते हैं। मसलन एनजीओ चलाने वाले, खिलाड़ी, अभिनेता, विभिन्न सफेदपोश पेशों से जुड़े लोग, पत्रकार बड़े संस्थानों के छात्र आदि। मध्यवर्ग के अधिकांश

लोग सक्रिय राजनीति से दूर ही रहना पसंद करते हैं– नो पॉलिटिक्स प्लीज। पॉलिटिक्स इज लास्ट रिफ्यूज ऑफ स्काउनड्रेल्स आदि उनके प्रिय कथन हैं। इसीलिए अन्ना के मीडिया प्रेरित आंदेलन में मध्यम वर्ग के भारी हिस्सेदारी ने लोगों को चकित, भ्रमित और विह्वल किया। एक कार से यह ऐतिहासिक और अभूतपूर्व घटना थी। इस मुहिम में मध्यम वर्ग की अति सक्रियता को पिछले बीस वर्षों के दौरान उसके आकार सामाजिक–आर्थिक नीति लागू होने के बाद से ही आर्थिक विमर्श में मध्यवर्ग को काफी महत्त्व दिया जाने लगा था। विदेशी निवेशकों को रिझाने के लिए सरकार और मीडिया ने मध्यवर्ग की संख्या को बढ़ा–चढ़ा कर बताना शुरू किया था। सही संख्या का पता लगाने के लिए कई देशी विदेशी संस्थाओं ने सर्वोक्षण किए। इन प्रयासों के पीछे क्रय–शक्ति और उपभोग–क्षमता का पता लगाना था ताकि बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने माल और सेवाओं के उपभोक्ताओं का सही–सही अंदाजा लगा सकें। यह काफी कठिन काम था क्योंकि उस दौरान सीमित आमदनी के चलते मध्यम वर्ग के जीवनस्तर और कार्य व्यवहार में काफी भिन्नता थी। ढाई दशक पहले वास्तविक जीवन में और फिल्मों में भी ठेठ मध्यवर्गीय चरित्र का जीवनस्तर आज की तुलना में भला क्या था? कितने मध्यवर्गीय परिवार वाशिंग मशीन, माइक्रोवेव ओवन, कार और होली डे पैकेज का उपभोग करते थे? लेकिन आज स्थिति भिन्न है। मध्यवर्ग की संख्या में वृद्धि और उनकी खुशहाली के लिए सरकार अपनी पीठ थपथपाती है और इसे अपनी नीतियों की सफलता का प्रमाण बताती है तो यह ठीक ही है। विजय सुपर स्कूटर से लेकर नए मॉडल की गाड़ियों तक, पलस्तर झड़पते किराये के मकान से आलीशान अपार्टमेंट के स्वामित्व तक तथा सरकारी स्कूलों–अस्पतालों से संपन्न पांच सितारों स्कूलों–अस्पतालों तक की यात्रा जितनी तेजी से पूरी हुई, उसके बारे में 1990 से पहले किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। नब्बे के दशक के पूर्वार्द्ध में मध्यवर्ग के विभिन्न हिस्सों ने नयी आर्थिक नीतियों का प्रबल विरोध किया था, जिनमें सार्वजनिक क्षेत्र और सरकारी विभागों के कर्मचारी, व्यापारी, शिक्षक, छात्र तथा पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और पेशेवरों का एक हिस्सा शामिल था, आज मध्यम वर्ग के विरोध का वह स्वर कहीं दूर–दूर तक सुनाई नहीं पड़ता है, उसकी जगह अब शाइनिंग इंडिया', 'मेरा भारत महान', 'आई लव माई इंडिया', जय हो की अनुगूंज आ रही है। ऐसा कैसे हुआ? क्योंकि शासन तंत्र ने यह समझ लिया था कि मध्यवर्ग को अपनी तरफ मोड़ने के लिए उसकी आय बढ़ाना जरूरी है। इसलिए समावेशी विकास के नारों के बीच ऐसी नीतियां अमल में लाई गई जिससे उनकी आमदनी बढ़े

लेख

अपराधी महिलाओं के मानव अधिकार

• डॉ0 अजय भूपेन्द्र जायसवाल

नारी प्रकृति की अनुपम कृति है जो विविध रूपों में समाज को धारण करती है। दायित्वों का निर्वहन और समर्पण उसकी स्वाभाविक प्रकृति है। इसलिए नारी को दया, करुणा, ममता, क्षमा, सहनशीलता, त्याग व प्रेम की प्रतिमूर्ति कहा जाता है। मनुस्मृति में नारी को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए कहा गया है कि, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र: देवता:।'

कोमलांगी होने के बावजूद भी नारी में अतुलित शक्ति विद्यमान है, किन्तु अपनी सहनशीलता के कारण भारतीय समाज में नारी का सदियों से शोषण होता आया है। नारी के कोख से जन्म लेकर भी पुरुष ने उसे भोग–विलास की वस्तु बना दिया, यहां तक कि राज संधियों में उपहार के रूप में भी नारी का उपयोग किया गया। नारी के प्रति पुरुष की यह विडम्बना सदियों से चली आई है। संवेदनशील और भावना प्रधान नारी जब–जब सामाजिक बंधनों को तोड़कर बाहर आई है तब–तब या तो वह वीरांगना साध्वी अथवा समाज सुधारक बनी है या समाज से प्रतिशोध लेने के लिए दुर्दान्त/कुख्यात अपराधी।

महिलाओं में बढ़ती अपराध प्रवृत्ति आधुनिक समाज की ज्वलन्त समस्या है। इसके पीछे यही कारण है कि आज की महिलाओं के समक्ष अनेक सामाजिक–आर्थिक समस्याएं मुंह फाड़े खड़ी हैं जिसके कारण वह कई बार अनैतिकता का मार्ग अपना लेती हैं अथवा अपनाने हेतु विवश कर दी जाती है और वह समाज के सामने एक समस्या बन जाती हैं।

आज का मानव जहां एक ओर वैज्ञानिक एवं भौतिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ है तो दूसरी ओर अपराध क्षेत्र की ओर भी उन्मुख हो रहा है। यही कारण है कि वर्तमान

• सहायक प्रोफेसर विधि विभाग, वी.एस.डी. कालेज, सी.एस.जे.एम. विश्वविद्यालय, कानपुर

में पुरुष अपराधियों के साथ–साथ सभी समाजों में महिला अपराधियों की संख्या भी बढ़ी है जो एक शोचनीय विषय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में महिलाओं की स्थिति में आशातीत सुधार हुआ है, किन्तु साथ ही महिलाओं में अपराध की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने महिलाओं को विलासी बनाया है तथा एक अच्छा जीवन जीने की लालसा ने नारी को पतन के गर्त में ढकेला है। महिलाओं द्वारा किये जाने वाले अपराधों की संख्या एवं स्वरूप में परिवर्तन का कारण औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के साथ–साथ आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति भी है। इसी प्रगति एवं परिवर्तन के कारण ही प्राचीन काल की अपेक्षा वर्तमान काल में महिलाओं में अपराध–प्रवृत्ति बढ़ी है।

महिला स्वभावतः पुरुष की अपेक्षा अधिक संवेदनशील और भावुक होती है। अपने आपराधिक कृत्य के लिए सजा भुगतने के बाद भी परिवार, स्वजनों, समुदाय व समाज द्वारा तिरस्कृत और परित्याग किये जाने की स्थिति में उसके व्यक्तित्व में दरारे पड़ जाने की आशंका बनी रहती है। अतः अपराधी महिलाओं की समस्या के इस पक्ष पर विचार करना बहुत आवश्यक है कि वर्तमान में अपराधी महिलाओं के पुनर्वास की क्या स्थिति है और उसे कैसे मानवीय किया जा सकता है?

सामाजिक तथा मानवीय दोनों ही दृष्टिकोणों से कारागार से मुक्त होने के पश्चात् अपराधी महिलाओं का पुनर्वास अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। भारतीय संविधान में सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों के रूप में निर्धारण हेतु राज्यों को नीति–निर्धारक निर्देश दिये गये हैं जिनमें दलितों, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों तथा सामाजिक व्याधियों से पीड़ितों के पुनर्वास के लिए योजनाएं बनाना तथा उन्हें प्रभावकारी ढंग से क्रियान्वित करने जैसे लक्ष्य भी सम्मिलित किये गये हैं। परन्तु इन सभी संवैधानिक निर्देशों के होते हुए भी अपराधी महिलाओं के पुनर्वास हेतु कोई ठोस योजना नहीं है। ऐसा लगता है कि अपराधी महिलाओं के पुनर्वास की समस्या की गम्भीरता को सही ढंग से आंका ही नहीं गया है एवं उनके प्रति उपेक्षापूर्ण नीति अपनायी गयी है। यद्यपि कारागार से मुक्त महिलाएं विमुक्त बन्दी ऋण योजना, ग्रामीण महिला ऋण सहायता योजना तथा एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम जैसी योजनाओं से लाभ उठा सकती हैं, फिर भी उनके पुनर्वास की दिशा में काफी कुछ किया जाना अभी शेष है।

अपराधी महिलाओं के पुनर्वास की प्रभावी योजना में निम्नांकित बातों को ध्यान में रखना जरूरी है –

दण्ड नीति में परिवर्तन : वर्तमान समय में भारत में निरोधात्मक दण्डनीति का प्रचलन है। इस नीति के अनुसार अपराधियों को कारागारीय दण्ड देकर दो उद्देश्यों

की पूर्ति होती है – प्रथम, अपराध की पुनरावृत्ति कम होती है तथा द्वितीय, अन्य व्यक्तियों में भय की भावना उत्पन्न होती है तथा वे अपराध नहीं करते। कारागारीय दण्ड कठोर (सश्रम) तथा साधारण (अश्रम) दोनों प्रकार का होता है तथा पुरुषों व महिलाओं पर समान रूप से लागू होता है। परन्तु अपराधी महिलाओं के सन्दर्भ में यह दण्ड नीति न तो उपयोगी है और न न्यायोचित व उपयुक्त। इसका प्रमुख कारण है कि इससे निरोधात्मक नीति के दोनों में से किसी भी लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो पाती है।

(1) निरोधात्मक दण्डनीति महिला स्वभाव के अनुकूल नहीं है। अपराधी महिलाओं की कम संख्या इस तथ्य की द्योतक है कि महिलाएं अपराध करने की आदी नहीं होतीं। नारी अपराध केवल विवशता की परिस्थिति में ही करती है। स्वभाव से धार्मिक प्रवृत्ति होने के नाते वे सामाजिक व्यवस्था में अधिक विश्वास रखती हैं। अतः अपराधी महिलाओं को दण्ड की पुनरावृत्ति को रोकने व अन्य महिलाओं में भय उत्पन्न करने की दृष्टि से निरर्थक ही नहीं है, अपितु अनुचित भी है।

(2) अपराध की प्रकृति के अनुसार अपराधी (चाहे वह पुरुष है या महिला) कठोर (सश्रम) अथवा साधारण (सश्रम) दण्ड दिया जाता है। महिला की शरीर रचना ऐसी है कि वह पुरुष के समान कठोर श्रम करने में सक्षम नहीं है। अतः व्यवहार में अपराधी महिलाओं से पुरुष प्रकृति वाले कठोर कार्य कारागार में नहीं कराये जा जाने चाहिए।

(3) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक संवेदनशील एवं भावुक होती हैं। महिला स्वभाव ऐसा है कि वह भावानात्मक रूप से जितनी जल्दी उत्तेजित होती है, उतनी ही जल्दी शान्त भी हो जाती है। महिला मन आपराधिक भार को अधिक समय तक वहन नहीं कर सकता और शायद इसीलिए महिलाएं अपना अपराध बहुत शीघ्र स्वीकार कर लेती हैं। अतः महिला मानसिकता की दृष्टि से लम्बी अवधि का कारागार दण्ड महिलाओं के सन्दर्भ में सम्यक प्रतीत नहीं होता।

(4) अगर हम महिलाओं की सामाजिक भूमिका पर विचार करें तो यह पाते हैं कि मां के रूप में अगर महिला को परिवार से अलग कर दिया जाये तो केवल सन्तान पर नियंत्रण ही समाप्त नहीं हो जायेगा अपितु पूरा परिवार नष्ट हो सकता है। कारागारीय दण्ड में केवल अपराधी महिला ही दण्डित नही होती अपितु उसके बच्चे भी दण्डित होते हैं, परिवार असंयोजित होकर टूट भी हो जाता है। अतः निरोधात्मक दृष्टि से महिला को दिया जाने वाला दण्ड अपराध को रोकने के स्थान पर अपराध को और अधिक बढ़ावा देता है।

वर्तमान में महिला अपराधियों को उन्हीं कारागारों में रखा जाता है जिनमें पुरुष अपराधी रहते हैं। उत्तर प्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु तथा महाराष्ट्र में भी यद्यपि अलग महिला कारागार हैं, फिर भी अधिकतर कारागारों में महिलाओं हेतु अलग से उसी भवन में बैरक बने हुए हैं जिसमें कुख्यात अपराधी होते हैं। इन कारागारों का निर्माण अभिरक्षा के लिए किया गया है और उनमें महिला अपराधियों के लिए सुधारात्मक कार्यक्रमों को लागू नहीं किया जा सकता। ऐसे कारागारों की शताब्दियों पूर्व बनी ऊंची दीवारें ऐसा वातावरण पैदा कर देती हैं कि अपराधी महिलाएं एकाकीपन, मानसिक चिन्ता तथा मनोरोगों का शिकार हो जाती हैं और किसी पुनर्वास कार्यक्रम में रुचि नहीं लेती। अतः महिला अपराधियों हेतु अलग से कारागार बनाये जाने की आवश्यकता है जो वास्तुकला की दृष्टि से कारागार न लगे अपितु सामान्य सुधारगृह लगे। महिला बन्दीगृहों का नाम भी सुधारगृह या बन्दीगृह न होगा ऐसा होना चाहिए कि वहां रहने वाली महिलाओं के आत्म–सम्मान व अहम को ठेस न पहुंचे।

कर्मचारीगण : वर्तमान महिला बन्दीगृहों व नारी निकेतनों में जो अधिकारी व कर्मचारी हैं उन्हें बन्दी महिलाओं को सुरक्षित अभिरक्षा में रखने हेतु ही नियुक्त किया जाता है। पुनर्वास व सुधारवादी उद्देश्यों की पूर्ति में ये अधिकारी व कर्मचारी ज्यादा उपयुक्त सिद्ध नहीं हो पाते। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि महिला अपराधियों का कारागारीय दण्ड देने का उद्देश्य सुरक्षित अभिरक्षा मात्र न होकर पुनर्वास भी है। अतः ऐसे अधिकारियों व कर्मचारियों को नियुक्त किये जाने की आवश्यकता है जो सुरक्षित अभिरक्षा व पुनर्वास दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता दे सकें। अगर ऐसा सम्भव न हो तो सुधार व पुनर्वास कार्यक्रमों हेतु अलग अधिकारी व कर्मचारी नियुक्त किये जाएं। इन महिला कारागारों में अधिकारी व कर्मचारी पुरुष न होकर महिलाएं ही होनी चाहिए जिससे महिला अपराधियों की आवश्यकताओं, समस्याओं व कठिनाइयों को समझ सकें। उनसे भावनात्मक तादात्म्य स्थापित कर सकें और उन्हें पुनः अच्छी महिलाएं बनने में सहायता प्रदान कर सकें।

अपराधी महिलाओं की व्यक्तिगत मनोचिकित्सा से सम्बन्धित पद्धतियों को अपनाकर अपराधी महिलाओं की मानसिकता को ठीक करनी चाहिए और महिला अपराधी के विचलित व्यवहार हेतु उत्तरदायी सामाजिक, आर्थिक व मनोवैज्ञानिक कारणों का पता लगाकर उसके अपराधी व्यवहार को परिवर्तित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

एक समान मनःस्थिति (मनोदशा) वाली अपराधी महिलाओं के समूह बनाए जायें फिर उन्हें अपने दुःख व संवेदना एक–दूसरे से बांटने व निःसंकोच प्रकट करने हेतु प्रेरित

किया जाए, ऐसे समूह कई बार आपसी सहायता से ही अपनी चिन्ता की मुक्ति व सुधार के उपाय ढूंढ लेते हैं। कारागार में अपराधी महिलाओं के लिए परामर्श एवं पथ–प्रदर्शन कार्यक्रम भी चलाया जाए ताकि उन्हें भावी जीवन की रूपरेखा तैयार करने में सहायता मिले।

महिला बन्दियों का उपयुक्त वर्गीकरण किया जाए तथा यथासम्भव विचाराधीन महिलाओं को दोषसिद्ध अपराधी महिलाओं से अलग रखा जाए। इसी प्रकार युवा व किशोर बालिकाओं को वयस्क अपराधी महिलाओं से अलग रखा जाए। व्यावसायिक प्रशिक्षण की सुविधाएं अपराधी महिलाओं को अधिकाधिक उपलब्ध करायी जानी चाहिए ताकि वे न केवल स्वावलम्बी बन सकें अपितु अपने परिवार के लिए भी कुछ बचाकर बच्चों के पालन–पोशण हेतु भेज सकें, निम्न सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि वाली महिलाओं को इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाना अत्यंत आवश्यक है। मध्यमवर्ग की अपराधी महिलाओं को आत्म–निर्भर बनने हेतु ऐसे व्यवसायों में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिसमें वे अपने घर में ही पारिवारिक आवश्यकताओं की वस्तुएं तैयार कर सकें, उच्च सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि की अपराधी महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने का उद्देश्य पैसा कमाना न होकर उन्हें अपने मन को सुचारुपूर्ण कलात्मक कार्य में लगाना होना चाहिए। अतः अपराधी महिलाओं को दिया जाने वाले व्यावसायिक प्रशिक्षण उनकी सामाजिक– आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए।

अपराधी महिलाओं को उचित शिक्षा प्रदान करने कह व्यवस्था होनी चाहिए। अशिक्षित महिलाओं के लिए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम लागू किया जाना चाहिए। इन्हें तथा अन्य शिक्षित महिलाओं को जो शिक्षा दी जाए वह व्यावहारिक होनी चाहिए ताकि उनके आपराधिक दृष्टिकोण में बदलाव आए। उन्हें नैतिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए।

अपराधी महिलाओं को सामुदायिक जीवन से जुड़े रहने से सम्बन्धित उपाय होना चाहिए। उनके पुनर्वास के लिए यह जरूरी है कि उनका अपने परिवारजनों व नातेदारों से निरन्तर सम्पर्क बना रहे। अतः अपराधी महिलाओं को कारागार में अपने परिवारजनों व नातेदारों से मिलने की अधिक सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। उन्हें अपने परिवार में होने वाली सुखद व दुःखद घटनाओं में सम्मिलित होने के लिए कारागार से यात्रा व्यय सहित अवकाश भी दिया जाना चाहिए। उन्हें जिस प्रकार से बन्दी बनाकर रखा गया है, उस नगर में होनें वाले नैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु छूट दी जानी चाहिए। अगर अपराधी महिलाएं सामुदायिक जीवन में भाग लेती रहेंगी तो उनके पुनर्वास की समस्या अत्यन्त सरल हो जायेंगी। अपराधी महिलाओं को कलात्मक क्रियाओं को करने व उनमें संलग्न रहने का प्रशिक्षण

भी दिया जाना चाहिए। चित्रकारी, संगीत, नृत्य जैसी कलात्मक क्रियाओं द्वारा उनकी स्वस्थ मानसिकता को बनाये रखा जा सकता है।

उपरोक्त व्यवहार अपनाकर अपराधी महिलाओं को समाज के मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया जाना मानव अधिकारों का मानवता पूर्ण प्रयोग होगा और आने वाली पीढ़ी में मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता मिलेगी, जिससे एक स्वस्थ समाज की आकांक्षा पूरी होगी।

* * *

बुजुर्गों के मानवाधिकार – एक ज्वलन्त समस्या

• डॉ0 सोना दीक्षित
•• अरूण कुमार दीक्षित

आयुष्मान भव और ''जीवेम् शरद: शतम्' का आशीर्वाद देने वाले हमारे देश में वृद्धजनों को मान–सम्मान देने की सुदीर्घ परंपरा रही है। उनके जीवन भर के संचित ज्ञान और अनुभव का केवल परिवार और समाज ही नहीं, बल्कि शासन भी लाभ उठाता था। परन्तु आधुनिक परिवेश में बुजुर्गो की बढ़ती आबादी शासन के लिए चिंता का विषय बन गई है। दूसरी ओर वृद्धजन भी अनेक सामाजिक और आर्थिक समस्याओं से जूझ रहे हैं। साथ ही, बुजुर्गो की एक प्रमुख समस्या है स्वास्थ्य संबंधी देखभाल।

आजादी के समय अर्थात् वर्ष 1951 की जनगणना के मुताबिक भारत में वृद्ध व्यक्तियों की संख्या मात्र एक करोड़ 95 लाख थी जो कुल आबादी का 5.41 प्रतिशत हिस्सा मात्र थी। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में यदि देखें तो ''विश्व स्वास्थ्य संगठन'' द्वारा प्रकाशित की गई एक रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में विश्व में वृद्ध नागरिकों की संख्या 60 करोड़ के करीब है जो वर्ष 2021 तक 100 करोड़ तक पहुंच जाने के कयास लगाए गए हैं। पिछले 50 वर्षों में पूरे संसार में जीवन प्रत्याषा की दर में औसतन 20 वर्ष की वृद्धि हुई है। आज विश्व में प्रत्येक 10 लोगों में से 1 व्यक्ति 60 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु का है। औसत आयु में इसी गति से हो रही वृद्धि दर से अगले 50 वर्षों में अर्थात् वर्ष 2060 तक प्रत्येक 10 व्यक्तियों में से 5 व्यक्ति 60 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के होंगे।

बुजुर्गों के मामले में समस्या केवल उनके लालन पालन की या उनके लिए गुजारा भत्ता सुनिश्चित करने तक की सीमित नहीं है। उनके स्वास्थ्य, मनोरंजन के लिए

• वरिष्ठ प्रवक्ता एवं मानवाधिकार कार्यकर्ता डी.ई.आई. आगरा
•• वरिष्ठ अधिवक्ता एवं महासचिव, लीगल एड डवलपमेन्ट एण्ड रिसर्च एसोसिएशन आगरा

संस्थागत उपाय करने के अलावा उनकी भावनात्मक जरूरतों को पूरा करने और उससे भी बढ़कर बुढ़ापे में भी उन्हें सक्रिय बनाये रखने और उनके जीवन को अर्थपूर्ण बनाए रखने की जरूरत होती है।

बुजुर्गों की संख्या के मामले में इस दूसरे बड़े देश में कम से कम दस फीसदी बुजुर्ग ऐसे हैं जिनकी देखभाल तक करने वाला कोई नहीं है। सूनापन को साथी मान चुके इन बुजुर्गों में से ऐसे हैं, जो खुद को अकेले ही नहीं असुरक्षित भी महसूस करते हैं। आखिर हों भी क्यों न! देश में बुजुर्गों के साथ वारदातों की संख्या बढ़ती जा रही है। शायद ही कोई ऐसा दिन बीतता हो, जब बुजुर्गों के साथ होने वाले अपराध अखबार की सुर्खियां न बनते हों।

वास्तव में भारत जैसे देश में परिवार ही वह संस्था है जो बुजुर्गों को देखभाल, सेवा और सम्मान देती है। समय के साथ संयुक्त परिवारों के बिखराव व एकल परिवारों के उदय ने बुजुर्गों के जीवन में भी एक प्रकार की रिक्तता पैदा करना शुरू कर दिया है। एकल परिवारों की कुछ मजबूरियां समझ में आने वाली हैं। इसके अलावा जीवन शैली व जीवन मूल्यों में बदलाव ने भी बुजुर्गों के प्रति उपेक्षा का वातावरण पैदा किया है। अपने स्वार्थों में लिप्त संताने अपने संस्कारों को झुठलाकर व परम्पराओं व समस्याओं को भुलाकर दरिंदगी के दायरे में घुसकर अपने मां–बाप के प्रति शर्मनाक व्यवहार व क्रूरता का आचरण करते हुए देखे गये हैं। ऐसे उदाहरण भी कम नहीं हैं कि माँ–बाप की अर्जित सम्पत्ति मिलने के बाद ही संतान की तरफ से उनकी उपेक्षा का सिलसिला शुरू हो जाता है।

सम्पत्ति के लालच में मां–बाप को प्रताड़ित करने के उदाहरण भी अनेक हैं। कई बार दूर के संबंधी भी संपत्ति हथियाने के लालच में कुचक्र रचते हैं और बुजुर्गों की सुरक्षा खतरे में पड़ती है।

इस पृष्ठभूमि में जहां गलती करने वाली संतान को राह पर लाने की जरूरत होती है वहीं असहाय व असुरक्षित बुजुर्गों की देखभाल के लिए समाज की तरफ से संस्थागत उपायों की जरूरत भी उजागर होती है। यहां यह ध्यान भी रखना होगा कि देश में बुजुर्गों की संख्या निरंतर बढ़ने के कारण सरकार या समाज की तरफ से भी बड़े पैमाने पर व व्यापक प्रयासों की आवश्यकता व मांग है।

सरकार द्वारा वृद्धों की पारिवारिक और आर्थिक समस्याओं को देखते हुए क्रिमिनल प्रोसीजर कोड (सी.आर.पी.सी.) तथा प्रतिपालन एवं निर्वाह अधिनियम (एडॉप्शन एण्ड मेंटीनेन्स एक्ट) में भी कुछ वर्ष पहले ही आवश्यक संशोधन करते हुए सन्तान को वृद्ध माता–पिता के भरण–पोषण का उत्तरदायित्व उठाने के लिए कानूनी रूप से बाध्य

किया गया है जिससे बुजुर्गों को वृद्धावस्था में भरण–पोशण की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित हो सके। साथ ही सरकार द्वारा कुछ विशिष्ट योजनाओं का संचालन भी इन लोगों की विशिष्ट परिस्थितियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया गया है। हाल के वर्शों में संचालित की गई ऐसी कुछ विशेष योजनाओं में अन्नपूर्णा योजना (2001), वरिष्ठ मेडीक्लेम योजना (2008), इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (2008) मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। बुजुर्गों का सम्मान और सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा उन्हें रेल, बस एवं वायुयान किराए में छूट, वरीयता के आधार पर आरक्षण, विभिन्न मेडिकल कालेजों और प्रमुख अस्पतालों में वृद्धों के लिए अलग चिकित्सकीय विभाग में निःशुल्क/रियायती दरों पर चिकित्सा व्यवस्था, साधनविहीन व आर्थिक दृष्टि से कमजोर वृद्ध नागरिकों हेतु निःशुल्क आवास व्यवस्था, राष्ट्रीयकृत बैंकों में वृद्ध नागरिकों को बचत खातों में जमा धनराशि पर एक प्रतिशत अधिक ब्याज देने जैसे अनेक प्रावधान भी किए गए हैं।

एक विशेष कदम के रूप में 31 दिसम्बर 2007 को केन्द्र सरकार द्वारा माता–पिता एवं वरिष्ठ नागरिक देखभाल और कल्याण विधेयक को अधिनियमित कर दिया गया है। यह कानून जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर देश के सभी अन्य राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों में लागू हो गया है। इस प्रकार इस कानून के पारित हो जाने से अब मां–बाप की सेवा करना न केवल बच्चों का नैतिक व सामाजिक कर्त्तव्य हो गया है, बल्कि भारतीय संविधान द्वारा लागू कानून के अन्तर्गत यदि मां–बाप या वरिश्ठ नागरिक अपनी देखभाल करने में असमर्थ हों तो ऐसे में उनके बच्चों या रिश्तेदारों को उनकी पूरी जिम्मेदारी उठानी होगी। यदि बच्चे ऐसा करने से इन्कार करते हैं तो इसकी शिकायत सम्बन्धित प्राधिकरण से की जा सकती है और वहां से न्याय के रूप में अपने बच्चों/रिश्तेदारों से भरण–पोषण पाने के लिए व्यवस्था करायी जा सकती है।

क्र.सं.	प्राविधान/कार्यक्रम	वर्ष	उद्देश्य
1.	भारतीय संविधान का अनुच्छेद 41	1950	राज्य द्वारा बुढ़ापा, बीमारी और निःषक्तता तथा अन्य अभाव की दशाओं में लोक सहायता प्रदान कराने का उपबन्ध किया जाना।
2.	अडॉप्शन एंड मेन्टीनेन्स एक्ट की धारा 20	1956	वरिष्ठ नागरिकों द्वारा अपने बच्चों से भरण–पोषण की मांग किए जा सकने के प्रावधान निर्धारित करना।

3.	क्रिमिनल प्रोसीजर कोड की धारा 125	1973	बच्चों द्वारा अपने माता–पिता को भरण–पोषण दिए जाने की बाध्यता का निर्धारण करना।
4.	वृद्धों हेतु समन्वित कार्यक्रम	1986	वृद्धों के कल्याणार्थ विविध सेवाओं को उपलब्ध कराने हेतु स्वयंसेवी संगठनों को लागत का 90 प्रतिशत आर्थिक अनुदान उपलब्ध कराना।
5.	वृद्धजनों हेतु राष्ट्रीय परिशद	1997	वृद्ध व्यक्तियों के कल्याण हेतु नीति तैयार करने तथा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन आदि पर सरकार को सलाह देना।
6.	वृद्धों हेतु राष्ट्रीय नीति	1999	वरिष्ठजनों के प्रति परिवार समाज व सरकारके योगदान व उत्तरदायित्व को दिशा प्रदान करना।
7.	अन्नपूर्णा योजना	2001	निराश्रित वृद्धों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने हेतु नि:षुल्क खाद्यान्न उपलब्ध कराना।
8.	वरिष्ठ नागरिक बचत योजना	2004	पोस्ट ऑफिस व बैंकों के माध्यम से वृद्ध लोगों को उनकी बचत पर एक निश्चित रिटर्न देकर उन्हें आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना।
9.	रिवर्स मोर्टगेज योजना	2007	60 वर्ष व इससे अधिक आयु के वरिष्ठजनों को उनके आवास को बन्धक बनाकर प्रतिमाह समानुपातिक रूप से आयोजित धनराशि उपलब्ध कराना।
10.	माता–पिता व वरिश्ठ नागरिक भरण–पोशण और कल्याण अधिनियम	2007	बच्चों द्वारा माता–पिता व वरिश्ठजनों को उनकी देखभाल व संरक्षण के लिए कानूनी रूप से उत्तरदायी बनाना।
11.	वरिष्ठ मेडीक्लेम योजना	2008	60 से 90 वर्ष तक के वृद्धजनों के लिए विशिष्ट मेडीक्लेम की बीमा सुविधा प्रदान करना।

12.	इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था 2008 पेन्षन योजना	65 वर्ष या इससे अधिक आयु के सभी गरीब वृद्धों को नियमित मासिक पेंशन देकर आर्थिक–सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।
13.	विशिष्ट नूतन सुविधाएं	आयकर की न्यूनतम सीमा में छूट, मेडीक्लेम पर दिये गये प्रीमियम पर आयकर में छूट, रेलवे/सरकारी बसों/ वायु सेवाओं में किराए में छूट, निःषुल्क /रियायती दरों पर चिकित्सा व स्वास्थ्य सुविधाएं बैंकों में जमा राशियों पर अतिरिक्त ब्याज की सुविधाएं, निःषुल्क/ रियायती दरों पर आवासीय सुविधाएं आदि।

विभिन्न गैर सरकारी संगठन और निजी क्षेत्र के अस्पताल तथा चिकित्सा संगठन भी वरिष्ठ नागरिकों को बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए प्रयास कर रहे हैं। हेल्पएज इंडिया, हेरिटेज अस्पताल, अल्जाइमर एंड रिलेटेड डिसीसेज सोसाइटी ऑफ इण्डिया, व ''द इंटरनेशनल लाजीविअी सेंटर, द इंडियन एकेडेमी ऑफ जेरियाट्रिक्स, और जेरियाट्रिक सोसायटी ऑफ इण्डिया कुछ प्रमुख संगठन हैं, जो वृद्धों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए विषेश कार्यक्रम चला रहे हैं।

हैदराबाद स्थिति हेल्पएज अस्पताल देश का पहला बहु–विषेशज्ञता वाला जरा चिकित्सा अस्पताल है। यहां वरिष्ठ नागरिकों को कम लागत पर उचित स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, जैसे होम केयर सर्विस, हेल्पलाइन, डॉक्टर–ऑन–कॉल, हैरिटेज सीनियर क्लब, फूड–ऑन–व्हील्स, डायल–ए–ड्राइवर आदि। बंगलुरू के सेंट जॉन मेडिकल कॉलेज और अस्पताल के बाहरी क्षेत्र और आस–पास के ग्रामीण क्षेत्रों के बुजुर्गों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए एक अभिनव योजना षुरू की है। इसका उद्देश्य क्षेत्र के वरिष्ठ नागरिकों को कम लागत पर उत्तम स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना है ताकि उनके जीवन की गुणवत्ता में सार्थक सुधार हो सके। अस्पताल के परिसर में सन् 2005 से साप्ताहिक वरिष्ठ नागरिक क्लीनिक चलाया जा रहा है, जिसमें नाम मात्र के शुल्क पर बुजुर्गों की चिकित्सीय जांच की जाती है। अस्पताल ने पांच किलोमीटर के दायरे में रहने वाले वरिष्ठ नागरिकों की सूची बनाई है। प्रत्येक

माह एक चिकित्सक और नर्स घर–घर जाकर उनके स्वास्थ्य की जांच करते हैं और उचित सलाह देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बुजुर्गों के लिए सन् 2003 में मासिक क्लीनिक चलाई जा रही है। चिकित्सक गांव में जाकर जांच करते हैं और उनकी स्वास्थ्य समस्याओं का निदान करते हैं। फिलहाल, अस्पताल में 30 किलोमीटर के दायरे में आने वाले ग्रमीण क्षेत्रों को यह सुविधा मुहैया कराई जा रही है।

राह की तलाश

अपने सूनेपन से निजात पाने के लिए बुजुर्गों ने राह तालाशनी शुरू कर दी है। कुछ बुजुर्ग ओल्ड एज होम की शरण ले रहे हैं जो कुछ रिटायरमेन्ट के बाद कामकाजी जीवन की दूसरी पारी शुरू कर रहे हैं। बहुत से लोग जो बीमारी के कारण कामकाज में सक्षम नहीं है। टेलीफोन पर बच्चों से बातें करके इंटरनेट पर अपनों के संदेश पढ़कर और अपने पुराने शौक को फिर से जिंदा कर अपने सूनेपन को जीतने में लगे हैं।

हौंसला उम्र को हराने का

वरिष्ठ नागरिकों में यद्यपि शारीरिक क्षमता सीमित है, फिर भी उनके पास समय है और ज्ञान व अनुभव का अमूल्य खजाना भी। आवश्यकता है इन सेवाओं को समाज और राष्ट्र के हित में उपयोग करने की।

अतः किन–किन क्षेत्रों में आदर भाव से इस असीम जनशक्ति का राष्ट्रहित में उपयोग करना संभव है। इस संदर्भ में कुछ सुझाव इस प्रकार है :–

शिक्षा का क्षेत्र

- वरिष्ठ नागरिक इस क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकते हैं।

सामाजिक क्षेत्र

- समाज में अपेक्षाकृत कमजोर वर्ग की देखरेख कर सामाजिक नव–निर्माण में भाग ले सकते हैं।
- बाल विवाह, दहेज, पर्दा प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों को रोकने में महिला वरिष्ठ नागरिक प्रभावी भूमिका अदा कर सकती हैं।
- तम्बाकू, मदिरा, गांजा आदि नशा करने की आदत से मुक्ति दिलाने में भी वरिष्ठ नागरिक अपने प्रभाव का उपयोग कर सकते हैं।

स्वास्थ्य का क्षेत्र

- सक्षम वरिष्ठ नागरिकों की प्राथमिकता अपने ही जरूरतमंद साथियों की सहायता करना है। चिकित्सालयों में ऐसी व्यवस्था हो कि एक निर्धारित कक्ष में केवल वरिष्ठ नागरिकों को ही चिकित्सक द्वारा देखा जाए। वहां उनकी सहायत दूसरे वरिष्ठ नागरिक करें।

- वरिष्ठ नागरिक अपने पास संचित राशि का कोश बनाकर नवयुवकों को सहकारिता आधारित व्यवसाय करने की प्रेरणा दे सकते हैं।

पर्यटन

अतीर्थस्थलों व धर्मस्थलों का भ्रमण करके समाज को उनके महत्त्व की जानकारी दी जा सकती है। स्वयं भी भ्रमण कर आमोद–प्रमोद में समय का उपयोग कर सकते हैं।

विशेषज्ञ सेवाएं

डाक्टर इंजीनियर कृषि–विषेशज्ञ, व्यवसायी, अध्यापक अपने–अपने क्षेत्र में अपने अनुभवों एवं ज्ञान का लाभ अन्य नागरिकों को दे सकते हैं।

संभवतः आज के भौतिकवादी सामाजिक परिदृष्य में बुजुर्गों के प्रति संवदेनशील को एक बार फिर से जगाने की जरूरत है। हमें वरिष्ठ नागरिकों को बोझ के रूप में नहीं, बल्कि पूंजी और धरोहर के रूप में देखना होगा। उनके प्रति पारिवारिक तथा सामाजिक जिम्मेदारी को निभानी होगी। यही एक स्वस्थ, जागरूक और प्रगतिशील समाज की जरूरत भी है।

• • •

लेख

पंचायतीराज, सुशासन एवं मानवाधिकार

• डॉ. कन्हैया त्रिपाठी

भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य है जिसके संविधान में यह उद्घोषणा है – 'हम भारत के लोग –We the People', जिसका अभिप्राय है कि हमारी भावना 'व्यक्ति' से 'समाष्टि' जैसी संकल्पना से अनुप्राणित है। मानवाधिकार की भी संकल्पना 'व्यक्ति' से 'समाष्टि' तक के अधिकारों को अभिव्यक्त करती है। हमारे मानवाधिकार व्यक्ति के वैयक्तिक अधिकारों की जितनी आवश्यकता महसूस करते हैं उतनी ही समाष्टि यानी सामूहिक अधिकारों को भी उचित ठहराते हैं। पंचायतीराज इन्हीं समाष्टिग्र अधिकारों का एक उदाहरण है। भारत अपनी आज़ादी के बाद पंचायतीराज व्यवस्था को समृद्ध किया। दुनिया में भारतीय पंचायतीराज व्यवस्था जैसा अद्भुत उदाहरण विरले देशों में मिलता है क्योंकि भारत पंचायतीराज व्यवस्था को केवल राज्य के एक अंग के रूप में बनाकर नहीं रखा बल्कि बदलते वक्त के मुताबिक इस व्यवस्था को विकेन्द्रीकरण के माध्यम से और सशक्त बनाकर इस रूप में प्रस्तुत किया जिससे यह अधिक अधिकारों के प्राप्ति का भी सशक्त माध्यम के रूप में महसूस किया जाए।

अधिकारों की आमजन की पहुंच बनाने हेतु भारतीय गणराज्य का यह सबसे उदाहरणीय अनुप्रयोग है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का स्वप्न था–सर्वोदय। सर्वोदय रस्किन के 'अन् टू दिस् लास्ट' की फिलॉसफी की अद्भुत नव्य संकल्पना थी। पंचायतीराज के विकेन्द्रीकरण प्रणाली से उसी सर्वोदय के स्वप्न को साकार करने की पहल भारतीय सरकारों ने किया। पंचायतीराज व्यवस्था के द्वारा अन्तिम व्यक्ति को दिए गए अधिकार जिसमें 'राइट टू वोट' जैसे अधिकार दिए गए हैं इतना ही केवल नहीं है, बल्कि स्थानीय स्तर पर उस व्यवस्था को कायम करने का भी अधिकार व अवसर आम

• स्वतंत्र विचारक एवं समीक्षक

जनता को दिया गया है जो अपने अधिकार को अपनो के बीच बैठकर शांति व सद्भावपूर्वक प्राप्त कर लेंगे। अपना मुखिया अपने लोगों की समस्याओं का निराकरण कर लेगा।

आज भारत सरकार न्याय पंचायत स्तर पर न्यायालय तैयार करने पर विचार कर रही है। भारतीय वाड्.मय ऐसे न्यायप्रणाली को अपनी परम्परा का हिस्सा बताते हैं। ऐसी व्यवस्था हमारी पंचायतों में पहले से विद्यमान रही है। हाँ, यह जरूर है कि उसका सही प्रयोग आम जनता किसी न किसी कारण से करने में विफल रही है। भारत के गांवों में होने वाली हिंसाएं व अतिक्रमण इसको पुष्ट करते हैं। यदि स्थानीय स्तर पर स्थानीय अदालतें बन जाएंगी तो सशक्त लोगों का अतिक्रमण रुकेगा। इसलिए भारत सरकार की यह पहल स्वागत योग्य है। भारत सरकार ग्रामीण सामाजिक टकराव को कम करने के लिए ग्रामीण न्यायालय का सृजन करेगी; इसके कई फायदे होंगे। इसका एहसास आज हमें नहीं है लेकिन आने वाले दिनों में समझ में आ जाएगा। सबसे बड़ी बात यह है कि दहेज, घरेलू हिंसा व क्षेत्रीय हिंसाएं रुकेंगी। यह ऐसी समस्याएं हैं जो मानवाधिकार के विस्तार में बाधक हैं। ऐसी हिंसाओं से महिलाओं और बच्चों के मानवाधिकारों का ज्यादा अतिक्रमण होता है और उनका न ही विकास हो पाता है और न ही वे स्वस्थ समाज में अपने आपको अच्छा महसूस करते हैं।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का लक्ष्य है कि उसके कार्यक्षेत्र के सभी नागरिकों के अधिकारों को संरक्षित व सवंर्धित किया जाए। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग सन् 1993 से अपने लक्ष्य व उद्देश्य के प्रति कटिबद्ध होकर सभी मनुष्यों के अधिकारों को प्रदान करने में अद्भुत योगदान दिया है। कुछ नए चुनौतियों को चिह्नित करते हुए आयोग अपने संकल्प को स्मरण में रखकर बेहतर करने का प्रयास करे तो ज्यादातर लोगों के मानव अधिकार सुरक्षित होंगे। हमारे सदैव से रहे संकल्प में यह शामिल है कि भारत के हाशिए की जनता को भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करें और उन्हें वे सभी अधिकार दिलाने का प्रयास हो जिसे वे जन्म मात्र से प्राप्त कर चुके हैं किन्तु वास्तव में अधिकारों से अभी तक वंचित हैं।

तथाकथित सभ्य–समाज और साम्राज्यवादी सोच के लोगों ने इनके अधिकार को छीना है। पंचायतीराज व्यवस्था द्वारा ऐसे संकल्प को पूरा करने में मदद ली जा सकती है जिससे वंचित लोग अपनी मूल अभिव्यक्ति, स्वतंत्रता, गरिमा को प्राप्त कर सकेंगे। भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू जो आधुनिक भारत के शिल्पी माने जाते हैं, ने भारत को इसी पंचायतीराज व्यवस्था के जरिए आगे बढ़ने का सपना देखा था। हम मानवाधिकार की आवश्यकता व उसके प्रासार्य का स्वप्न इस व्यवस्था के जरिए

पूरा करने का सोचें तो उचित है। ऐसा इसलिए क्योंकि भारत गांवों का देश है। भारत के गांव, ग्राम–पंचायत, न्याय–पंचायत व जिला–पंचायत जो पंचायतीराज व्यवस्था के अवसंरचना हैं, यदि सही प्रकार से सभी के अधिकारों को सबकी पहुँच का हिस्सा बना सकें तो वह दिन–दूर नहीं जब भारत एक आदर्श मानवाधिकारवादी देश की सूची में दर्ज किया जाए, लेकिन जिम्मेदारी सबकी महत्त्वपूर्ण है। सभी अपनी जिम्मेदारी को महसूस करें और सबके लिए अपने नैतिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करें तो भारत सार्थक दिशा में आगे बढ़ सकेगा।

भारत की पंचायतें आज सबसे ज्यादा आरोप पुलिस प्रताड़ना की लगाती हैं। हमारी पुलिस व्यवस्था प्रत्येक के वैयक्तिक गरिमा को ध्यान में रखकर क्यों नहीं अपना कर्त्तव्य निर्वहन करती, समझ में नहीं आता। माना पुलिस व्यवस्था की अपनी सीमाएं हैं। लेकिन उसे अपने कर्त्तव्य के प्रति ज्यादा सजग होने की जरूरत है। पुलिस को यह समझना होगा कि भारत की जनता हमसे सहयोग चाहती है, अतिक्रमण कदापि नहीं। ऐसे में, ग्रामीण जनता, जो बिल्कुल अपने तरह की सभ्यता में रहती है उसकी गरिमा का ख्याल हम सभी को करना है पुलिस को और हम सबको। पंचायतीराज व्यवस्था को इसीलिए निर्मित किया गया था कि ग्राम–पंचायत की जनता व प्रत्येक व्यक्ति अपने विकास को प्राप्त करने व गरिमापूर्ण जीवन जीने का एहसास अपने व्यवस्था में ही कर सकेंगे। भारत की इस व्यवस्था को स्थापित हुए 60 वर्ष से अधिक हो गए। गांवों ने यह महसूस किया है कि यह एक व्यवस्था का सशक्त स्तम्भ है और उसके नागरिक राज्य–स्टेट के सभी प्रावधानों को संज्ञान में लेकर उसके सभी कल्याणकारी कदम के प्रतिभागी हैं। हमें इस महसूसगी को कायम रखना है। भारत में मनरेगा (महात्मा गांधी नेशनल रोजगार गारण्टी योजना) जैसी योजना से लाभान्वित होकर लोग अपने आर्थिक अधिकारों को प्राप्त करते हुए तथा सूचना के अधिकार से छोटी–बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ हासिल करते हुए सुखद अनुभूति कर रहे हैं। ऐसे और भी मार्गों की हमें तलाश है जिससे हमारे देश के लोग अपना अधिकार प्राप्त कर सकें और अपना भविष्य संवार सकें।

फिलहाल, गरीबी, भुखमरी और लालच हमारे देश की सबसे बड़ी चुनौती है। आतंकवाद एक दूसरे तरह की समस्या है। आंतरिक सुरक्षा ने भी हमारे नागरिकों के मानवाधिकार को प्रभावित किया है। देश की इन विभिन्न चुनौतियों को हमें गंभीरता से लेने की आवश्यकता है। राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक की गरिमा, सुरक्षा व शांति हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है और बिना इसके न ही मनुष्य–जाति का कल्याण है और न ही उसके मानवाधिकार उसकी पहुँच में हो सकते हैं। यह एक अच्छी बात है कि हमने पड़ोसी देशों

में झेली जा रही त्रासदी नहीं झेली। हम अपने लोकतांत्रिक गणराज्य के विविध जश्न को मनाने में सफल रहे यह हमारी सफलता है लेकिन इस बात को हमें कभी नहीं भूलना चाहिए कि इसमें सबसे बड़ा योगदान हमारे बलिदान हुए स्वतंत्रता सेनानियों का है और दूरद्रष्टा नेत्तृत्वकर्ताओं का है। हमें उसी साहस के साथ आगे बढ़कर अपने व अपने समस्त मनुष्य समुदाय के मानव अधिकारों को संरक्षित करना होगा।

10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र ने 'संयुक्त राष्ट्र सार्वभौम घोषणा–पत्र' का प्रारूप दुनिया के समक्ष रखा था। भारत सरकार इस घोषणा पत्र के शपथकर्ता होने के बावजूद 1993 से राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना कर सार्वभौम घोषणा–पत्र के बाद प्रस्तावित समस्त प्रसंविदाओं व प्रतिज्ञा पत्रों को सबकी पहुँच बनाने का जिम्मा लिया है। यदि सभी नागरिक इसमें अपना सहयोग प्रदान करें तो मानवाधिकारों को आमजन तक पहुँचाने में हम निश्चित सफल होंगे और भारत इससे अपनी तस्वीर बदल सकेगा।

ऐसे आंदोलनकारियों को भीड़ का सदस्य न कहकर सच्चे प्रजातांत्रिक आंदोलनकारी ही निरूपित किया जाना समुचित होगा। यहां पर यह भी ध्यान में रखने की बात है। कि यदि ऐसे किसी आंदोलन को सर्वव्यापी व्यापक जन समर्थन प्राप्त है, तब ही यह जन आंदोलन कहलायेगा। वास्तव में यदि चंद कुछ राजनैतिक दलों का पृष्ठ पोषण ही आधार है, तब राजनैतिक धरना, प्रदर्शनों तक ही सिमटकर रह जायेगा। और उसका समाधान भी तदनुरूप होना ही युक्तिसंगत रहेगा।

दो अपराध ऐसे होते है, जिनके सफल होने पर दण्डित नहीं किया जा सकता। यथा–देशद्रोह और आत्महत्या। इसी कारण से इनका किसी भी रूप में प्रयास मात्र ही दण्डनीय अपराध की श्रेणी में आता हैं। विधि द्वारा स्थापित शासन के विरूद्ध सशस्त्र विरोध के विचार को बढ़ावा देना, उसकी किसी भी भांति तैयारी करना अथवा हिंसक गतिविधियों में लिप्त होना देशद्रोह के अपराधों के वर्ग में ही आऐगें। अतएव इनके बीज के अंकुरित होने के पूर्व ही इन्हें समूल नष्ट करके तहस–नहस कर देना ही हितकर होता है। यही सर्वश्रेष्ठ राजनीति एवं कूटनीति है। उदाहरण सम्मुख है कि ऐसा न करके उग्रवाद, आतंकवाद, माओवाद व नक्सलवाद, इत्यादि को नियन्त्रित करने में विफल रहने का खामियाजा भुगतने को अब विवश होना पड़ रहा है। विगत में भी ऐसा न करने के और देशद्रोहात्मक गतिविधियों के फलने–फूलने को अवसर देने के कुपरिणाम सामने आ चुके है और उसका खामियाजा भी भुगतना पड़ा है। अस्तु बिना किसी प्रकार के उदापोह के ऐसे तत्वों पर सतत् निगरानी रखी जानी, अपरिहार्य आवश्यकता ही नहीं है, वरन् समय की मांग भी है।

पूर्व सत्ताधारी शासकीय दल की किन्हीं नीतियों को वर्तमान सत्ताधारी शासकीय दल द्वारा परिवर्तित किया जाना अथवा निरस्त किया जाना भी, यदि दलगत स्वार्थों से ऊपर, वोटों की राजनीति से इतर नहीं है, तो वह समाजद्रोह हैं संविधान संशोधन की प्रक्रिया तरह ही, ऐसा कुछ करने की प्रक्रिया भी जटिल होनी चाहिए। पूर्व के सत्ताधारी दल ने जिस बहुमत से कोई नियम/कानून या योजना बनाई है, उसमें परिवर्तन के लिए वर्तमान सत्ताधारी दल के पास उससे अधिक बहुमत होना चाहिए केवल इतना ही नहीं पूर्व के मुख्य शासकीय दल/गठबन्धन दल के पास जितना बहुमत होना चाहिए केवल इतना ही नहीं पूर्व के मुख्य शासकी दल/गठबन्धन दल के पास जितना बहुमत रहा हो, उससे अधिक बहुतम वर्तमान शासकीय दल के मुख्य घटक दल के पास होना चाहिए। वरना एक दल के साथ दो कदम आगे बढ़ेंगे तो दूसरे के साथ चार कदम पीछे भी जा सकते हैं। किसी पुराने स्थान या संस्थान का नाम परिवर्तन करना हो तो संसद या विधान मण्डल, जैसी भी स्थिति हो, के कुल सदस्यों की तीन चौथाई संख्या के आधार पर ही वांछित कार्यवाही हो। नए स्थान या संस्थान के नामकरण के लिए यह संख्या दो–तिहाई पर्याप्त हो सकती है। इससे समाज के विघटनकारी एवं विध्वंसकारी तत्वों को सिर उठाने का मौका, ऐसे कदमों की आड़ में नहीं मिलेगा। केवल मंत्री परिषद की स्वीकृति यथेष्ठ न होकर संबंधित सदनों से सामान्य प्रक्रिया के अंतर्गत होकर, गुजरना भी अनिवार्य होना। यही सर्वव्यापी एवं लोकहितकारी नीति स्मारकों, पार्कों, मूर्तियों के निर्माण तथा अन्य प्रावधानों के संदर्भ में भी अपनाई जानी चाहिए।

देश का धन अवैध एवं गुप्त रूप से विदेशों में जमा कराना, अपने ही मूलभूत मौलिक अधिकारों का स्वयं ही हनन करना है। प्रकारान्तर से देश के विरुद्ध आर्थिक युद्ध छेड़ना ओर काले धन की समानान्तर अर्थ व्यवस्था स्थापित करना है। देश को संवैधानिक एवं कानूनी सत्ता के विरुद्ध सशस्त्र युद्ध छेड़ना राष्ट्रद्रोह का गुरुत्तर अपराध है। फिर देश की आर्थिक सार्वभौमिकता के विरुद्ध आर्थिक युद्ध छेड़ना भी देशद्रोह से कम का अपराध नहीं है। अतएव एसेसे तत्सम्बन्धित अपराधियों को देशद्रोही के वर्ग का ही अपराधी माना व समझा जाना चाहिए। जब देश का धन अवैध रूप से बाहर ले जाना और जमा करना देशद्रोह की श्रेणी में रखा जायेगा, तब कालाधन उत्पन्न करने वालों को निषेधात्मक संदेश जाएगा और इस तरह से भ्रष्टाचार के प्रति भी नकारात्मक भाव लोगों के मध्य पनपेगा। एक पंथ दो काज। भ्रष्टाचार भारत देश के लिए नासूर बन चुका है। अस्तु तदनुसार सुविचारित इलाज भी तत्परता और पूरी लगन के साथ करना होगा। देश स्वाधीन है तथा लोकतंत्र है, इस तथ्य को सभी पक्षों की ध्यानान्तर्गत रखते हुए ही अपने अधिकारों के साथ अपने कर्त्तव्यों तथा दूसरों के सामान्य मौलिक नागरिक अधिकारों को दृष्टव्य रखते हुए ही कार्य करना होगा। अर्थात धरना, प्रदर्शन, घेराव व अनशन आदि स्वयं तक ही

सीमित रहना उपयोगी एक तर्कसम्मत होता है, न कि दूसरों के मानवाधिकारों का हनन करने तथा उनहें अमानवीय कष्ट पहुंचाने वाले रेल रोको, सड़क रोको, चक्का जाम करो तथा सामान्य जनजीवन ठप करो जैसे जन विरोधी एवं अन्यायपूर्ण आन्दोलन; जिसका चलन सत्याग्रह के रूप में न होकर, एक प्रकार के ब्लैक–मेलिंग जैसा होता है। यही है जनतंत्र के यथार्थ का भावार्थ: मानवाधिकार सर्वोपरि!

• • •

साक्षात्कार

न्यायपालिका लोकतंत्र के चार मजबूत स्तंभों में एक है। मौजूदा समय में जब कार्यपालिका ने कई मोर्चे पर फैसले लेने में हिचकिचाहट का एहसास कराते हुए शिथिलता का परिचय दिया है, वहीं न्यायपालिका ने पूरी सक्रियता एवं जिम्मेदारी के साथ कई अहम मसलों पर अपनी बेबाक एवं स्पष्ट राय देकर सबको चौंका दिया है। न्यायमूर्ति आर. सी. लाहोटी ऐसे ही न्यायविद् हैं जिन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पद पर रहते हुए अनेक सर्वजन हिताय निर्णय दिए हैं जो देश के लिए 'मील का पत्थर' साबित हुए। इन्हीं सब बातों के मद्देनजर आयोग ने वर्तमान अंक के **'साक्षात्कार कॉलम'** में सर्वोच्च न्यायालय के **पूर्व मुख्य न्यायाधीश, विचारक एवं चिंतक श्री आर. सी. लाहोटी** का साक्षात्कार प्रकाशित करने का निर्णय लिया। इस संबंध में **'योजना' के वरिष्ठ संपादक श्री राकेशरेणु** ने न्यायमूर्ति श्री आर. सी. लाहोटी से बहुत सी जिज्ञासाओं का समाधान ढूंढ़ने की कोशिश की है। पेश है बातचीत के कुछ अंश : –

प्रश्न 1. **मानव अधिकारों का सीधा–सीधा संबंध न्यायिक व्यवस्था की चुस्ती और कार्यकुशलता से होता है लेकिन भारत में यह आम धारणा है कि न्यायिक प्रणाली खर्चीली और दीर्घकालिक है। जिसके परिणाम स्वरूप निचली अदालतों से लेकर उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय तक बड़ी संख्या में लंबित मामले हैं। क्या आपको नहीं लगता है कि हमारी न्याय प्रणाली कहीं न कहीं नागरिकों के त्वरित न्याय पाने के अधिकार के साथ–साथ मामलों से संबद्ध अन्य अनेक अधिकारों के हनन को प्रोत्साहित करती हैं?**

उत्तर न्यायपालिका लोकतंत्र लोकतंत्र के चार मजबूत स्तंभों में एक है। मौजूदा समय में जब कार्यपालिका ने कई मोर्चे पर फैसले लेने में हिचकिचाहट का

एहसास कराते हुए शिथिलता का परिचय दिया है, वहीं न्यायपालिका ने पूरी सक्रियता एवं जिम्मेदारी के साथ कई अहम मसलों पर अपनी बेबाक एवं स्पष्ट राय देकर सबको चौंका दिया है। न्यायमूर्ति आर. सी. लाहोटी ऐसे ही न्यायविद् हैं जिन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पद पर रहते हुए अनेक सर्वजन हिताय निर्णय दिए हैं जो देश के लिए 'मील का पत्थर' साबित हुए। इन्हीं सब बातों के मद्देनजर आयोग ने वर्तमान अंक के **'साक्षात्कार कॉलम '** में सर्वोच्च न्यायलय के **पूर्व मुख्य न्यायाधीश, विचारक एवं चिंतक श्री आर. सी लाहोटी** का साक्षात्कार प्रकाशित करने का निर्णय लिया। इस संबंध में **'योजना'** के वरिष्ठ संपादक श्री राकेशरेणु ने न्यायमूर्ति श्री आर सी लाहोटी से बहुत सी जिज्ञासाओं का समाधान ढूंढने की कोशिश की है। पेश है बातचीत के कुछ अंशः—

प्रश्न 2. दुनिया के अन्य अनेक विकसित जनतांत्रिक देशों में न्यायिक प्रणाली मामलों को निपटाने में उतना समय नहीं लेती जितना भारत में। अपने देश में मामलों को शीघ्र निपटाने के लिए क्या कुछ कदम उठाने की आवश्यकता है?

उत्तर : भारतीय संविधान की उद्देशिका में प्रत्येक भारतवासी के लिए 'सम्पूर्ण न्याय' की अवधारणा का संयोजन किया गया है। सम्पूर्ण न्याय से आशय है— राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक न्याय। जब तक ये तीनों न्याय प्राप्त नहीं होते तब तक भारतवासी न्याय से वंचित है, यह मानना होगा। न्यायदान का उत्तरदायित्व न्यायपालिका पर है। भारत के न्यायाधीश चुस्त और कार्यकुशल हैं, फिर भी न्यायिक व्यवस्था की चुस्ती और कार्यकुशलता पर प्रश्न चिन्ह लगते रहते हैं। संवैधानिक प्रजातन्त्र के अस्तित्व लिए एक सक्षम, निपुण, स्वतंत्र और जागरूक न्यायपालिका अनिवार्य है। किन्तु न्यायपालिका के पास न तो अपना बजट है न प्रशासनिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता। इस हेतु वह कार्यपालिका पर आश्रित है। बड़ी संख्या में प्रकरणों का लम्बित होना, न्यायदान में विलम्ब होना, न्यायिक प्रणाली का खर्चीला और दीर्घकालिक होना — ये सभी नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन हैं। यह आवश्यक है कि कार्यपालिका इस संबन्ध में पहल करे न्यायपालिका को विश्वास में लेकर कारणों का विशेषज्ञ विश्लेषण करे और सुधार के उपायों की पहचान कर उन्हें लागू करने के ठोस कदम उठाये।

प्रश्न 3. आप न केवल एक प्रखर न्यायविद् हैं वरन् भारत के मुख्य

न्यायाधीश रह चुके हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन के दो दशक पूरे होने वाले हैं। क्या आपको लगता है कि विगत 19 वर्षों में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने नागरिकों के अधिकार रक्षण की भूमिका का समुचित निर्वहन किया है?

उत्तर : राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने भारत के नागरिकों के अधिकार रक्षण की भूमिका का निर्वहन करने के लिए जो कुछ किया है वह प्रशंसनीय है। किन्तु भारत जैसे बड़े देश और मानवाधिकारों के उल्लंघन के प्रकारों को देखते हुए आयोग से अपेक्षित है कि वह और अधिक सक्रिय हो।

प्रश्न 4. राष्ट्रीय मानव अधिकार को और प्रभावी और जनोन्मुखी बनाने के लिए क्या कुछ नए प्रावधान करने की आवश्यकता है?

उत्तर : मेरे दो सुझाव हैं। एक तो यह कि मानवाधिकार आयोग की कार्य पद्धति ऐसी होनी चाहिए के वह स्वयं पीड़ितों तक पहुंचे बजाय इसके कि वह पीड़ितों/शिकायतकर्त्ताओं के उस तक पहुंचने की प्रतीक्षा करे। दूसरा यह कि पीड़ित को अनुतोष तो दिलाया ही जाए किन्तु, मेरे मत में, आयोग को शैक्षणिक एवं वैचारिक प्रसार के क्षेत्र में अधिक कार्य करना चाहिए। कुछ संस्थायें अथवा ऐजेन्सियां ऐसी हैं जो मानवाधिकारों के उल्लंघन के लिए जानी जाती हैं। आयोग को उनके साथ मिलकर उन्हें मानवाधिकारों का सम्मान करने के लिए संवेदनशील बनाना चाहिए। मानवाधिकार आयोग के होते हुए भी जेल और थानों में मृत्यु और यातनाओं की घटनाएं बढ़ रही हैं। केवल मुआवजा दिलाने से आंसू नहीं पुंछ जाते। प्रयास यह होना चाहिए कि आंसू बहाने का अवसर ही न आवे। यह कार्य आयोग को लगभग आन्दोलन के स्तर पर करना चाहिए। न्यायमूर्त्ति देवदत्त धर्माधिकारी के नेतृत्त्व में मध्य प्रदेश मानवाधिकार आयोग की कार्य पद्धति एक उदाहरण हो सकती है। उन्होंने दो दिशाओं में महत्त्वपूर्ण कार्य किया – एक शासन को संवेदनशील बनाया ताकि मानवाधिकारों के उल्लंघन का अवसर ही न आए। साथ ही, इसके नागरिकों, विशेषकर अज्ञान और अशिक्षितों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी बनाया जाए। मानवधिकार आयोगों में नियुक्ति के लिए एसे व्यक्ति चुने जाने चाहिए जिनकी मानवाधिकारों के रक्षण के प्रति स्थापित अभिरुचि है और लगन है।

प्रश्न 5. पिछले कुछ समय से भ्रष्टाचार देश के केन्द्रीय विमर्श का हिस्सा

बन गया है। क्या आपको लगता है कि लोकपाल और लोकायुक्त व्यवस्था को लागू कर देने से भ्रष्टाचार पर पूर्ण नियंत्रण पाया जा सकेगा?

उत्तर : भ्रष्टाचार प्रजातन्त्र की जड़ों को खोखला कर रहा है, विकास और प्रगति के प्रयासों को निष्फल कर रहा है और सम्पन्न और विपन्न के बीच की खाई को गहरा और चौड़ा कर रहा है। केवल लोकपाल और लोकायुक्त बना देने से भ्रष्टाचार समाप्त नहीं होगा। यदि ऐसा हो पाता तो वे सारे प्रदेश भ्रष्टाचार मुक्त हो गये होते जिनमें लोकायुक्त वर्षों से कार्य कर रहे हैं। दो बातें आवश्यक हैं। पहिला तो यह कि व्यवस्था प्रभावी हो अर्थात् लोकायुक्त या लोकपाल स्वतंत्र और निष्पक्ष रहकर प्रभावी रीति से कार्य कर सकें ऐसी विधिक व्यवस्था हो। दूसरा यह कि लोकायुक्त या लोकपाल की संस्था स्थापित कर देने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि लोकायुक्त या लोकपाल कौन होता है? कोई भी व्यवस्था उत्तम कार्य कर सकती है यदि उसका नियंत्रण और सम्पादन सुयोग्य सक्षम हाथों में सौंपा जाए। सुविधाजनक नियुक्तियां (कन्वीनिएन्ट अपाइन्टमेन्ट्स) हर व्यवस्था को प्रतिगामी बना देती हैं।

प्रश्न 6. जिस जन लोकपाल विधेयक को लेकर श्री अन्ना हजारे के नेतृत्व में आंदोलन हुआ उसके किंचित प्रावधानों को लेकर क्या संवैधानिक व्यवहार्यता का प्रश्न नहीं उपस्थित होता? मसलन अगर प्रधानमंत्री सहित संपूर्ण विधायिका तथा न्यायपालिका के ऊपर किसी निकाय को बना दिया जाय तो क्या यह संविधान सम्मत होगा? यदि नहीं, तो इस संदर्भ में क्या करने की आवश्यकता होगी?

उत्तर : संवैधानिक व्यवहार्यता का प्रश्न तो अवश्य ही उपस्थित होता है। मेरा व्यक्तिगत मत है कि प्रधानमंत्री और वरिष्ठ न्यायपालिका को लोकपाल के क्षेत्राधिकार से परे रखा जाना चाहिए। किसी भी प्रजातन्त्र में, विशेषकर समृद्ध संस्कृति और संस्कारों वाले भारत देश में, कार्यपालिका के वरिष्ठतम नेता और प्रत्येक न्यायाधीश (केवल मुख्य न्यायाधीश ही नहीं) से चरित्र और आचरण का इतना उच्च आदर्श अपेक्षित है कि यदि उन पर कोई आरोप लगे और उस आरोप में प्रथम दृष्टया भी सार हो अथवा वह आरोप जांच के योग्य भी बनता हो तो उन्हें स्वयं ही अपना पद त्याग देना चाहिए। जहां प्रधानमंत्री अथवा न्यायाधीश के विरुद्ध भी लोकपाल या लोकायुक्त से जांच कराना पड़े वहां प्रजातन्त्र ही शर्मसार होगा, और लम्बे समय तक टिकेगा नहीं।

प्रश्न 7. एक प्रश्न प्रस्तावित विधेयक के कार्य क्षेत्र से भी हुआ है। क्या इसके अधिकार क्षेत्र में केवल सरकारी विभागों और निकायों को लाया जाए अथवा इसमें सार्वजनिक जीवन को प्रभावित करने वाले अन्य सभी क्षेत्रों, मसलन गैर–सरकारी संगठनों (एनजीओ), कारपोरेट घरानों और मीडिया को भी शामिल किया जाए क्योंकि भ्रष्टाचार को शह देने में इन तीनों की भूमिका पर गाहे–बगाहे सवाल उठते रहे हैं?

उत्तर : किसी भी नई संस्था पर इतना वजन नहीं लादा जाना चाहिए कि वह अपने ही वजन से दब जाए। एक बार शुरूआत होना चाहिए। प्रयोग सफल हो तो अधिकार क्षेत्र का विस्तार किया जा सकता है।

प्रश्न 8. संविधान के अनुसार भारत में न्यायपालिका को स्वायत्तता प्रदान की गयी है लेकिन न्यायपालिका में भी भ्रष्टाचार के यदा–कदा आरोप लगते रहे हैं। आम धारणा है कि निचली न्यायपालिका में भ्रष्टाचार तो है ही, उच्चस्तरीय न्यायपालिका भी इससे अछूती नहीं है। हाल ही में कुछ उदाहरण सार्वजनिक चर्चा के केन्द्र में रहे हैं। इन उदाहारणों के आलोक में क्या आपको नहीं लगता कि सम्पूर्ण न्याय व्यवस्था को लोकपाल के दायरे में लाने की मांग जायज है?

उत्तर : न्यायपालिका प्रजातंत्र का अनिवार्य स्तंभ तो है किन्तु अति संवेदनशील और नाजुक भी है। न्यायपालिका की तुलना कार्यपालिका से की जाना और दोनों के प्रति समान प्रक्रिया से व्यवहार करना घातक होगा। निःसंदेह न्यायपालिका के सदस्यों पर लग रहे आरोपों में बढ़ोत्तरी हो रही है। इनकी जांच के लिए त्वरित और प्रभावी माध्यम की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता किन्तु वह माध्यम लोकपाल से पृथक होना चाहिए और उसे भारत के मुख्य न्यायाधीश के प्रति जवाबदेह होना चाहिये। मेरी सुनिश्चित धारणा है कि जिन पर न्यायाधीशों के चयन और नियुक्ति का दायित्त्व है उनने अधिक जिम्मेदारी और निष्पक्षता के साथ अपना कर्त्तव्य निबाहा होता तो उनके द्वारा नियुक्त किए गए न्यायाधीशों पर अंगुली उठाने के अवसर ही न आते। नियुक्ति करते समय चयन कर्त्ताओं को मानवीय कमजोरियों से ऊपर उठ कर कार्य करना चाहिए। चयन के समय विशुद्ध गुणवत्ता से कोई समझौता नहीं होना चाहिए। यदि यह संभव हो सका तो न्यायाधीशों पर कदाचरण के आरोपों में तेजी से

गिरावट आ जायेगी। न्यायपालिका में भ्रष्टाचार यदि न्यूनतम है तो भी अक्षम्य है। जिस पर भ्रष्टाचार के इलाज का जिम्मा है वही भ्रष्टाचार के रोग से ग्रसित हो जाये, यह स्थिति किसी भी कीमत पर स्वीकार्य नहीं है।

प्रश्न 9. क्या केन्द्र सरकार द्वारा संसद में प्रस्तुत राष्ट्रीय न्यायिक प्राधिकरण भारतीय न्यायिक प्रणाली में व्याप्त कथित भ्रष्टाचार का निराकरण करने में समर्थ होगा? निचली न्याय व्यवस्था की निगरानी यह कैसे करेगा?

उत्तर : राष्ट्रीय न्यायिक प्राधिकरण एक अच्छा विकल्प है। उसे राजनैतिक हस्तक्षेप से विमुक्त रखा जाना चाहिए। ऐसे प्राधिकरण में न्यायपालिका का बाहुल्य होना चाहिए। यह स्वीकृत सत्य सिद्धान्त है कि न्यायपालिका में कुछ काली भेड़ें (ब्लैक शीप) बर्दाश्त कर लेना बेहतर है बजाए न्यायपालिका की स्वतंत्रता से समझौता करने के।

प्रश्न 10. संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भारत में अधिकार हनन के मामलों में कमी नहीं आ रही है। अनेक मर्तबा कानून व्यवस्था लागू करने वाले पुलिस तंत्र पर ही अधिकार हनन के आरोप लगते रहे हैं। भारतीय पुलिस प्रणाली में सुधार के लिए विगत वर्षों में अनेक आयोग भी गठित किए गए। पुलिस तंत्र को, खासकर आम नागरिकों में आने वाले निचले तंत्र को अधिक जनतांत्रिक, संवेदनशील और अधिकार–चेतन बनाने के लिए क्या करने की जरूरत हैं?

उत्तर : पुलिस विधि–व्यवस्था का अनिवार्य एवं अत्याज्यनीय अंग है। भारतीय पुलिस प्रणाली में आमूल चूल परिवर्त्तन की आवश्यकता है। संपूर्ण प्रणाली, व विशेषकर पुलिस व्यवस्था का वह अंश जो प्रतिदिन सामान्य नागरिकों के सम्पर्क में आता है उसे अधिक जनतांत्रिक, संवेदनशील और नागरिक अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने की आवश्यकता दशाब्दियों से अनुभव की जा रही है किन्तु इस दिशा में ठोस कदम नहीं उठाये जा रहे हैं। कारण यह है कि पुलिस तंत्र को अपने अधीन रखकर निजी स्वार्थों अथवा अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्त्ति के लिए उसका दुरुपयोग करना जिनके स्वभाव में आ चुका है वे पुलिस तंत्र को स्वतंत्र करना नहीं चाहते। पुलिस सुधार आयोगों के प्रतिवेदन बन्द बस्तों में पड़े हैं (और पड़े रहेंगे)। कुछ मोटी–मोटी बातें हैं :– (क) पुलिस प्रणाली स्वतंत्र हो, सत्तासीन अपराधियों पर भी कार्यवाही करने में उसे हिचक न हो। (ख) पुलिस

में 'व्यावसायिक' दृष्टिकोण (प्रोफेशनेलिज्म) आना चाहिए। (ग) पुलिस को आधुनिकतम साधन, जिनका प्रयोग अपराधों को रोकने व अन्वेषण करने में किया जा सके, से सम्पन्न किया जाना चाहिए। (घ) सूचना–प्रौद्योगिकी का पुलिस प्रणाली में अधिकाधिक प्रयोग होना चाहिए। (ङ) निरन्तर प्रशिक्षण की ऐसी व्यवस्था होना चाहिए कि पुलिस कर्मियों का मनोबल ऊंचा रहे, उनकी कार्यपद्धति अधिक मानवीय हो और वे अपने कर्त्तव्य का सम्पादन करने में सात्त्विक गर्व की अनुभूति कर सकें। (च) पुलिस कर्मियों के कार्य का समय और जोखिम देखते हुए उनके वेतन और सेवा–शर्तों में सकारात्मक सुधार होना चाहिए। (छ) पुलिस कर्मी द्वारा कानून का उल्लंघन अक्षम्य होना चाहिए। जिन पर कानून का पालन कराने और अपराध के विरूद्ध लड़ने की जिम्मेदारी है वे ही स्वयं अपराध करें यह गम्भीर चिंता का विषय है। संक्षेप में, वह सब किया जाए जिससे इन दो लक्ष्यों की पूर्ति हो सके– (1) पुलिस से अपराधी भयभीत हों किन्तु सामान्य नागरिक पुलिस कर्मी को अपना मित्र और सहायक समझे। (2) पुलिस में सेवा करना प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाए।

प्रश्न 11. कहा जाता है कि अपने देश में संवैधानिक प्रावधानों के साथ–साथ विभिन्न तबकों के अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए समुचित कानून बनाए गए हैं। इनमें से अनेक विषय जैसे दहेज, महिला उत्पीड़न, भ्रूण हत्या, जाति व्यवस्था आदि सामाजिक मान्यताओं और परंपराओं से जुड़े हुए हैं। क्या आपको लगता है महज कानूनी प्रावधान इन मान्यताओं और परंपराओं को दूर करने में सफल हो पाएंगे? यदि नहीं, तो इसके लिए क्या करने की जरूरत है?

उत्तर : केवल कानून बनाने से और दंड को कठोर कर देने से कोई अपराध अथवा अनैतिक आचरण छूट नहीं जाता। अपराधविहीन समाज वह होता है जहां कठोर अनुशासन और दंड व्यवस्था के साथ–साथ नागरिकों का चारित्रिक स्वभाव सदाचार और नैतिकता से परिपूर्ण होता है। बहुधा अपराध छिप कर किए जाते हैं। वहां दण्ड व्यवस्था अपराध नहीं रोकती, अपराध रूक सकता है यदि अकेले में भी अंदर से कोई कहे–यह न करो। स्वस्थ समाज का निर्माण चार बातों से होता है : (1) धर्मयुक्त आचरण (धर्म का आशय कर्म काण्ड नहीं है, धर्म का अर्थ है उत्तम आचरण की संहिता जो हर धर्म में होती है), (2) नितान्त भौतिकवादिता से परहेज (भौतिकवाद क्षणिक लाभ अथवा क्षणिक आनन्द के लिए कुछ भी करने को उकसाता है), (3) समाज का नेतृत्व स्वयं अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करे, उदाहरण बने (4) जांच ऐजेन्सी ऐसी हो जो सही दोषी को पकड़े, गलत व्यक्ति पर अपराधी होने का झूठा

अरोप न लगाए। सही अपराधी को ठीक समय विधि–व्यवस्था के समक्ष कटघरे में खड़ा कर देना अधिक कारगर प्रभाव छोड़ता है, बजाए वर्षों के बाद दिया गया दण्ड। दोषी खुले घूमते रहें तो विधि–व्यवस्था पर से समाज का विश्वास उठ जाता है, आपराधिक प्रवृत्तियां निरंकुश जो जाती है।

प्रश्न 12. कुछ एक प्रदेश ऐसे हैं जो मानव अधिकार आयोग की recommendation को न मानते हुए High CourtèSupreme Court में चले जाते हैं। इससे पीड़ित व्यक्तियों को सहायता नहीं मिलती अथवा देर हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में क्या आप को यह नहीं लगता कि मानव अधिकार आयोग को और अधिक अधिकार मिलने चाहिए?

उत्तर : न्यायालय में जाना प्रदेश शासन का अधिकार है। इसे नहीं रोका जा सकता। आवश्यकता भी नहीं है। उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय मानवाधिकार आयोग के आदेशों में कदाचित ही हस्तक्षेप करते हैं। इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि मानवाधिकार आयोग को अधिक अधिकार दिये जाना चाहिए ताकि वे उन्हें प्रदत्त भूमिका का निर्वहन प्रभावी रीति से कर सकें।

प्रश्न 13. आज कल असंगठित मजदूरों (unorganized labour) की बड़ी दयनीय दशा है। उनकी तरफ कोई नियोक्ता (employer) ध्यान नहीं देता। राज्य भी उनके मामले यह कह कर कर टाल देती कि वे लोग Organized labour से संबंध नहीं रखते इसलिए सहायता के हकदार नहीं हैं। क्या राज्य की यह जिम्मेदारी नहीं कि वह सभी नागरिकों की तपहीज जव सपमि का ध्यान रखें। इस संबंध में आपका क्या मत है?

उत्तर : मजदूर भले ही संगठित हों या असंगठित, उनके मानवाधिकार हैं। जीवनाधिकार (राइट टू लाइफ) मजदूरों का अन्य नागरिकों से कम नहीं है बल्कि अधिक है, क्योंकि वे सृजन करते हैं किन्तु सशक्त नियोक्ता के अधीन होते हैं। उनकी समस्याओं और जायज मांगों पर विचार करने के लिए त्वरित और सरल प्रकिया होनी चाहिए, एसी जटिल और लम्बी नहीं जैसी कि अभी है। उत्तम समाधान यह होगा कि प्रबन्धन में मजदूरों की भागीदारी की व्यवस्था हो ताकि उद्योग के सफल संचालन में उनकी रूचि बढ़े। श्रमिक विवाद और श्रमिक उत्पीड़न रोकने का कारगर उपाय है कि नियुक्त और नियोक्ता के बीच की दूरी को पाटा जाए।

साक्षात्कारकर्ता : राकेश रेणु

आयोग के महत्त्वपूर्ण निर्णयों पर आधारित कुछ कहानियाँ

ताकि सनद रहे

डा0 दीप्ति भारद्वाज

हमारे समाज में विकलाँगता जहाँ एक तरफ सामाजिक सहानुभूति का विषय है वहीं विकलाँगता कभी–कभी एक ऐसी शक्ति प्रदान करती है जिससे व्यक्ति किसी भी समस्या से और अधिक ताकत से लड़ सकता है। इसका उदाहरण प्रस्तुत किया दिल्ली के अंकित गौतम ने, जिन्होनें यह दर्शाया कि विकलाँगता एक अद्‌भुत शक्ति भी है।

अंकित गौतम, निवासी–भरत बिहार रोड़, राजापुरी, उत्तम नगर, दिल्ली में मानवाधिकार आयोग को दिनांक 10.05.2010 को यह शिकायत दर्ज करायी कि वह दिल्ली के मोतीबाग स्थित डाइट संस्था में प्रशिक्षक की हैसियत से है एवं उसी संस्था में दिनांक 14.05.2010 से यानि चार दिनों बाद इम्तिहान होने वाले है परन्तु संस्था के निदेशक व परीक्षक नियंत्रक उसे चीफ कमिश्नर (विकलाँगता) के प्रपत्र दिनांक 02.08. 2000 के अनुसार परीक्षा में अतिरिक्त समय नही दे रहें है। अंकित गौतम इस बात से बिलकुल भी नहीं डरा कि अपने ही डायरेक्टर के विरूद्ध आयोग में की गयी शिकायत का प्रतिफल उसे अन्य तरीकों से परेशान होकर भुगतना पड़ सकता है। प्रार्थी को यह भय था कि अतिरिक्त समय न दिये जाने के कारण उसे अन्य परीक्षार्थियों की तरह ही परीक्षा देनी पेड़ेगी। परीक्षार्थी ने माननीय आयोग से निवेदन किया कि वह तत्काल इस समस्या का कोई निदान परीक्षार्थी को दें।

माननीय आयोग को अंकित गौतम के प्रत्यावेदन में सच्चाई परिलक्षित हुई और माननीय आयोग ने महसूस किया कि न सिर्फ विकलाँग परीक्षार्थी को न्याय दिया जाना चाहिए अपुति यह न्याय तत्काल दिया जाना चाहिए क्योंकि यदि न्याय देर से दिया गया तो वह न्याय, अन्याय के बराबर ही होता है। इसी क्रम में आयोग ने दिनांक 10.05.2010 को निदेशक (एस.सी.ई.आर.टी.) को यह निर्देष दिया कि निदेशक यह सुनिश्चित करें कि मानाधिकार का किसी प्रकार का कोई उल्लघांन नही होना चाहिए, और किसी भी प्रकार

• मुख्य सहायक संपादक, संस्कार पत्रिका, मुम्बई

से अंकित गौतम का कोई भी नुकसान इसलिए नहीं होना चाहिए, क्योंकि वह विकलाँग है। माननीय आयोग ने इस आदेश को तत्काल अमल में लाने के लिए यह भी निर्देष दिये कि इस आदेश को फैक्स के माध्यम से डायरेक्टर को भेज दिया जाये एवं डायरेक्टर हर हाल में 03 दिनों में इस आदेश के अनुपालन में रिपोर्ट भेजेंगे। माननीय आयोग ने अंकित गौतम का यह भी निर्देष दिया कि इस आदेश की एक प्रति के साथ अंकित गौतम स्वयं डायरेक्टर से मिले एवं आदेश के अनुपालन में अपनी बात डायरेक्टर से कहें।

तीन दिन बीत गये। अंकित को इस लड़ाई में पहली जीत मिल चुकी थी एवं माननीय आयोग के निर्देष के क्रम में उसे आधा घण्टा अतिरिक्त व एक सहायक लेखक की सुविधा मिल गयी परन्तु अंकित चुप नहीं रहा। यह जीत पूर्ण नहीं थी।

जैसा कि अपेक्षित था डायरेक्टर ने अपनी रिपोर्ट माननीय आयोग के सामने भेजी कि अंकित गौतम को आधे घण्टे का अतिरिक्त समय और एक सहायक लेखक परीक्षा के लिए उपलब्ध करा दिया जा रहा है। अंकित गौतम ने माननीय आयोग के दिशा–निर्देषों के कारण आधे घण्टे का अधिक समय प्राप्त किया वह एक सहायक लेखक भी प्राप्त किया।

इसके एक दिन बाद 14.05.2010 को डायरेक्टर ने पुनः एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, कि डाइट एक शिक्षण संस्थान है, जो व्यवसायिक शिक्षा देता है, जिसमें प्राथमिक स्कूलों के लिए शिक्षक तैयार किये जाते है, जिसमे प्रशिक्षण का समय 02 वर्ष होता है। इस प्रशिक्षण में वार्षिक इम्तिहान होते है, जिनमें परीक्षा डेढ़ घण्टे से तीन घण्टे के बीच की होती है और वह हर विकलांग परीक्षार्थी को आधे घण्टे की सुविधा व एक सहायक लेखक देते है, चाहें परीक्षा का समय डेढ़ घण्टे हो या तीन घण्टे हो। जहां तक परीक्षार्थियों को एक घण्टे का अतिरिक्त समय देने की बात है उस पर वरिष्ठ अधिकारियों से वार्ता हुई परन्तु वार्ता में कोई निष्कर्श नही निकल पाया और अन्ततः यह निर्णय हुआ कि पूरे प्रकरण को परीक्षा सलहाकार परिषद की आगामी बैठक में रखा जायेगा एवं चूंकि यह बिन्दु सिद्धान्त का बिन्दु है और परीक्षार्थियों पर लागू होना है अतः इसका निर्णय परीक्षा सलाहाकार समिति ही करेगी। यह स्पष्ट नहीं था कि एस.सी.आई.आर.टी. इस मुद्दे पर कितना गम्भीर है, मामला अभी भी आयोग के विचाराधीन था और अंकित की लड़ाई जारी थी।

माननीय आयोग ने पुनः इस मामले को संज्ञान में लिया तो यह पाया गया कि चीफ कमिश्नर (विकलांगता) जो समाज कल्याण के अन्तर्गत है, ने दिनांक 02.08.2000 को विकलांगों के लिए सुविधाओं के निर्देष दिये गये है और इस निर्देष के पैरा–1 में यह निर्देष दिया गया है कि सभी शिक्षण संस्थायें अन्धे या अल्प दृष्टि धारक व्यक्तियों को

विकलांगता का लाभ देगी एवं पैरा–3 में लाभ को परिभाषित करते हुए यह कहा गया है कि हर परीक्षार्थी को, चूंकि वह अपने सहायक परीक्षार्थी को बोल–बोल कर लिखवाता है, उसे सवालो का जबाब देने में ज्यादा समय लगता है, ऐसी दशा में हर परीक्षार्थी को अन्य परीक्षार्थियों के बराबर मौका दिये जाने के लिए एक घण्टे के परीक्षा के लिए 20 मिनट अतिरिक्त समय दिया जाना चाहिए एवं यदि परीक्षा एक घण्टे से ज्यादा या कम की है, तो20 मिनट प्रतिघण्टा केअतिरिक्त समय की दर से विकलांग परीक्षार्थी को समय दिया जाना चाहिए। माननीय आयोग ने कहा कि ऐसा लगता है कि एस.सी.ई.आर.टी. द्वारा अतिरिक्त समय दिये जाने के सिद्धान्तों को मौलिक रूप से नहीं समझा है एवं विकलागों को समान मौका दिये जाने सम्बन्धी अधिनियम 1995 की धारा 31 का पालन भी नहीं कर रही है। हालांकि कमीशन इस बात की तारीफ करती है एस.सी.ई.आरटी. यह चाहती है कि पूरा प्रकरण सलाहाकार परिषद के सामने रखा जायें परन्तु ऐसा करने में विलम्ब होता है, तो विकलागों को उनके कानूनी अधिकार नहीं मिलेगे। अंकित गौतम ने जो मुद्दा उठाया है वह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जिस पर गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिए प्रकरण में विलम्ब न हो इस लिए, कमीशन एस.सी.ई.आर.टी को मात्र चार हफ्ते का समय देता है कि एस.सी.ई.आर.टी. इस दिषा में किये गये प्रयासो की रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

कमीशन के आदेशों से असर हुआ और एस.सी.ई.आर.टी. ने दिनांक 17.09.2010 को भेजी गयी अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया कि वह दिनांक 02.08.2000 के आदेशों के अनुरूप सभी विकलांग परीक्षार्थियों को 20 मिनट का अतिरिक्त समय प्रति घण्टे के हिसाब से देने के लिए प्रतिबन्ध है। एस.सी.ई.आरटी. का यह भी कथन था कि चूंकि 2010 के इम्तिहान समाप्त हो चुके है अतः कोई परीक्षार्थी पुनः परीक्षा देना चाहता है, तो उसे यह सुविधा दी जायेगी। यही नहीं आगे होने वाले इम्तिहानों में अंकित गौतम के अतिरिक्त सभी विकलांग परीक्षार्थियों को इस प्रकार की सुविधा दी जायेगी।

कमीशन ने एस.सी.ई.आर.टी. द्वारा दिये गये कदमों की सराहना की एवं यह महसूस किया कि इस प्रकार की सुविधा पूरे देश सभी विकलांग परीक्षार्थियों को दिया जाना चाहिए इसलिए कमीशन ने यह निर्देष दिया कि प्रदेश के सभी मुख्य सचिवों को माननीय कमीशन की तरफ से यह निर्देष भेजा जाये कि वह प्रदेश के सभी विकलांगों को परीक्षा में इस प्रकार की सुविधा प्रदान करायें।

सभी प्रदेशों के मुख्य सचिव को पत्र लिखा गया। मध्य प्रदेश ने 01.11.2010 को यह अवगत कराया कि उनके प्रदेश में यह सुविधा लागू कर दी गयी है परन्तु अन्य प्रदेशों ने यह सुविधा लागू नहीं हो पायी थी।

माननीय आयोग द्वारा पूरे भारतवर्ष में इस प्रकार की सुविधा लागू करने के निर्देष जारी कर दिये गये है।

अंकित गौतम का यह प्रयास एक सराहनीय प्रयास था। अंकित गौतम ने देशभर के विकलाँग विद्यार्थियों को उनका अधिकार दिलाया। शायद स्वयं के लिए सुविधा प्राप्त करके यदि अंकित चुप बैठ जाता, तो उसके अन्य साथी इन सुविधाओं से वंचित रह जाते। माननीय आयोग द्वारा न सिर्फ अंकित के प्रयासों की सराहना की वरन माननीय आयोग ने यह सिद्ध कर दिया कि आयोग मानव संवेदनाओं के प्रति सचेत है।

केस नं0–1889/30/3/2010

कहानियां

पेट की आग ने बीमार इतना कर डाला..........

डॉ.दीप्ति भारद्वाज

पेट की आग जिन्दगी को दॉव पर लगा देती है। जिन्दगी आज भी रोटी से ज्यादा सस्ती है। देखते ही देखते 304 आदिवासी परिवार बेसहारा हो गए। मेहनतकश आदिवासी शिक्षा के अभाव में मजदूरी तो करते पर जागरूक नही थे। मध्य प्रदेश के झाबुआ और अलिराजपुर के आदिवासी आजीविका की तलाश में गुजरात के खेड़ा और पँचमहल इलाके में स्थित क्वार्ट्ज क्रशिंग फैक्ट्री में मजदूरी करने पहुँच गए। पत्थरों को काटते समय उनसे एक पाउडर उड़ता था। वे बेचारे इससे अनभिज्ञ सिलीकॉसिक बीमारी की चपेट मे आ गए। तबीयत बिगड़ जाने पर घर लौटे तो कभी वापस न जा सके।

असमय मौत का शिकार हो रहे गरीब आदिवासी मजदूरों की समस्या की ओर जुबान सिंह नाम के सज्जन का ध्यान गया। बिगड़ी हालत के मद्देनजर उन्होंने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का दरवाजा खटखटाया। आयोग की संवेदनशील दृष्टि ने विशय को गम्भीरता से लिया। आयोग ने श्री पी0सी0शर्मा की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की।

12 नवम्बर 2010 को आयोग ने निरीक्षण के बाद गुजरात सरकार को आदेशित किया कि गुजरात राज्य की स्टेट इन्फोर्समेण्ट एजेन्सी ने फैक्ट्री में उन आवश्यक सुरक्षात्मक मानकों की अनदेखी की जिनसे गरीब मजदूरों के जीवन को बचाया जा सकता है। सरकार सिलीकासिस जैसी गम्भीर जानलेवा बीमारी से मजदूरों को बचानें में असफल सिद्ध हुयी है।

गरीब मजदूरों के आश्रितों के दर्द को समझते हुये आयोग ने आदेशित किया कि 304 लोग जो पत्थर काटने की यूनिट में काम करते हुये मर गए उनके परिजनों को सरकार राहत राशि मुहैया कराये।

• मुख्य सहायक संपादक, संस्कार पत्रिका, मुम्बई

जिनके घरों के चूल्हों की आग ठण्डी पड़ चुकी थी, आयोग ने उन्हे सम्मानपूर्वक जीवन देने के लिये तीन–तीन लाख रूपये मृतक के परिवार को देने की संस्तुति की। जिसमें एक लाख रूपये नकद तथा दो लाख रूपये का फिक्सडिपाजिट करनें को कहा ताकि प्रति माह व्याज की एकमुश्त राशि परिवार की जरूरतों को पूर्ण कर सके। आठ सप्ताह में आयोग के समक्ष प्रमाण प्रस्तुत करने को कहा।

गुजरात सरकार के श्रम एवं रोजगार विभाग के अतिरिक्त मुख्य सचिव ने 25.03.2010 को आयोग के समक्ष गुजरात सरकार का पक्ष रखते हुये कहा कि ईएसआई एक्ट 1948 के तहत 148 लोगों को लाभान्वित किया जा सकेगा और 90 मजदूरों को श्रमिक राहत अधिनियम 1923 के तहत राहत राशि दी जा सकेगी।

गुजरात सरकार ने कहा कि फैक्ट्री अधिनियम के तहत दी जानें वाली राहत का लाभ मिलेगा जिनमें मष्तकों की संख्या 238 है।

राज्य मानवाधिकार आयोग ने कहा कि जो सुविधायें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित है वे तो देनी ही हैं। परन्तु वे इतनी कम है कि आयोग द्वारा संस्तुत धनराशि भी 304 प्रभावित परिवारों को नियमानुसार और पुनर्वास पैकेज के रूप में देनी होगी। इस कार्य को राज्य सरकार पूरा कर छह सप्ताह में अपनी रिर्पोट प्रमाण रूप में आयोग के समक्ष प्रस्तुत करें।

गुजरात सरकार ने अपनी संवेदनशीलता का परिचय दिया और उन परिवारों को राहत राशि प्रदान की। एक बार फिर मनुष्यता मुस्कुरा उठी।

(केस संख्या–300/6/25/07–08)

ये कैसी संवेदना!

डॉ. दीप्ति भारद्वाज

निरीह और बदहवास गोकुल गोण्ड अपनी 16 साल की बेटी सोहागा की लाश को अपनी साइकिल के कैरियर पर ढो रहा था। गरीबी अगर अभिशाप है तो गरीब के लिये संवेदना कहाँ? समाज के घोर अमानवीय, असंवेदनशील स्वभाव की परिचायक है यह घटना।

मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिले के दुधमुनियाँ गाँव के गोकुल गोण्ड की बेटी सोहागा की जहर की वजह से अप्राकृतिक असमय मौत हो गयी। स्थानीय पुलिस ने पँचनामा किया और लाश को अनूपपुर के पोस्टमार्टम हाउस में पोस्टमार्टम के लिये ले जाने को कहा। गरीबी में साया भी साथ नही देता कोई सुविधा उसे पोस्टमार्टम हाउस तक जानें के लिए नही मिली न ही कोई सहायता।

गोकुल गोण्ड ने अपनी लाडली की लाश को बड़े भावशून्य होते हुए अपनी साइकिल के कैरीयर पर बाँध लिया और दुधमुनियाँ से 14 किलोमीटर दूर अनूपपुर को निकल पड़ा। अपने भीतर असह्य वेदना समेटे गोकुल गोण्ड जब पोस्टमार्टम हाउस से 03 किमी0 की दूरी पर था कि वहाँ के स्थानीय लोगों की निगाह उस पर पड़ी। इस स्थिति को देख हतप्रभ लोगों ने उसके दर्द को समझा और सान्त्वना दी। उन लोगों ने स्थानीय काँग्रेस विधायक को घटना की जानकारी दी। विधायक ने मानवीयता का परिचय देते हुए गोकुल गोण्ड की पुलिस अधीक्षक से मिलवाया। शव पोस्टर्माटम के लिए ले जाया गया और बाद में जिलाधिकारी ने लाश ढोने वाली गाड़ी की व्यवस्था कर शव को सम्मान सहित गाँव भेजा।

दुधमुनियाँ गाँव के स्थानीय प्रशासन की इस अमानवीयता और संवेदनहीनता पर द इण्डियन एक्सप्रेस ने दिनांक 11.01.2011 को खबर छापी। अनुसूचित जाति–जनजाति तथा गरीबी के प्रति इतनी भयावह निष्ठुरता आश्चर्यजनक थी।

• मुख्य सहायक संपादक, संस्कार पत्रिका, मुम्बई

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री के0जी0 बालकृष्णन् की निगाह उस खबर पर गयी। उनका संवेदनशील मन प्रशासनिक भावशून्यता पर सिहर उठा। उन्होंने रिपोर्ट को आधार बना स्व प्रेरणा से दिनाँक 12.01.2011 को आयोग की ओर से एक नोटिस मध्यप्रदेश सरकार को उनके मुख्य सचिव व डी0जी0पी0 के माध्यम से भेजा।

डी0जी0पी0 ने मामले को पूरी गम्भीरता से लेते हुये कार्यवाही की। जिसमें स्थानीय थाने के संवेदनहीन ए0एस0आई सुन्दरलाल तिवारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के आदेश दिये तथा निलम्बित कर दिया गया ।

आयोग ने मानवाधिकार हनन तथा मृतक के उचित सम्मान की अनदेखी तथा पिता के मानसिक कश्ट के लिए जिम्मेदार स्थानीय प्रशासन को गोकुलगोण्ड को 25000/रु की राहत राशि देने को आदेशित किया ।

मध्य प्रदेश सरकार ने मानवता का परिचय देते हुये चार हफ्तों में राहत राशि को देकर उसकी प्रमाणिक सूचना आयोग को भिजवा दी।

राहत राशि उस पिता की मानसिक पीड़ा की भरपाई तो नहीं कर सकती लेकिन समाज को एक संदेश अवश्य देती है।

(केस संख्या–55/12/01/2011)

धान की चोट

डॉ.दीप्ती भारद्वाज

दासत्व बोध के साथ चंद्रमणि बारिक ने अपने सतासी साल तो गुजार दिए पर उन्हें इस एहसास के साथ मरना कुबूल न था। उनके भीतर का मनुष्य जागा। उन्होंने परम्परा के नाम पर गुलाम बना लेने वाली प्रथा के खिलाफ संघर्ष का रास्ता चुना।

अनपढ़ थे तो क्या। कोई भी चुनौती और संकल्प रास्ते खोल देता है। मानवाधिकार कार्यकर्ता श्री बाघम्बर पटनायक ने उनकी इच्छा को अपनी शक्ति प्रदान की और पीढ़ियों को इस गुलाम प्रथा से मुक्त कराने का बीड़ा उठाया।

गरीबी मनुष्यता के लिए अभिशाप है। बाघम्बर पटनायक ने चंद्रमणि बारिक उम्र सतासी साल का प्रतिनिधि बन आयोग में शिकायत की। 14.04.2008 को उन्होंने प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करते हुए कहा कि बारटन की प्रथा उड़ीसा राज्य के कई भागों में आज भी प्रचलित है। इसी प्रथा के तहत नलीवस्तांता गाँव में रहने वाले कुछ लोग प्रताड़ित किये जा रहे हैं एवं प्रताड़ित किये जाने वालों को सजा दिये जाने के सम्बन्ध में कोई कार्यवाही नहीं की जा रही है। इस सम्बन्ध में माननीय आयोग को गलत व भ्रामक सूचनायें भेजे जाना एवं जिला मजिस्ट्रेट कटक, खुरदा, जगदीशसिंहपुर के समक्ष जो शिकायतें रखी गयी हैं उन शिकायतों के सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय कार्यवाही नहीं की जा रही है।

बाघम्बर पटनायक ने अपनी शिकायत में इस बात का जिक्र किया था कि बारटन प्रथा के तहत उच्च जाति के लोगों द्वारा निम्न जाति के लोगों को जिनमें मुख्य रूप से नाई व धोबी शामिल होते हैं को साल में एक बार परिवार के बालिग विवाहित सदस्यों को प्रति सदस्य 15 किलो धान प्रति वर्ष दिया जाता है। यह अग्रिम भुगतान की तरह होता है। भुगतान प्राप्त किये लोग सेवक कहे जाते है। यह सेवक परिवार के सभी लोगों जिसमें अविवाहित लड़के भी शामिल होते हैं की साल भर सेवा करते हैं और इस सेवा के बदले उन्हें

• मुख्य सहायक संपादक, संस्कार पत्रिका, मुम्बई

कोई धन नही मिलता है। इन सेवकों का मुख्य काम अतिथियों के पैर धोना, उनकी पत्तलें उठाना तथा शादी व मृत्यु के समय सभी छोटे से छोट कार्य करना भी शामिल होता है।

बाघम्बर पटनायक में अपनी षिकायत में यह कहा था कि 19.02.2005 में गाँव भुवनपति में ऊँची जाति के लोगों ने गरीबों के घर में जाकर मारपीट की व लूटपाट की तथा महिलाओं के साथ बदसलूकी की गयी। इसके सम्बन्ध में माननीय आयोग ने मुख्य सचिव उड़ीसा सरकार व कलेक्टर पुरी को कार्यवाही करके छह सप्ताह में रिर्पोट देने को कहा था।

दिनाँक 30.04.2007 को जिला मजिस्ट्रेट पुरी ने अवगत कराया कि इलाके की नाई व धोबी जाति के लोगों तथा ऊँची जाति के लोगों में ब्रह्यगिरी क्षेत्र में एक प्रथा प्रचलित है जिसके तहत किसी भोज के बाद भोजन करनें वालो के पैर धोये जाते हैं तथा उनके द्वारा छोड़े गये पत्तल उठाने के लिये नीची जाति के लोगों का इस्तेमाल किया जाता है। इस प्रथा के सम्बन्ध में जिला प्रषासन द्वारा कई बैठके की गयी तथा मौके पर कई बार तहसीलदार व प्रशासन को भेजा गया और उन्हें सरकार की मंशा को समझाया गया।

जिला मजिस्ट्रेट ने यह भी अवगत कराया कि पंचायती राज्य विभाग में अपनें प्रपत्र दिनाँक 08.04.2004 को यह स्पष्ट कर दिया था कि क्षेत्र मे काम कर रहे नाई व धोबी जाति के लोग प्रथा के तहत काम करते है एवं राजस्व विभाग की नियमावली के तहत वे बंधक मजदूरों की श्रेणी में नहीं आते है। इसके अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट ने 18.01.2007 को जिला बंधुआ मजदूर विजलेंस कमेटी को निर्देष दिया था कि जिले में काम करनें वाले सभी बंधुआ मजदूरों की कमेटी बना ली जाय तथा बंधुआ मजदूर उन्मूलन की कार्यवाही की जाय।

जिला मजिस्ट्रेट ने यह अवगत कराया कि मारपीट की घटना के सम्बन्ध में 04 लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया है और 27 लोगों के विरुद्ध मुकदमा दर्ज कर लिया गया है।

परन्तु मूल प्रश्न तो रह गया था कि बारटन की प्रथा बंधुआ मजदूरी की प्रथा में आती है कि नहीं। इस प्रश्न का उत्तर मानवाधिकार आयोग तलाश कर रहा था । आयोग की तीन सदस्यीय समिति ने यह निर्णय लिया कि यह बिन्दु एक राष्ट्रीय महत्त्व का बिन्दु है तो उचित यह होगा कि इसे मानवाधिकार आयोग की पूरी बेन्च के समक्ष रखा जाय एवं फुलबेंच इस बात का निर्णय ले कि समाजकल्याण विभाग व जिला मजिस्ट्रेट की रिर्पोट के क्रम में क्या बारटन की प्रथा बधुआँ मजदूरी की श्रेणी में आयेगी।

यह एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय बिन्दु था जो उड़ीसा तथा लगभग पूरे दक्षिणी भारत में चली आ रही बारटन प्रथा जिसमे गाँव के गरीब परिवार को मात्र 15 किलो धान प्रति बालिग व्यक्ति को देकर पूरे वर्ष उससे सेवक के रूप मे काम लिया जाता था। यही नहीं काम न करनें की दशा में उसका सामाजिक बहिष्कार होता था, जिसके तहत उसे गाँव के बाजार से बर्तन, खानें–पीने की सामग्री आदि पैसा देने पर भी उपलब्ध नहीं होती थी। गाँव के नाई सेवक के रूप में ऊँची जाति के लोगों के मुफ्त में बाल काटा करते थे एवं धोबी मुफ्त में कपड़े धोया करते थे।

फरीद कोट हाउस नई दिल्ली जहाँ राष्ट्रीय मानवाधिकार का कार्यालय स्थित है वहाँ 28.09.2010 को इस प्रकरण की सुनवाई हुयी। शिकायतकर्ता के रूप में बाघाम्बर पटनायक एवं राज्य का पक्ष रखाने के लिये सुरेन्द्र नाथ त्रिपाठी प्रमुख सचिव पंचायती राज्य उड़ीसा, मौजूद थे। पाँच सदस्यीय कमेटी में न्यायमूर्ति के0जी0 बालाकृष्णन (अध्यक्ष) न्यायमूर्ति जी0 पी0 माथुर, न्यायमूर्ति बी0 सी0पटेल, श्री सत्यव्रत पॉल सदस्य, श्री पी0 सी0 शर्मा, सदस्य मौजूद थे।

सभी पक्षों को सुनने के बाद मानवाधिकार आयोग ने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय सुनाया। आयोग के अनुसार हालांकि पंचायती राज्य विभाग ने यह कहकर कि धोबी व नाई जाति के लोगों द्वारा किये गये कार्य बंधक मजदूरों की श्रेणी में नहीं आते हैं, अपना पल्ला झाड़ लिया। परन्तु मानवाधिकार आयोग ने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय सुनाया। आयोग की फुल बेंच के निर्णय में नाई, धोबी व अन्य जाति के लोगों को बारटन देकर जबरदस्ती या प्रथा के नाम पर उनसे वर्ष भर बिना कोई मजदूरी दिये काम लिये जानें को बंधुआ मजदूरी व्यवस्था के अन्तर्गत माना तथा राज्य के अलग–अलग क्षेत्रों मे बारटन प्रथा के नाम पर किए जा रहे शोषण को बंधुआ मजदूरी कानून के अन्तर्गत मानते हुये ऐसे व्यक्तियों को सजा देने का प्रावधान किया।

यह मानवाधिकार आयोग का नया चेहरा था, जिसके तहत आयोग ने यह स्पष्ट किया कि सरकारें किस प्रकार से गलत व अनैतिक प्रथाओं को किताबी दृष्टिकोंण से देखती है न कि मानवीय दृष्टिकोंण से। एक सड़ी–गली प्रथा को जिसके तहत मानव ही मानव का शोषण कर रहा था खत्म करने में मानवाधिकार आयोग ने एक अहम् भूमिका निभाई।

(केस संख्या–13–18 / 2006–2007)

आखिर आठ साल बाद

डॉ.दीप्ति भारद्वाज

स्थान चाँदीपुर रेंज, जिला बालासुर सेना के लिये यह स्थान बारूद व बम के परीक्षण का स्थान है। दिनाँक 25 व 26.07.2002 को सेना ने क्षेत्र में 40 विस्फोट किये और यह सोच कर लौट गयी कि सारे बम फट गये। परीक्षण सकुशल हुआ और निर्णय लिया गया कि देश की सेवा के लिये बचे हुये बमों की खेप इस्तेमाल की जा सकती है। सेना ने स्थान छोड़ दिया एवं आस–पास के गाँव वाले बचे हुये बमों के टुकड़ों से बचा हुआ लोहा, ताँबा, पीतल इकठ्ठा करने के लिये पहुँच गये। गाँव वालों को एक बड़ा बम मिला जिसमें ज्यादा पीतल होने की सम्भावना थी। दस गाँव वाले इस बम के हिस्सेदार बनें। बम से पीतल व ताँबा निकाले जाने का काम शुरू हुआ, लेकिन बम जिन्दा था, फट गया और दस में से सात व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी। लाशें पहचानी नहीं जा रही थीं, लेकिन गाँव वालों ने उन जली हुयी लाशों को दफनाया और परिवार के लोग गाँव छोड़ कर भाग गये। खबर अखबार में छपी एवं मानवाधिकार आयोग की निगाह उसपर पड़ी। मानवाधिकार आयोग ने सचिव, रक्षा मंत्रालय से इस सम्बन्ध में रिपोर्ट माँगी। रक्षा मंत्रालय ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि 84 मिली0मी0 के लाँचर का परीक्षण किया गया था परन्तु परीक्षण के बाद मौके पर कोई घटना एवं मृत्यु की कोई सूचना नहीं है। इनके बाद यदि कोई घटना नहीं घटी हो तो उसकी जिम्मेदारी रक्षामंत्रालय की नहीं है।

भला आयोग इस तर्क से कहाँ सहमत था। आयोग ने इस सम्बन्ध में जिला कलेक्टर बालासोर से जाँच करने को कहा। जिला कलक्टर ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि डीआरडीओ द्वारा इस भूमि पर जो उनके द्वारा अधिगृहित की गयी है पर समय–समय पर परीक्षण किये जाते है। यह क्षेत्र एक तरफ नदी से व चारों तरफ घने जंगलों से घिरा है। क्षेत्र की कोई बाउन्ड्री या बाड़ा नहीं है कानूनन परीक्षण विस्फोट के बाद डीआरडीओ को सभी खाली सेल इकठ्ठा करके क्षेत्र को साफ कर दिया जाना चाहिए परन्तु

• मुख्य सहायक संपादक, संस्कार पत्रिका, मुम्बई

डीआरडीए विस्फोट के बाद क्षेत्र की सफाई पर ज्यादा ध्यान नहीं देती है। आस–पास के गाँव वाले विस्फोटों के बाद बचे हुये टुकड़ों को बाजार में बेच देते है, जिससे उन्हे धन मिल जाता है। इसी क्रम में एक बम ग्रामीणों के हाथ पड़ा जो जीवित था और उसमें से धातु निकालते समय विस्फोट हुआ। डीआरडीओ के पास ऐसी व्यवस्था नहीं है कि वे अपने इस क्षेत्र से गाँव वालों को दूर रख सकें।

मानवाधिकार ने इस रिपोर्ट को पुनः रक्षा विभाग में निदेशक विजलेंस व सुरक्षा को भेजा, जिसमें सुरक्षा विभाग ने स्वीकार किया कि समुद्र के किनारें 16 किमी0 तक जो क्षेत्र उनके पास है उसकी कोई बाउन्ड्री नहीं है। हलांकि डीआरडीओ विस्फोट के बाद सारा मलवा उठा लेता है परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वहाँ पर कुछ सेल बचे रह जायें।

मानवाधिकार ने यह पाया कि इस बात से इनकार नही किया जा सकता कि रक्षा विभाग की लापरवाही से यह घटना घटी है। अतः मरे हुये व्यक्तियों के परिवार को मुआवजा भुगतान के लिये नोटिस भेजी गयी।

नोटिस का जबाब बड़ा हास्यास्पद था। उनका मत था कि उनके द्वारा 84 किलो के बम फोड़े गये थे न कि 80 किलो के एवं अखबारों की रिपोर्ट के अनुसार गाँव वालों की मृत्यु 80 किलो वाले बम से हुयी है। इस प्रकार से यह बम डिफेंस रक्षा विभाग का नही था। इससे इनकार नही किया जा सकता है कि यह बम किसी अन्य स्रोत से गाँव वालों ने प्राप्त किया हो।

मानवाधिकार आयोग ने इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि 2009 तक रक्षा विभाग ने न कोई जाँच की और न ही इस सम्बन्ध मे कोई कदम उठाया।

माननीय आयोग ने यह निर्णय दिया कि समस्त लापरवाही रक्षा विभाग की है एवं रक्षा विभाग को उन आठ व्यक्तियों को तीन–तीन लाख रुपया प्रति मृतक के अनुसार भुगतान कर आठ सप्ताह के भीतर आयोग के समक्ष प्रमाण प्रस्तुत करें।

मानवाधिकार आयोग के संवेदनशील अध्यक्ष जस्टिस के0जी0 बालाकृष्णन के इस आदेश का मानवीय पहलू यह था कि मृत्यु के आठ वर्ष बाद 08 ग्रामीणों के परिवारों को चौबीस लाख रुपये का मुआवजा प्राप्त हुआ, जबकि यह सभी परिवार घटना के समय अपने मृतक परिजन की लाश का अन्तिम संस्कार कर इस भय से गाँव छोड़ कर चले गये थे कि पुलिस–प्रशासन व सेना के लोग उन्हें परेशान कर सकते हैं।

(केस संख्या–613/18/2002–2003–F)

समीक्षा

समीक्षा

"सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति : मीडिया और जनसंवाद"

• डॉ0 अमरनाथ 'अमर'

मीडिया आज हमारे समय और समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है। समाज में मीडिया की महती भूमिका को देखते हुए, इसे जनतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है। मीडिया आज समाज में अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र नहीं है, बल्कि यह हमारी समाजिक व्यवस्था को और अधिक उत्तरदायी बनाने में विभिन्न कानूनी एवं संवैधानिक संस्थाओं की मदद कर रहा है। समाज में जहाँ कहीं भी गैर बराबरी और शोषण परक व्यवस्था है मीडिया इस शोषणकारी चरित्र का पर्दाफाश कर सच्चाई को व्यापक जन समाज के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है।

'मीडिया और जनसंवाद' पुस्तक में इसे बखूबी प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने अपने लेखों के उस अंश का संचयन इस पुस्तक में किया है जो व्यापक रूप से काम जन की भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। मीडिया बाजारवादी व्यवस्था तथा इसकी संस्कृति से अछूता नहीं है। अतः समाज में बाजारवादी व्यवस्था भोग की संस्कृति को बढ़ावा दे रही है, मीडिया में व्यापक रूप से अर्थतंत्र के समावेश के कारण इसका भी व्यावसायीकरण अत्यंत ही तेजी से हो रहा है। इससे मीडिया में आने वाली खामियों को भी लेखकों ने बहुत ही सूक्ष्मता एवं बेबाकी से अभिव्यक्त किया है।

मीडिया समाज में फैले बुराई या किसी अमानवीय घटना को मात्र दर्शकों या श्रोताओं के सामने प्रस्तुत ही नहीं करता बल्कि उसके प्रति व्यापक वैचारिक

• वरिष्ठ समीक्षक एवं साहित्यकार

बहस के लिए समाज में स्थान भी बनाता है। वह समाज में व्याप्त हिंसा, व्यभिचार शोषण आदि को खबर के माध्यम से समाज में व्यापक जन जागृति भी लाता है। अतः इसके माध्यम से अपराध की प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जाता है। अतः मीडिया चाहे वह प्रिंट मीडिया हो या इलैक्ट्रानिक मीडिया यह जन जागृति का सशक्त माध्यम है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने मीडिया की विशेषताओं के साथ इसमें व्याप्त खामियों एवं पक्षपात पूर्ण कार्यप्रणालियों को भी बहुत ही बेबाकी के साथ स्वीकार किया है। बलात्कार जैसे सामाजिक रूप से घृणित कार्य की रिपोर्टिंग के संबध में लेखिका ने लिखा है कि "एक सच बलात्कार से जुड़ी श्रेणियों का भी है। बलात्कार की कवरेज पीड़ित की क्लास (निम्न, मध्य या उच्च वर्ग) जगह (स्लम, पाश या मध्यवर्गीय) पारिवारिक पृष्ठभूमि, शहर, शैक्षिक योग्यता वगैरह के आधार पर जगह और प्राथमिकता पाती है। इसके अलावा आरोपी की पृष्ठभूमि भी काफी मायने रखती है। बलात्कार जब तक ठोस खबर की वजह नहीं बनाता, वह मीडिया की नजरों से अछूता रहता है और कई बार न्याय पाने में भी पिछड़ जाता है।" अतः खबर का प्रसारण या कवरेज करते समय पीड़ित के क्लास, जाति या आवास, आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर अभिव्यक्त नहीं करना चाहिए। मीडिया को बिना किसी भेद–भाव के सभी को समान न्याय दिलाने के उद्देश्य से सभी शोषितों को न्याय दिलाने का प्रयत्न करना चाहिए। लेखिका के द्वारा व्यक्त मीडिया के इस चरित्र को हम देख एवं महसूस कर सकते हैं।

लेखकों ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के सूक्ष्म–से–सूक्ष्म रूप को बहुत ही कलात्मकता के साथ प्रस्तुत पुस्तक के लेखों में समाविष्ट किया है। पुस्तक में लेखक की यह महत्वपूर्ण विशेषता रही है कि वह बहुत ही हल्के अंदाज में अत्यंत ही गंभीर बात को अभिव्यक्त कर गये हैं। पुलिस व्यवस्था में भ्रष्टाचार को प्रस्तुत अंश में व्यक्त किया गया है:– "दिल्ली का 'लवर्स पैराडाइज' यानी नेहरू पार्क। शाम के छः बजे हैं। झुरमुटों के आसपास कई युगल दिखते हैं। कोई किसी की गोद में लेटा, कोई प्रेमिका की आंखों की भाषा को बांचता तो कोई भविष्य और वर्तमान के झूले में झाकता। सबके कुछ सपने हैं, लेकिन डर एक जैसा। कहीं पुलिस वाला या चौकीदार न देख ले। अपनी–अपनी हैसियत के हिसाब से संकट से निपटने के लिए जेब के कोने में एक पुराना नोट भी छिपा पड़ा है।" अतः जो पुलिस वाले नैतिकता और व्यापक सामाजिकता के नाम पर इन प्रेमी युगल को परेशान करते है। इस प्रकार पुलिस एवं प्रशासन में सदाबहार रूप में फैले भ्रष्टाचार को लेखक ने द्वारा पुस्तक में चित्रित किया है जो हल्के अंदाज में कहते हुए उस कृत्य पर करारा व्यंग्य किया गया है।

लेखक स्वयं एक पत्रकार होने के कारण, पत्रकारिता जगत की सच्चाई को करीब से जानने का अवसर उसे प्राप्त हुआ है। अतः जो मीडिया सामाजिक समस्याओं तथा समाज में फैले शोषण, अत्याचार, अमानवीयता का विरोध करता है उसके अंदर भी इस तरह की बुराइयों का घुसपैठ हो गया है। लेखिका वर्तिका नन्दा ने बहुत ही निर्भीकता से मीडिया के अंदर की बुराइयों को सरे आम किया है। इन्होंने मात्र कही सुनी बातों को ही नहीं व्यक्त किया है। एक घटना का उल्लेख देखने योग्य है।

"एक साल में महिला पत्रकार को लेकर बने एम एम एस का शायद यह तीसरा मामला है और मीडिया के अंदर आत्महत्या और हताशा की कहानी भी नई नहीं है। इनमें से एक एम एम एस मेरी ही एक परिचित पत्रकार पर बना था और उसके भी इस मामले से यह कहकर छुटकारा पाने की कोशिश की थी कि इस मीडिया युग में चेहरे बदलकर फुटेज जारी करना बहुत आसान है लेकिन गौर करने की बात यह है कि किसी ने भी इस मामले में कथित तौर पर पुलिस से कोई औपचारिक शिकायत तक नहीं की।" यह मात्र एक घटना है। इसके माध्यम से मीडिया के वास्ततिक चरित्र को समझा जा सकता है। इसी तरह के और ढेरों प्रसंगों का समायोजन लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में किया है। अतः अगर मीडिया समाज से सभी प्रकार के शोषण, भ्रष्टाचार और सामाजिक बुराईयों को समाप्त करना चाहता है तो उसे अपने स्वरूप को निष्कलंक रखना ही होगा। यह नहीं हो सकता कि कोई स्वयं तो कीचड़ में धंसा हो, और दूसरों पर कीचड़ उछालने वाले का विरोध करें या उसकी निंदा करे।

पुस्तक में वर्तिका नंदा के 18 स्तंभ और उदय सहाय के 17 स्तंभ हैं। ये सारे स्तम्भ वैचारिक यात्रा के साक्षी कहे जा सकते हैं। इस पुस्तक में न केवल मीडिया की यथार्थवादी स्थिति को बखूबी बनाए रखने का प्रयास किया गया है। अपितु उसके अंदर और बाहर के उहापोहों की भी बारीकी से समीक्षा की गयी है। मीडिया में ग्लोबलाइजेशन और ग्लोबलाइजेशन में मीडिया, स्टिंग पत्रकारिता, नैतिकता और कानूनी दायरे, आरुषि हत्याकांड सच और सबूत, मीडिया में विज्ञापन का अर्थ, आध्यात्मिक चैनल और मीडिया का सच, पत्रकारिता में ब्लॉगिंग की खलबली और जब जूता खबर बन जाए आदि ऐसे आलेख हैं जो पाठक एक बार में तथा बार–बार पढ़ना चाहेगा।

पुस्तक की भाषाशैली सहज और रोचक है। लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में भाषा के प्रति अपनी सजगता बनाये रखी है। पुस्तक में संग्रहीत लेखों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता

है कि लेखकों ने आज के हमारे गतिमान समाज की भाषा में अपने विचार को व्यक्त किया है। इसी कारण भाषा के साथ ही साथ विचारों में भी जीवंतता है। कुल मिलाकर पुस्तक उपयोगी, सूचनाप्रद एवं संग्रहणीय है।

पुस्तक का नाम : मीडिया और जनसंवाद
लेखक : वर्तिका नन्दा व उदय सहाय
प्रकाशन : सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण : 2009
पुस्तक का मूल्य : 200 रु0

समीक्षा

भ्रष्टाचार से लड़ने का कारगर हथियार सूचना का अधिकार

• *विजय नारायण मणि त्रिपाठी*

हमारा देश आजाद देश है। यहाँ पर लोकतंत्र का शासन है। लोकतंत्र से तात्पर्य यहाँ निवास करने वाली जनता है। संविधान को भी हम भारत के लोगों ने 'आत्मार्पित' एवं 'अंगीकृत' किया है। अतः हम भारतवासियों ने स्वेच्छा से, देश की शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए तथा सभी को अवसरों की समानता उपलब्ध कराने के लिए एवं सभी के समान विकास के महत– उद्देश्य को ध्यान में रखकर संविधान को स्वीकार किया है। अतः लोकतंत्र में लोक का हित सर्वोपरि है। लेकिन आज हम अपने समाज में देख रहे हैं कि सभी व्यक्तियों को विकास के समान अवसर उपलब्ध नहीं हो रहे हैं।

देश की 70 प्रतिशत के आस–पास जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है तथा वस्तु स्थिति यह है कि महंगाई बढ़ने के कारण इस बहुसंख्यक आबादी को जीवन यापन करना भी दुर्लभ होता जा रहा है। अतः जब 'लोक' यानी जनता को उसके द्वारा बनाए गए तंत्र में ही भूख, गरीबी, बेरोजगारी, हिंसा आदि कठिनाइयों से जूझना पड़ रहा है तो इसका प्रमुख कारण शासन तथा सामाजिक महत्त्व के प्रतिष्ठानों में बैठे हुए कुछ व्यक्तियों द्वारा मात्र अपने एवं अपने सगे– संबंधियों के हितों को ध्यान में रखना है। जिससे समाज में एक विशेष तबके को ही सभी प्रकार के सुख–सुविधाओं के उपभोग की स्वतंत्रता प्राप्त है तथा विकास के अवसर भी समाज के इसी वर्ग को प्राप्त होते हैं।

• युवा समीक्षक

अतः प्रश्न यह उठता है कि इस समस्या का निदान क्या है? तथा इस पर किस प्रकार से नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि सरकार एवं देश के अन्य कार्यालयों के काम काज को अधिक से अधिक पारदर्शी बनाया जाए। जिससे गोपनीयता के नाम पर किए जा रहे भ्रष्टाचार को रोका जा सके। अतः इसी महत् उद्देश्य को ध्यान में रखकर सन् 2005 में 'सूचना अधिकार कानून' को संविधान द्वारा कानून रूप में परिणित किया गया। अतः सभी नागरिकों को सरकार तथा सरकारी विभागों की कार्य प्रणाली को जानने का अधिकार है। प्रस्तुत पुस्तक '**सूचना का अधिकार व्यावहारिक मार्गदर्शिका**' इसी कानून को आम जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया है कि सूचना का अधिकार है क्या? इसके क्या महत्त्व हैं तथा किसी संस्थान या मंत्रालय से किस प्रकार सूचना प्राप्त किया जा सकता है।

लेखक द्वारा पुस्तक में लिखा है कि —"हर नागरिक को हर भारतीय को सरकारी या सरकार पोषित संस्थाओं की खबर लेने का हक इस अधिकार ने दिया है। दूसरी ओर जाहिर है कि यह कानून नागरिक से, आम आदमी से यह अपेक्षा भी करता है कि वह अपनी जागरूकता बनाए रखे, आंखें और कान खुली रखे जिससे गठरी उसकी सलामत रहें।" अतः गठरी हमारी तभी सलामत रह सकती है, जब हम अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहेंगे। यह कानून आम जनता को मूक—दर्शक मात्र नहीं समझता है जिसकी डोर कुछ शासन, सत्ता में बैठे लोगों की हाथों में होती है। यह कानून आम जन—समूह को अपने अधिकारों के प्रति जागृत करता है तथा देश एवं समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करता है। अतः इससे समाज में भी सक्रियता बनी रहती है। इसके माध्यम से भ्रष्टाचार रूपी दानव के बढ़ते प्रभाव को संकुचित होने पर विवश करता है। "सूचना अधिकार अधिनियम—2005 आज तक बने हमारे कानूनों में से सर्वाधिक सत्य, सर्वाधिक शिव और सर्वाधिक सुन्दर कानून है।"

समाज में सुदृढ़ प्रजातंत्र को स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों की जानकारी हो। अतः सूचना का अधिकार प्रजातंत्र की आत्मा को समाज में स्थापित करने के लिए उठाया गया महत्त्वपूर्ण कदम है। यह कानून अपने उद्देश्य में तभी सार्थक हो सकता है जब इसको आम जनता के द्वारा व्यवहार में लाया जाए। इसके लिए यह आवश्यक है कि इस कानून के अधिकार क्षेत्र, कार्य प्रणाली, इसकी शक्ति एवं सूचना प्राप्ति की प्रक्रिया की जानकारी आम जनता को हो। आम जनता को 'सूचना का अधिकार—2005' कानून के बारे में शिक्षित करने के लिए यह पुस्तक अत्यंत ही उपयोगी है। इसके माध्यम से हम यह जानकारी प्राप्त कर सकते हैं कि टैक्स एवं अन्य शुल्क के माध्यम से जनता का पैसा सरकारी मशीनरी ने कहां और

किस रूप में खर्च किया। राष्ट्रीय महत्त्व एवं विकास के कार्यों में कितना धन खर्च किया गया। इसके माध्यम से निश्चित रूप से देश में व्याप्त भ्रष्टाचार की समस्या पर कुछ अंकुश जरूर लगा है तथा इस बीमारी को पूर्णतः समाप्त करने के लिए यह आवश्क है कि 'सूचना का अधिकार' कानून का इस्तेमाल ज्यादा से ज्यादा व्यक्तियों द्वारा किया जाए।

पुस्तक में लेखकों ने यह प्रकट करने की कोशिश की है कि सूचना के अधिकार कानून को सहजता से आमजन तक पहुंचाया जाए।

हम जानते हैं कि प्रस्तुत सूचना का अधिकार कानून में यह भी प्रावधान किया गया है कि अगर कोई विभाग या सूचना अधिकारी तय समय सीमा के अंदर आवेदनकर्त्ता को सूचना उपलब्ध नहीं करवाता है तो आवेदनकर्त्ता सूचना अधिकार अधिनियम की धारा 19 के तहत उक्त अधिकारी के विरुद्ध अपील कर सकता है। लेखक ने इस विषय को भी पूर्णतः स्पष्ट करते हुए अपील कौन कर सकता है? प्राथमिक, अपील, अपील की समय सीमा, अपील निवारण, अंतिम अपील की समय सीमा, अपीलीय आदेश, केंद्रीय सूचना आयोग अपील प्रक्रिया नियमावली 2005, आदि का विस्तारपूर्वक उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में किया है। इस तरह से लेखक ने प्रस्तुत कानून की रूपरेखा को जनता के हितों को ध्यान में रखकर अत्यंत ही सरल एवं स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। जिससे कम शिक्षित लोग भी इस कानून को समझ सकें और इस कानून का लाभ ले सकें। इसके साथ ही साथ लेखकों ने प्रस्तुत पुस्तक में मांग पत्र के नमूने को भी प्रस्तुत किया है। सूचना प्राप्ति के लिए मांग पत्र कैसे भरा जाए। राज्य लोक सूचना अधिकारी, केंद्रीय सूचना अधिकारी पाने के लिए किए गए आवेदन की रसीद, सूचना अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 19 (1) के अंतर्गत प्रथम अपील का नमूना, सूचना अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 19 (3) के अंतर्गत अंतिम अपील का नमूना आदि आवेदन प्रपत्रों के नमूनों को संलग्न किया गया है जिससे की आम आदमी को कहीं किसी प्रकार की समस्या न हो।

इस तरह से यह पुस्तक आम–आदमी का मार्ग दर्शन करता है ताकि उसकी इस कानून को समझने की जटिलता कम हो सके। इसी प्रकार से सामाजिक जागृति का प्रारम्भ होता है, जो किसी भी देश के विकास के हित का पैमाना माना जा सकता है। इस प्रकार की सक्रियता से शासन–प्रशासन में भ्रष्टाचार के ग्राफ में भी गिरावट आती है तथा व्यक्ति एवं शासन, सत्ता प्रतिष्ठान अत्यंत सजगता एवं ईमानदारी से अपना कार्य करते है। 'इस क्रांतिकारी सूचना अधिकार अधिनियम में साधारण जन को, लोक सेवा, संगठनों–संस्थाओं की जानकारी लेने, रखने का अधिकार दिया है।

यह पुस्तक भ्रष्टाचार के दानव को समाज से पूर्णतः समाप्त करने का सीधा संदेश देती है जो हमारे आंतरिक एवं बाह्य विकास के लिए आज सबसे बड़े भयंकर शत्रु हैं। व्यापक जन जागृति के उद्देश्य को पूर्ण करने में यह पुस्तक अत्यंत ही उपयोगी एवं सूचनाप्रद है। इसमें लेखक ने सूचना के अधिकार कानून की बारीकियों को समेकित रूप में विश्लेषित करने का प्रयास किया जाए ताकि व्यापक जन समुदाय उक्त कानून का लाभ उठा सके। निःसंदेह यह पुस्तक पठनीय व सूचनाप्रद है।

पुस्तक का नाम : सूचना अधिकार
लेखक : श्री राम मुण्ढे
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन
20—ए, दरियागंज,
नई दिल्ली—110002
संशोधित एवं
नवीनतम संस्करण : पृ0 229,
मूल्य — रु0 300/—

ISSN 0973-7596

"जहां मैं दान लेता हूँ वहाँ हृदय-मंथन की,
चित्तशुद्धि की, मातृ-वात्सल्य की, भ्रातृ-भावना की;
मैत्री की और गरीबों के लिए प्रेम की
आशा करता हूँ। जहां दूसरों की चिंता की
भावना जगती रहती है, वहाँ समत्वबुद्धि
प्रकट होती है। वहां वैर-भाव टिक नहीं
सकता। भूदान यज्ञ अहिंसा का प्रयोग है,
जीवन-परिवर्तन का प्रयोग है।"

-विनोबा भावे

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

फरीदकोट हाउस, कॉपरनिकस मार्ग, नई दिल्ली-110001